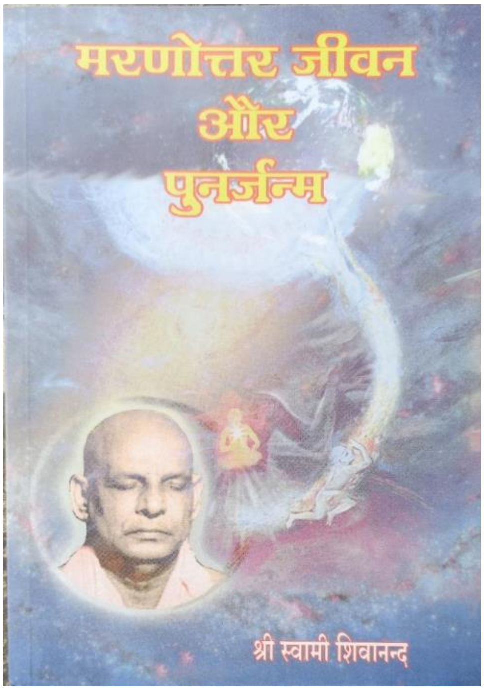
मरणोत्तर जीवन
और
पुनर्जन्म
श्री स्वामी शिवानन्द

मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म

What Becomes of the Soul After Death

का हिन्दी अनुवाद

लेखक
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय: शिवानन्दनगर-२४९ १९२
जिला: टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dishq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण: १९६६

द्वितीय हिन्दी संस्करण : १९८०

तृतीय हिन्दी संस्करण : १९८५

चतुर्थ हिन्दी संस्करण : १९९६

पंचम हिन्दी संस्करण : २००७

षष्ठ हिन्दी संस्करण : २०१५

(१,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

ISBN 81-7052-121-1 HS 99

PRICE: 135/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा
प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस,
पो. शिवानन्दनगर-२४९ १९२, जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

ॐ

समर्पण

मरणोपरान्त जीवन के
समस्त रहस्यों को उद्घाटित करने वाले
भगवान् यम, मार्कण्डेय, नचिकेता, सावित्री और
भगवान् शिव के शाश्वत परिचारी नन्दी को
समर्पित !

ॐ

५ दिसम्बर, १९५७

अमरता की सन्तानो !

एक जीवन्त, अपरिवर्तनशील, शाश्वत चेतना है जो सभी नाम और रूपों में अन्तर्निहित है। वह परमात्मा या ब्रह्म है।

परमात्मा सभी क्रियाओं का अन्त है। वह सभी साधनों एवं योगाभ्यासों का अन्त है। उसे खोजो । उसे जानो। तभी तुम स्वतन्त्र एवं पूर्ण हो सकते हो। संसार को एक मरीचिका की तरह देखो । निःस्वार्थ सेवा, वैराग्य, निर्विषय, प्रार्थना एवं चिन्तन-परायण जीवन व्यतीत करो। तुम शीघ्र ही ईश्वर-साक्षात्कार कर लोगे।

ईश्वर तुम्हें प्रसन्न रखे ! ॐ तत्सत्!

तुम्हारी अपनी ही आत्मा
स्वामी शिवानन्द

प्रकाशक का वक्तव्य

अनन्त काल से मृत्यु के बाद जीवन की समस्या अत्यन्त ही मोहक रही है। मनुष्य सदा इस प्रश्न के चक्कर में पड़ा रहा है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है। प्रस्तुत पुस्तक-जैसा कि इसका नाम है, विस्तृत रूप से इसी विषय की विवेचना करती है-प्राचीन काल से चले आ रहे इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करती है।

आधुनिक काल में इस समस्या पर बहुत-सी अटकलबाजियाँ लगायी गयी हैं। इसने बहुत से अनुसन्धान-कार्यों को भी आगे बढ़ाया है। भौतिक मृत्यु के बाद भी चेतना के जारी रहने का तथ्य बहुत से आधुनिक चिन्तकों द्वारा भी स्वीकृत किया जा रहा है जिनमें अत्याधुनिक डाक्टर जे. बी. राइन हैं जिन्होंने इसके पक्ष में अपना विश्वास व्यक्त किया है। इस विषय पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं; लेकिन अब तक उनमें से अधिकांश सूक्ष्म या प्रेतात्म-जगत् के बारे में लिखी गयी हैं। अब तक प्रेतलोक की परिस्थितियों के बारे में ही ज्यादा अध्ययन किया गया है जो कब्र से बाहर के अनेकों अपार्थिव लोकों में सिर्फ एक है। आत्मवाद, प्रेतात्माओं को बुलाने वाली मण्डली एवं स्वीकृत माध्यमों का साक्षीपन ही इन पुस्तकों का मुख्यतः विवेच्य विषय रहा है।

हम यह महसूस करते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन लोगों में यह विश्वास पैदा करेगा कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है, कि मनुष्य के कर्म निश्चित रूप से उसके ऊपर मृत्यूपरान्त प्रतिक्रिया करते एवं उसके विचारों को प्रोत्साहित करते हैं। हमें कोई सन्देह नहीं है कि पाठकों को इस भौतिक शरीर से परे का ज्ञान होने पर इस पृथ्वीलोक पर स्थित इस भौतिक शरीर का वास्तविक मूल्यांकन करने में सहायता मिलेगी।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

प्रस्तावना

परलोक-विद्या या मृतात्माओं के एवं उनके रहने वाले लोकों का विज्ञान एक रोचक विषय है। यह एक रहस्यात्मक विज्ञान है जो बहुत ही रहस्य या छुपे आश्चर्यों से भरा पड़ा है। छान्दोग्योपनिषद् की पंचाग्नि-विद्या से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बहुत-सी विलक्षण वस्तुओं का आविष्कार करने वाले वैज्ञानिक, शक्तिशाली सम्राट् जिन्होंने आश्चर्यजनक कार्य किये, धार्मिक कवि, अद्भुत कलाकार, असंख्य ब्राह्मण, ऋषि, योगी आये और चले गये। आप सभी यह जानने को अत्यन्त इच्छुक हैं कि वे कहाँ चले गये ? क्या अभी भी उनका अस्तित्व है? मृत्यु के उस पार क्या है? क्या वे अस्तित्वहीन हो गये या शून्य-वायु में विलीन हो गये ? ऐसे प्रश्न निर्बाध रूप से सबके हृदय में उठते रहते हैं। यह प्रश्न आज भी वैसे ही उठता है जैसा हजारों वर्ष पूर्व उठा करता था। इसे कोई भी नहीं रोक सकता; क्योंकि यह हमारी प्रकृति से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है।

मृत्यु एक ऐसा विषय है जो सबकी गहन उत्सुकता से सम्बन्धित है। आज या कल सभी मरेंगे। मृत्यु का भय सभी मानव-प्राणियों पर छाया रहता है। यह मृतक के सम्बन्धियों के ऊपर, जो मृतक आत्मा का हाल जानने के लिए उत्सुक रहते हैं, अत्यन्त अनावश्यक दुःख, शोक और चिन्ता लाता है।

इस प्रश्न ने पश्चिम में भी बहुत से वैज्ञानिक क्षेत्रों में बड़े परिमाण में रुचि एवं ध्यान को आकर्षित किया है। बहुत से परीक्षण किये गये हैं, लेकिन ये अनुसन्धान इसी प्रश्न तक सीमित रहे हैं कि 'भौतिक शरीर के नाश के

अनन्तर आत्मा रहती है या नहीं' या 'आत्मा का अस्तित्व है या नहीं' । विज्ञान तथा मध्यस्थता के द्वारा प्रेतात्म- जगत् से सम्बन्ध स्थापित कर आत्मा के अस्तित्व को साबित कर दिया गया है।

इसका विज्ञान मृत्यु के सभी भयों का हरण कर लेगा एवं आपको इस योग्य बनायेगा कि आप इसे पर्याप्त प्रकाश में देख सकें और अपनी प्रगति में इसका महत्व जान सकें। यह अवश्य ही आपको मृत्यु को जीतने का एवं अमरता प्राप्त करने का उचित तरीका खोजने को प्रेरित करेगा।

यह आपको जबर्दस्ती प्रोत्साहित करेगा कि आप तत्परता से ब्रह्म-विद्या का अध्ययन करें, सच्चे गुरु या दीप्त ऋषि की खोज करें जो आपको सही रास्ते पर लाये और कैवल्य एवं ब्रह्मज्ञान के रहस्यों को आपको बताये।

इस पुस्तक में मृत्यु के दूसरे पक्ष का सही-सही वर्णन किया गया है। यह वैज्ञानिक तरीकों से परीक्षण किया गया है एवं वर्णन किया गया है। यह पुस्तक इस विषय पर पर्याप्त सूचना देती है। यह इस विषय पर आपको तथ्यों का भण्डार देगी। इसमें उपनिषद् की शिक्षाओं के तत्त्वों का सन्निवेश है।

आप इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय की अज्ञानता एवं मिथ्या विश्वासों के कारण बहुत कष्ट सह चुके हैं। अगर आप इस पुस्तक को पढ़ेंगे, तो अज्ञान का परदा हट जायेगा। आप मृत्यु के भय से स्वतन्त्र हो जायेंगे।

योग-साधना का एक लक्ष्य मृत्यु का प्रसन्नता और निर्भयता से सामना करना है। एक योगी या ऋषि या एक सच्चे साधक को मृत्यु का भय नहीं रहता। मृत्यु उन लोगों से काँपती है जो जप, ध्यान एवं कीर्तन करते हैं। मृत्यु एवं उसके दूत उस तक पहुँचने का साहस तक नहीं कर सकते। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं-"मेरी शरण में आने से ये महात्मा फिर जन्म को प्राप्त नहीं होते, जो दुःख एवं मृत्यु का लोक है, वे परमानन्द में मिल जाते हैं।"

मृत्यु एक सांसारिक व्यक्ति को दुःखदायक है। एक निष्काम व्यक्ति मरने के बाद कभी भी नहीं रोता। एक पूर्णज्ञान प्राप्त व्यक्ति कभी नहीं मरता। उसके प्राण कभी प्रस्थान नहीं करते। मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त करो। मृत्यु की विजय सभी आध्यात्मिक साधनाओं की उच्चतम उपयोगिता है। भगवान् से प्रार्थना करो कि वह प्रत्येक जन्म में तुम्हें अपनी पूजा के योग्य बनाये। अगर तुम अनन्त आनन्द चाहते हो तो इस जन्म-मृत्यु के चक्र का नाश करो, अनन्त आत्मा में वास करो और सदा के लिए आनन्दमय हो जाओ।

भीष्म की मृत्यु उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर थी। सावित्री अपने पति सत्यवान् को अपनी सतीत्व-शक्ति के बल पर वापस लायी। भगवान् शिव की प्रार्थना से मार्कण्डेय ने मृत्यु को जीत लिया। तुम भी ज्ञान, भक्ति एवं ब्रह्मचर्य के बल पर मृत्यु को जीत सकते हो।

मरणोन्मुख उपासक की प्रार्थना

(ईशावास्योपनिषद्)

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

आदित्यमण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन्। मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।।

हे जगत्पोषक सूर्य! हे एकाकी गमन करने वाले ! हे यम (संसार का नियमन करने वाले)! हे सूर्य (प्राण और रस का शोषण करने वाले) ! हे प्रजापतिनन्दन ! तू अपनी किरणों को हटा ले (अपने तेज को समेट ले) ! तेरा जो अतिशय कल्याणमय रूप है, उसे मैं देखता हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है, वह मैं हूँ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ।।

अब मेरा प्राण सर्वात्मक वायु-रूप सूत्रात्मा को प्राप्त हो और यह शरीर भस्मशेष हो जाये। हे मेरे संकल्पात्मक मन ! अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए को स्मरण कर, अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए को स्मरण कर।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ।।

हे अग्ने ! हमें कर्म-फल-भोग के लिए सन्मार्ग से ले चल। हे देव! तू समस्त ज्ञान और कर्मों को जानने वाला है। हमारे पाखण्डपूर्ण पापों को नष्ट कर। हम तेरे लिए अनेक नमस्कार करते हैं।

मृत्यु-संस्तुति

हे मृत्यु, हे यम! तुझे है अभिनन्दन
तू है ईश्वरीय नियमों का प्रणेता
सभी बनते हैं तेरे ही शिकार
बनते हैं तेरे ही ग्रास।

तू काल है
तू है धर्मराज !
हे सर्वज्ञ काल!
तू है नियम का विधायक ।

तू है ज्ञाता
तीनों कालों का......-भूत, वर्तमान और भविष्य ।
तूने ही पुराकाल में दी थी दीक्षा
नचिकेता को, आत्म या ब्रह्म-विद्या की।

मैंने काल या मृत्यु का किया है अतिक्रमण,
मैं हूँ सनातन तत्त्व ।
कहाँ है काल उस सनातन तत्त्व में?
काल तो है मात्र मानस-सृजन ।

मैंने मन का किया है अतिक्रमण ।
मुझे भय है नहीं अब मृत्यु का हे मृत्यु!
मैं हूँ परे तेरी पहुँच के
मैं करता हूँ, तुझे अल्विदा ।

मैं हूँ कृतज्ञ तेरे सारे सदय कार्यों के लिए
तुझे है अनेकानेक नमस्कार ।
हे यम! मैं चाहता हूँ विदेह-मुक्ति में प्रवेश ।
मैं प्राप्त करूँगा परमात्मा में अखण्ड विलयन ।

वास्तविक जीवन क्या है

नित्य आत्मा में जीवन
आत्म-सुख का सतत आस्वादन
सदा-सर्वदा परमात्मा का पूजन
यही है वास्तविक जीवन ।

सदा ईश्वर के नाम का जपन
सर्वदा उसी की कीर्ति का गायन
सदा उसी का स्मरण
यही है वास्तविक जीवन ।

करो यम-नियम का अभ्यास
करो बीमार और गरीबों की सेवा
करो श्रुतियों का श्रवण,
यही है वास्तविक जीवन ।

चिन्तन तथा ध्यान
गुरु की सेवा
उनके उपदेशों का अनुगमन
यही है वास्तविक जीवन ।

अपने आत्मा का साक्षात्कार
निज-आत्मा का ही सर्वत्र दर्शन
और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति
यही है वास्तविक जीवन ।

मानवता के लिए अर्पित जीवन
करना आत्म-संयम का अभ्यास
करना मन और इन्द्रियों पर शासन
यही है वास्तविक जीवन ।

करो प्राणायाम का अभ्यास
करो ब्रह्म-विचार
करो संकल्प का पालन
यही है वास्तविक जीवन ।

ॐ में ही निवास
ॐ का ही सतत कीर्तन
ॐ का ही अविरल ध्यान
यही है वास्तविक जीवन ।

नाम-रूपों की कर उपेक्षा
करना अन्तर्हित वस्तु का दर्शन
करना अमृत-सुधा का पान
यही है वास्तविक जीवन ।

वास्तविक मृत्यु क्या है

नित्यप्रति गीता, उपनिषदों का नहीं पठन
और न सदा ईश्वर का स्मरण
न साधु एवं गुरुओं का सेवन
यही है वास्तविक मरण।

न रखना समदर्शन
न मन का ही सन्तुलन
न आत्मदृष्टि का ही अवलम्बन
यही है वास्तविक मरण।

ब्रह्मज्ञान से वंचित
विस्तृत हृदय से भी शून्य
दानशील कार्यों से रहित
यही है वास्तविक मरण।

देह से ही तादात्म्य-प्राप्त
ईश्वरीय स्वरूप का विस्मरण
निरुद्देश्य जीवन में भ्रमण
यही है वास्तविक मरण।

खाना, पीना, मौज उड़ाना
समय का व्यर्थ गमन
निज नाम और यश को खोना
यही है वास्तविक मरण।

जुआ तथा ताश के खेल
उपन्यास, मदिरापान तथा धूम्रपान
गपशप, निन्दा, मात्सर्य में संलग्न
यही है वास्तविक मरण।

पिशुनता, निन्दा,
दूसरों के दोषदर्शन
ठगी तथा मिथ्याचरण
यही है वास्तविक मरण ।

अर्थ का अवैधिक उपार्जन
पर-स्त्रियों के प्रति दुराचरण
दूसरों के प्रति हिंसात्मक आचार
यही है वास्तविक मरण ।

विषयपरायण जीवन
वीर्य का करना व्यर्थ नाश
कामदृष्टि का अवलम्बन
यही है वास्तविक मरण ।

जन्म तथा मृत्यु

जन्म तथा मृत्यु हैं दो भ्रामक दृश्य
इस जगत्-रूपी नाटक के।
वास्तव में न तो कोई जन्म लेता है
और न मरता ही है।

न कोई जाता है और न आता ही है।
यह है माया का जादू
यह है मन का ही खेल
ब्रह्म का है एकमेव अस्तित्व ।

शरीर के लिए ही है जन्म
पंचतत्त्वों से ही होता है शरीर का गठन
आत्मा तो है जन्म-रहित तथा मृत्यु-रहित
मृत्यु है भौतिक शरीर का विक्षेपण।

मृत्यु है सुषुप्ति के ही समान
जन्म है सुषुप्ति से जागरण
हे राम ! मृत्यु से भय न कर
जीवन तो है अखण्ड और अबाध।

पुष्प मुरझाते हैं, पर सुरभि फैलती रहती है
शरीर विनष्ट होता है
परन्तु आत्म-सुरभि
अमर एवं शाश्वत है।

विवेक करना सीखो
सत्य एवं असत्य के बीच
सदा असीम का करो चिन्तन
यही है जन्म-मृत्यु से रहित, सनातन ।

माया तथा मोह का करो अतिक्रमण
तीनों गुणों से बनो अतीत

शरीर के प्रति आसक्ति का करो त्याग
अमरात्मा में बनो विलीन ।

पुनर्जन्म

मन के ही कारण है पुनर्जन्म

मन के ही व्यवहारों पर है यह अवलम्बित ।
तुम विचारते हो, मन में बनते हैं संस्कार
संस्कार ही है वृत्ति का बीज
ये संस्कार एक-दूसरे से बन कर आबद्ध
देते हैं वासना को जन्म।

जैसा तुम विचारते हो
वैसा ही तुम बन जाते हो।
अपने विचारों के अनुकूल ही
तुम जन्म धारण करते हो।

सत्त्व तुम्हें ऊपर ले जाता है।
रजस् मध्य में ही रखता है
तमस् अधःपतन दिलाता है
दुर्गुणों में ही आच्छन्न रखता है।

मन ही कारण है
मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का।
मलिन मन बाँधता है
शुद्ध मन मुक्ति प्रदान करता है।

जब तुम सत्य का साक्षात्कार करते हो
तुम आत्मा को जानते हो।
भावी जन्मों के कारण का विनाश होता है,
वृत्तियाँ विनष्ट होती हैं, संस्कार भस्मीभूत होते हैं।

तुम पुनर्जन्म से मुक्त हो
तुम पूर्णता प्राप्त करते हो
तुम परम शान्ति पाते हो
तुम अमर बन जाते हो-यही सत्य है।

यदि एक ही जन्म है
यदि बुरे कर्म करने वाले नरकाग्नि में
जलते हैं सर्वदा
तो, प्रगति की कोई आशा नहीं,
यह बुद्धिग्राह्य नहीं है।
यह तर्कसंगत नहीं है।

वेदान्त में निकृष्ट पापी के लिए भी आशा है
कितना समुन्नत है यह दर्शन!
यह घोषित करता है
मित्र! तू शुद्ध आत्मा है

पाप तुझे छू नहीं सकता ।
अपने गत ईश्वरत्व को प्राप्त करो
पाप कुछ भी नहीं है।

पाप भूल मात्र है
तुम पल मात्र में ही पाप को विनष्ट कर सकते हो।
वीर बनो, प्रसन्न रहो
उठो, जागो, उत्तिष्ठत जाग्रत ।

गीता कहती है-
"निकृष्ट पापी भी
धर्मात्मा बन सकता है,
वह ज्ञान-नौका द्वारा
पाप सन्तरण कर सकता है।"

इससे क्या समझते हो, हे मित्र!
प्रतिभाशाली लड़का, शिशुपन में ही पियानो बजाता है
बचपन में ही भाषण देता है
वह गूढ़ गणित की समस्याओं को हल कर देता है।

एक लड़का अपने पूर्व-जन्म का विवरण देता है
दूसरा पूर्ण योगी के रूप में प्रकट होता है
इससे यह प्रमाणित है कि पुनर्जन्म है।
बुद्ध ने बहुत जन्मों में ही अनुभव प्राप्त किया था,
अन्तिम जन्म में ही वे बुद्ध बने ।

जिसे संगीत में रुचि है
वह कई जन्मों में अनुभव प्राप्त करता है
तथा अन्ततः एक जन्म में पूर्ण कुशल बन जाता है।
हर जन्म में वह संगीत के संस्कार का अर्जन करता है,
शनैः-शनैः वासनाएँ तथा रुचि बढ़ती जाती है,
किसी एक जन्म में वह कुशल संगीतज्ञ बन जाता है।
यही बात है प्रत्येक कला के विषय में।

बच्चा माँ का दूध पीता है,
शिशु बत्तख तैरते हैं
पूर्व-जन्म के संस्कारों से ही
सारे सद्गुण एक जन्म में ही विकसित
नहीं हो सकते।

क्रमिक प्रगति द्वारा ही मनुष्य
सभी सद्गुणों का अर्जन कर सकता है।

साधु जन सभी सद्गुणों में पारंगत होते हैं
साधुओं और सिद्धों के अस्तित्व से
पुनर्जन्म प्रमाणित होता है।

विषय-सूची

प्रकाशक का वक्तव्य 4
प्रस्तावना 5
मरणोन्मुख उपासक की प्रार्थना 7
मृत्यु-संस्तुति 8
वास्तविक जीवन क्या है 8
वास्तविक मृत्यु क्या है 10
जन्म तथा मृत्यु 12
पुनर्जन्म 13
प्रथम प्रकरण 21
मृत्यु क्या है? 21
१. पुनर्जन्म तथा मानव का उद्विकास 21
२. मृत्यु क्या है? 24
३. मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है 25
४. मृत्यु का क्रम 26
५. मृत्यु के चिह्न 27
६. मृत्यु के समय तत्त्वों का अलग होना 27
७. उदान वायु के कार्य 28
८. आत्मा क्या है? 29
९. शरीर-सम्बन्धी दार्शनिक विचार 30
१०. मूर्च्छा, निद्रा तथा मृत्यु 33

द्वितीय प्रकरण 34
मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा 34
१. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (क).. 34
२. तृतीय स्थान... 36
३. कर्म तथा पुनर्जन्म (क) 37
४. मृत्यूपरान्त जीवात्मा कैसे शरीर छोड़ता है 39
५. शरीर-त्याग करते समय जीवात्मा राजा के तुल्य है 40
६. निष्क्रमण की प्रक्रिया.. 41
७. जीवात्मा कैसे उत्क्रमण करता है.. 42
८. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (ख) 43
९. दो मार्ग-देवयान तथा पितृयान 44
(अ) अर्चि मार्ग (देवयान).. 44
(आ) धूम्र मार्ग (पितृयान).. 45
तृतीय प्रकरण 46
मृत्यु से पुनरुत्थान तथा न्याय... 46
१. मृत्यु से पुनरुत्थान 46
२. न्याय-दिवस... 47
चतुर्थ प्रकरण... 48
मृत्यूपरान्त आत्मा 48
१. मृत्यूपरान्त आत्मा 48
२. गीता इस विषय में क्या कहती है?... 49
३. मृत्यु तथा उसके अनन्तर 50
४. शोपेनहावर का मन्तव्य 'मृत्यूपरान्त की दशा'.. 52
५. अन्तिम विचार आकार धारण करता है 55
६. व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता.. 57
७. प्राचीन मिश्रवासियों की मान्यता 58
पंचम प्रकरण... 59
पुनर्जन्म का सिद्धान्त 59
१. पुनर्जन्म का सिद्धान्त... 59
२. कर्म तथा पुनर्जन्म (ख) 63
३. पुनर्जन्म-एक नितान्त सत्य (क)... 66
४. जीवात्मा का देहान्तर-गमन 67
५. पुनर्जन्मवाद 69
६. पुनर्जन्म-एक नितान्त सत्य (ख) 72

७. निम्न-योनियों में फिर से जन्म 73

८. बालक की क्रमिक वृद्धि 78

षष्ठ प्रकरण 80

विभिन्न लोक 80

१. प्रेतलोक 80

२. प्रेतों के अनुभव 81

३. पितृलोक 82

४. स्वर्ग 83

५. नरक 85

६. कर्म और नरक 87

७. असूर्य-लोक 89

८. यमलोक का मार्ग 90

९. धर्म (न्याय) की नगरी 91

१०. यम-सभा 92

११. इन्द्रलोक 93

१२. वरुणलोक 94

१३. कुवेरलोक 95

१४. गोलोक 96

१५. वैकुण्ठलोक 97

१६. सप्त-लोक 99

१७. अपार्थिव लोकों में निवास 100

सप्तम प्रकरण 103

प्रेतात्म-विद्याल 103

प्रेतात्म-विद्या 103

अष्टम प्रकरण 106

मृतकों के लिए श्राद्ध तथा प्रार्थना 106

१. श्राद्ध-क्रिया का महत्त्व 106

२. दिवंगत आत्मा के लिए प्रार्थना और कीर्तन 109

३. मरणासन्न व्यक्ति के पास शास्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है? 110

नवम प्रकरण 113

मृत्यु पर विजय 113

१. मृत्यु पर विजय 113

२. मृत्यु क्या है तथा उस पर किस तरह विजयी हों ? 114

३. अमरता की खोज 116

दशम प्रकरण 119
कथा-वार्ता 119
१. कीट की कहानी 119
२. नचिकेता की कथा 121
३. मार्कण्डेय की कथा 123
एकादश प्रकरण 124
पत्र 124
१. मेरे पति की आत्मा कहाँ है? 124
२. स्वर्ग कहाँ है ? 126
३. मेरे पुत्र के विषय में क्या ? 127
४. प्रश्नोत्तरी 129
परिशिष्ट १ 132
पुनर्जन्म 132
१. स्वर्ग में निवास 132
२. ज्ञानी की मरणोत्तर दशा 132
३. पशु-योनि में अधोगमन 133
४. स्थूल-शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी लिंग-शरीर जीवित रहता है 133
५. आगामी जन्म का स्वरूप 133
६. स्वर्ग तथा नरक के विषय में वेदान्तिक दृष्टिकोण 134
७. ऐन, जो पूर्व-जन्म में सिपाही थी 135
८. पूर्व-जन्म की माँ से भेंट 135
९. बर्मी भाषा बोलने वाले सोल्जर कैस्टर 136
१०. जमापुखुर ग्राम का युवक 136
११ . हिल-दक्षिण अमरीका का पर्यवेक्षक 137
१२. बजीतपुर के डाकबाबू का लड़का 137
१३. अपने माता-पिता को भूल जाने वाली हंगरी देश की बालिका 137
१४. दिल्ली के जंगबहादुर की पुत्री 138
१५. कानपुर के देवीप्रसाद का पुत्र (अमृत बाजार पत्रिका, दि.१-५-३८) 138
१६. डेढ़ वर्ष की आयु में गीता-पाठ 138
१७. पाँच वर्ष की बालिका तथा पिआनो 138
१८. कलकत्ता के बैरिस्टर की पुत्री 139
१९. जीव के पुनर्जन्म की एक विचित्र घटना 139
२०. जीवात्मा के परिवर्तन की एक विचित्र घटना 141
२१. पुनर्जन्म की एक नवीनतम सुप्रसिद्ध घटना-शान्ति देवी 142

२२. मृदुला अपने विगत जीवन का विवरण देती है... 144
२३. मृत्यु के अनन्तर तुरन्त जी उठना.. 146
२४. मृत पत्नी का बालिका के रूप में पुनरागमन 147
२५. वायलेट फूल का गुच्छा ले कर घूमने वाली मृत पुत्री.. 148
२६. वे विचित्र पद-चिह्न 149
२७. श्रद्धा का वर्णन 150
२८. मृत्यु के सम्बन्ध में पाश्चात्य दार्शनिकों के विचार.. 152
परिशिष्ट २ 154
कुछ पराभौतिक अनुभव... 154

मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म

प्रथम प्रकरण

मृत्यु क्या है?

१. पुनर्जन्म तथा मानव का उद्विकास

पुनर्जन्म का, मरणोत्तर जीवन का प्रश्न युगों से अब तक प्रहेलिका ही बना रहा है। जीवन जिन समस्याओं का पूर्वाभास देता है, उन सबका उत्तर देने में मानव-ज्ञान मुश्किल से सक्षम है। गौतम बुद्ध ने कहा है-"हमारी इन्द्रियों द्वारा हमारी भ्रान्ति के अनुसार सृष्ट इस रूप तथा भ्रान्तिमय जगत् में व्यक्ति या तो है या नहीं है, या तो जीता है या मर जाता है; किन्तु सच्चे तथा रूपहीन जगत् में ऐसी बात नहीं है, क्योंकि यहाँ सब बातें हमारे ज्ञान के अनुसार दूसरे ढंग से होती हैं। और यदि आप पूछें कि क्या मनुष्य मृत्यु से परे रहता है, तो मैं उत्तर देता हूँ 'नहीं'-उस मानव-मन के किसी बोधगम्य अर्थ में नहीं जो मृत्यु के समय स्वयं मर जाता है। और यदि आप पूछते हैं कि क्या मृत्यु होने पर मनुष्य पूर्ण रूप से मर जाता है, तो मेरा उत्तर है 'नहीं'; क्योंकि जो मरता है, वह इस रूप तथा भ्रान्तिमय जगत् का है।"

तथापि मानव-मन किसी निश्चित निष्कर्षहीन रहस्यमय उत्तर से अपने को उलझाने नहीं देता और ज्ञानियों ने एक बार जो कुछ कहा था, उसमें अन्ध-विश्वास का युग बहुत दिन हुए जाता रहा। आज हमसे अकेले विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों की ही नहीं, अपितु सामूहिक रूप से ठोस प्रमाण की सतत माँग है। यदि जीवात्मा के आवागमन जैसे गम्भीर रहस्य के विषय में ऐसा भाव है, तो उसका स्पष्ट उत्तर यह है कि 'अच्छा होगा कि आप अपने मरने तक प्रतीक्षा करें, और तब आप निर्णायक रूप से जान सकेंगे।' अतएव, इस पर शान्त, बुद्धिसंगत, निष्पक्ष तथा अवैयक्तिक विचार की आवश्यकता है।

कार्य-कारण-सिद्धान्त तथा तत्परिणामी पुनर्जन्म की अपरिहार्यता हिन्दू-दर्शन का सचमुच मूल-सिद्धान्त ही है। किन्तु हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि इस भूलोक की २०० करोड़ की जनसंख्या में से ८० करोड़ लोगों की पुनर्जन्म में विश्वास की कोई धार्मिक परम्परा नहीं है, जब कि लगभग ४५ करोड़ लोग इसकी सम्भावनाओं के विषय में बिलकुल अज्ञेयवादी हैं।

तब यह स्वाभाविक है कि यदि हिन्दू यह सोचें कि वे ही मनुष्यों में सर्वाधिक बुद्धिमान् हैं तथा शेष अज्ञानी लोगों का एक अति-विशाल समूह है जिनके लिए अज्ञानता ही परमानन्द है, तो यह केवल डींग मारना ही होगा। तब यह प्रश्न उठेगा कि यदि कोई यह विश्वास करे कि उसका वर्तमान जन्म उसके पूर्व-जन्म के कमाँ का परिणाम है, तो पूर्व-जन्म को उत्पन्न करने वाला कारण क्या था ? यही सही, एक और पुनर्जन्म। किन्तु, उस जन्म का कारण क्या था?

अब इसका उत्तर देने के लिए हमें उद्विकास के नियम का आश्रय लेना होगा और कहना पड़ेगा कि सुदूर अतीत में हम एक बार पशु थे और उस जीवन-संस्तर से हम मानव-प्राणी बने। किन्तु फिर प्रश्न उठेगा कि कार्य-कारण के सिद्धान्त को उचित सिद्ध करने के लिए मानव-प्राणी के रूप में जन्म लेने के लिए भी कोई कारण रहा होगा, और चूँकि पशुओं में सदाचार तथा दुराचार के निर्णय करने की बुद्धि नहीं होती तो मानव-परिवार में अपने जन्म के लिए हम कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं? कोई बात नहीं। आइए, हम इस तर्कहीन परिकल्पना को अस्थायी रूप से ठीक मान लें और अपने को प्राणि-परिवार और उद्भिज तथा खनिज जगत् की ओर वापस ले जायें और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचें कि भगवान् ही उत्तरदायी आद्य कारण है; किन्तु कार्य-कारण के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए, इतना अधिक तर्क के होने पर भगवान् कैसे इतना अन्यायी तथा उन सब कष्टों, संघर्षों और दुःखों का आद्य कारण हो सकता है जिन्हें मानव-प्राणी के रूप में जन्म ले कर हमें भोगना होता है।

आद्य कारण का कोई उत्तर नहीं है। सर्वोत्तम मार्ग है: भले बनें और भला करें, सद्विवेक में आस्था रखें तथा व्यक्ति की योग्यता और जीवन के नैतिक सिद्धान्तों का सम्मान करें तथा शेष भगवान् पर छोड़ दें। ऐसी अनेक चीजें हैं जो मानव-मस्तिष्क के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं और आत्मज्ञान- यह शब्द कैसा भी प्रभावशाली हो- उनका एकमात्र समाधान है। तथापि पुनर्जन्म की धारणा की यों ही उपेक्षा नहीं की जा सकती है; क्योंकि कुछ ऐसे ठोस तर्कसंगत अध्याहार हैं, जो विश्वास को बनाये रखने में विवेक पर प्रभाव डालते हैं।

वैदिक साहित्य की प्रारम्भावस्था में, वास्तव में पुनर्जन्म का कोई उल्लेख, पाप की कोई कालिमा, नरकाग्नि का कोई भय तथा मर्त्य मानव के लिए कोई स्वर्गिक प्रलोभन नहीं था; किन्तु आरण्यक युग के प्रारम्भ में, जब वैदिक मानस सावयची ईश्वरत्व की बहुदेववादी धारणा से एक परम सत्ता के अद्वैतात्मक आदर्श की दिशा में उन्नत हुआ, तो मानव-मन में भगवान् की निष्कलंक सत्ता को सुरक्षित करने के लिए तर्कसंगत आवश्यकता के रूप में कार्य-कारण तथा जीवात्मा के देहान्तरगमन के सिद्धान्त का विकास किया गया।

अब यह सर्वविदित है कि विश्व के तीन प्रमुख धर्मों ने जिनका उद्भव यद्यपि हिन्दू-धर्म की अपेक्षा आधुनिक है-नरक में शाश्वत शैतानी के विकराल दृश्य को प्रस्तुत करना आवश्यक समझा, जिससे लोग एक-दूसरे के गले पर झपटने से दूर रहें तथा सामाजिक सुव्यवस्था, संस्कृति के मूल्य तथा शान्ति की उपयोगिता को सम्मान दें। इसके साथ ही इस उद्देश्य की पूर्ति को निर्दिष्ट कर स्वर्ग में आनन्दपूर्ण अमरत्व का सजीव प्रलोभन पेश किया गया है। किन्तु इससे उद्विकास के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा तत्काल कम हो जाती है और व्यक्ति को उत्तर काल में उद्धार का एकमात्र अवसर प्रदान किये बिना ही अकस्मात् नरक का दण्ड दे दिया जाता है या अत्यधिक कृपापूर्वक उसे व्यष्टिकृत सत्ता में अनन्त काल तक के लिए स्वर्ग में लटकाये रखा जाता है। इसमें इस बात का भी कोई समाधान नहीं है कि एक व्यक्ति दुष्ट होने पर भी क्यों फले-फूले तथा सुखी रहे और अन्य पुण्यात्मा होने पर अभाव तथा दुःखों से पूर्ण नीरस जीवन यापन करे।

इसके विपरीत भारतीय ऋषियों ने इससे अच्छा समाधान प्रस्तुत किया तथा व्यक्ति के विकास के लिए पुनर्जन्म को उत्तरदायी बनाया। व्यक्ति ही अपने भाग्य का स्वामी है। इस संसार की सृष्टि ही क्यों की गयी, इस प्रश्न का उत्तर देने में अपनी असमर्थता को उन्होंने निःसंकोच रूप से स्वीकार किया और उसके आधार पर उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा कि भगवान् सद्-असद् का, सुख-दुःख का उत्तरदायी नहीं है। व्यक्ति ही अपनी नियति के लिए उत्तरदायी है। इसके साथ ही वह स्व-प्रयास से इसमें सुधार लाने में समर्थ है। अतएव जीवन की सभी रहस्यमयताओं तथा अन्यायों के लिए भगवान् पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता है तथा उन (भगवान) का स्थान मानव की विचारधारा में अक्षत बना रहा। अतएव मृत्यूपरान्त यादृच्छ अनुद्धार का औचित्य सिद्ध करने वाले किसी भी विश्वास की अपेक्षा पुनर्जन्म का सिद्धान्त कहीं अधिक विश्वासोत्पादक है।

इसके अतिरिक्त हमारे पास ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे बालक स्वल्प प्रशिक्षण से सहज ही निपुण कलाकार अथवा प्रतिभाशाली गायक बन जाता है, जब कि कुछ अभिजातवर्गीय परिवारों में हम देखते हैं कि अत्यधिक शिक्षा प्राप्त अध्यापकों के भारी प्रयास तथा स्वयं बालक की ओर से भी कठोर श्रम के बावजूद भी वह शिक्षा-प्राप्ति में बहुत ही कम उन्नति कर पाता है। विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न बालकों के उदाहरण भी हैं, जिनके प्रशिक्षण की कोई पृष्ठभूमि नहीं है। एक अन्य उदाहरण लीजिए। दो बालक एक ही माता-पिता के यहाँ जन्म लेते हैं तथा एक ही वातावरण में उनका पालन-पोषण होता है। उनमें से एक शिष्टाचार-सम्पन्न प्रतिभाशाली विद्वान् बनता है तथा दूसरा बिना किसी भी प्रत्यक्ष कारण के मन्द-बुद्धि चिथड़ा पहनने वाला दरिद्र बनता है। एकमात्र पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस भेद का उत्तर दे सकता है।

सांसारिक दृष्टिकोण से भी पुनर्जन्म जीवन की सम्पोषक शक्ति है। कितने ही स्वप्न तथा कितनी ही आकांक्षाएँ अपरितुष्ट ही रह जाती हैं, यौवन क्षीण हो कर वृद्धावस्था तथा अशक्तता का रूप से लेता है और दुर्गाह्य आशा-रूपी तृणमणि अधिकाधिक धुँधली तथा अशक्त बन जाती है; किन्तु इसकी अनि-शिखा का टिमटिमाना इस सुदूर की आशा से बना रहता है कि कदाचित् किसी अन्य जीवन में वे आशाएँ पूर्ण हो जायेंगी। अतएव इस दृष्टिकोण से भी पुनर्जन्म जीवन के लिए एक सौम्य सान्त्वना तथा आश्वासन है।

एक अन्य विचारधारा है जो यह विश्वास करती है कि शरीर तथा आत्मा के पंचतत्त्वों के चरम विस्मृति में चले जाने से मृत्यु का घन जीवन का अन्तिम रूप से अवसान कर देता है। यह सुविधाजनक विश्वास कुछ बौद्धिक वितण्डावादियों के लिए ही आकर्षक है। किन्तु यदि ऐसी बात हो तो प्रेतों तथा आत्मायनों में प्राप्त होने वाले अकाट्य अनुभवों के लिए क्या स्पष्टीकरण है? अतः मरणोपरान्त जीवन को नियम-विरुद्ध नहीं घोषित किया जा सकता है। आइए, अब हम यह विचार करें कि आध्यात्मिक साधकों का क्या मनोभाव होना चाहिए।

मनुष्य के अन्दर आश्चर्यजनक सम्भाव्यताएँ हैं। वह भाग्य का दास नहीं है। एक बार बुद्ध ने अपने अत्यधिक प्रतिभाशाली शिष्यों में सारिपुत्र से बौद्ध धर्म की स्थापना के लिए संसार जिनका अत्यधिक ऋणी है-प्रश्न किया: "क्यों! भिक्षु! क्या जीवन तुम्हें बोझिल नहीं लगता और क्या तुम मृत्यु द्वारा इससे मुक्त होना नहीं चाहते ? या जीवन तुम्हें मोहित करता है; क्योंकि एक महान् जीवन-लक्ष्य को पूर्ण करना है।" सारिपुत्र ने उत्तर दिया- "श्रद्धेय गुरुदेव, मैं जीवन की आकांक्षा नहीं रखता। मैं मृत्यु की आकांक्षा नहीं रखता। जैसे सेवक अपनी भृत्ति की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं अपनी आने वाली घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

साधक की भी ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिए। उसे स्वयं कुछ पूर्ण करना नहीं है; क्योंकि उसका जीवन भगवद्-इच्छा की पूर्ति है। उसमें किसी सुयोग्य आध्यात्मिक जीवन-लक्ष्य को प्रोत्साहित करने के लिए पुनः जन्म लेने की कामना को भी कोई स्थान नहीं होना चाहिए; क्योंकि क्या भगवान् हमारी अपेक्षा अधिक नहीं जानता कि वह किसको इस संसार में अपने सन्देशवाहक के रूप में भेजे ? और, क्या परम सत्ता के महान् ब्रह्माण्डीय ऐक्य में अपने शरीर तथा मन और अपनी वैयक्तिकता के विलय में और इस प्रकार सूक्ष्म शरीर में विद्यमानता अथवा स्थूल शरीर से काराबद्ध रूप में स्व-जीव-भाव को सदा के लिए समाप्त कर देने में आनन्दित होना मानव का सर्वोत्कृष्ट आदर्श नहीं है?

प्रत्येक साधक अपने लिए पुनर्जन्म के स्वत्व-त्याग के अधिकार को बहुत ही निश्चयपूर्वक सुरक्षित रखता है; क्योंकि मोक्ष उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है और वह अपने भाग्य का स्वामी है। कोई भी मनोग्रन्थि - चाहे वह आध्यात्मिक हो या ऐहिक-सदा के लिए अच्छी नहीं होती। मृत्यु के समय किसी मनोग्रन्थि से उत्पीड़ित होने की अपेक्षा मन को किसी भी अस्वस्थ भय की मनोग्रन्थि से परिमार्जित करना अच्छा है। जीवन के भौतिक मूल्यों के क्षणिक स्वरूप से अवगत हो जाने पर व्यक्ति को अपने इस रक्त-मांस-मय कारागृह में पुनः यन्त्रणा पाने की

सम्भावनाओं को अस्वीकार कर देना चाहिए और उसके पास जो भी इच्छा तथा विचार-शक्ति हो, उनसे पूर्ण बल तथा तीव्रता के साथ अपने वैध पावने की माँग करनी चाहिए।।

विचार कर्म का निश्चय करता है और कर्म भाग्य का निश्चय करता है। प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति का एक विशाल भण्डार है और व्यक्ति निश्चय ही मात्र अपनी इच्छा-शक्ति से तथा अवश्यम्भावी भगवत्कृपा के साथ भावी जीवन की किसी भी सम्भावना को ध्वस्त कर सकता है तथा अपने वर्तमान जीवन को इस प्रकार आकार दे सकता है कि उसमें ऐहिक कामनाओं का कोई चिह्न और क्षतचिह्नित कार्यों की अमिट छाप का कोई संकेत तक रह न जाये। क्या अप्रतिम ज्ञानी तथा त्यागी दत्तात्रेय ऋषि ने नहीं कहा - "दीक्षित व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है।"

२. मृत्यु क्या है?

इस स्थूल शरीर से जीवात्मा का अलग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। मृत्यु के अनन्तर ही नवीन तथा उत्तम जीवन का प्रारम्भ होता है। मृत्यु आपके व्यक्तित्व और आत्म-चेतना को रोकती नहीं। यह तो जीवन के उत्तम स्वरूप का द्वार उन्मुक्त करती है। इस भाँति मृत्यु पूर्णतर जीवन का प्रवेश द्वार है।

जन्म और मरण तो माया के जादू हैं। जो जन्म लेता है, वह मरना आरम्भ करता है। जीवन ही मरण है और मरण ही जीवन है। इस संसार-रूपी रंगभूमि में प्रवेश करने तथा बाहर जाने के लिए जन्म और मरण-ये दो द्वार हैं। वास्तव में न तो कोई आता है और न कोई जाता ही है। ब्रह्म अर्थात् जो शाश्वत सत्ता है, एकमात्र वही विद्यमान है।

जिस प्रकार आप एक घर से निकल कर दूसरे घर में प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा भी अनुभव प्राप्त करने के लिए एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाता है। जिस प्रकार एक मनुष्य पुराने फटे हुए वस्त्रों को निकाल फेंकता है तथा नये वस्त्र धारण करता है, उसी भाँति इस शरीर का निवासी (पुरुष) जीर्ण-शीर्ण शरीर को फेंक कर नये शरीर में प्रवेश करता है।

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। जीवन नित्य निरन्तर प्रवाहशील प्रगति है, जिसका कभी भी अन्त नहीं। यह तो गुजरने का मार्ग है। प्रत्येक जीवात्मा को अपना अनुभव प्राप्त करने तथा नया विकास साधने के लिए उसमें हो कर जाना पड़ता है। इस भाँति मृत्यु एक आवश्यक घटना है।

इस शरीर से जीवात्मा का अलग होना निद्रा से अधिक कोई विशेष बात नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य सो जाता है और जाग उठता है, उसी भाँति जन्म और मृत्यु-ये दोनों ही हैं। मृत्यु निद्रा की-सी दशा है और जन्म जाग्रति की-सी। मृत्यु श्रेष्ठतर नवीन जीवन का विकास प्रारम्भ करती है। विवेकी तथा ज्ञानी पुरुष मृत्यु से भयभीत नहीं होते; क्योंकि वे जानते हैं कि मृत्यु तो जीवन का प्रवेश-द्वार है। उन ज्ञानी जन के लिए मृत्यु उस म्यान के सदृश्य नहीं है जिसमें रहने वाली तलवार जीवन-सूत्र को काट डालती है; परन्तु उनके लिए तो मृत्यु देवदूत बनी रहती है जिसके पास स्वर्ण की वह कुंजी है जो आत्मा को विशेष विकसित, पूर्ण और सुखमय स्थिति का अनुभव कराने के लिए जीवन का द्वार उन्मुक्त कर देती है।

प्रत्येक जीवात्मा की स्थिति एक वृत्त के समान है। इस वृत्त की परिधि किसी भी स्थान पर नहीं है; परन्तु इसका केन्द्र इस शरीर में है। एक शरीर से दूसरे शरीर में इस केन्द्र का स्थानान्तरित होना ही मृत्यु कहलाती है। तो फिर तुम मृत्यु से क्यों भयभीत होते हो?

जो यह सर्वोत्तम आत्मा परमात्मा है, वह मृत्यु-रहित है, विनाश-रहित है, काल-रहित है, कारण-रहित है और दशा-रहित है। वह इस शरीर, मन तथा समस्त संसार का मूल-कारण अथवा अधिष्ठान है। पाँच महाभूतों से बने इस शरीर की ही मृत्यु होती है। भला इस शाश्वत आत्मा की मृत्यु किस प्रकार हो सकती है; क्योंकि आत्मा तो देश, काल तथा कारण से परे है।

यदि तुम जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाना चाहते हो, तो तुम्हें बिना शरीर का बनना पड़ेगा। कर्म के परिणाम-स्वरूप ही यह शरीर रहता है। तुम्हें ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए जिसमें फल की आशा हो। यदि तुम अपने-आपको राग-द्वेष आदि से बचा सकते हो, तो कर्म से मुक्त रह सकोगे। यदि तुम केवल अपने अहंकार को मार डालो, तो तुम अपने-आपको राग-द्वेष से मुक्त रख सकोगे। उस अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर यदि तुम अपने अज्ञान का निवारण कर सको, तो तुम अपने अहंकार को दूर कर सकोगे। इस शरीर का मूल कारण एकमेव अज्ञान ही है।

यह आत्मा सभी प्रकार के शब्द, रूप, रस, स्पर्श आदि से परे है। यह स्वयं निराकार एवं निर्गुण है। यह प्रकृति से भी परे है। यह तीन प्रकार के (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) शरीरों से तथा शरीर के पाँच कोशों से परे है। यह अनन्त, अविनाशी तथा स्वयं-प्रकाश है। जो पुरुष इस शाश्वत आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह अपने-आपको काल के कराल गाल से बचा लेता है।

३. मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है

शरीर में रहनी वाली व्यक्तिगत आत्मा ही 'जीवात्मा' कहलाती है। ये जीवात्माएँ अपनी क्रियाओं के सम्पादनार्थ तथा इस जगत् से अनुभव प्राप्त करने के लिए विविध शरीरों का निर्माण करती हैं। स्व-निर्मित इन शरीरों में वे जीव प्रवेश करते हैं और जब वे शरीर में रहने के अनुपयुक्त हो जाते हैं, तब उन्हें वे परित्याग कर देते हैं। वे जीव पुनः नवीन शरीरों का निर्माण करते हैं और पुनः उसी प्रकार उन शरीरों का भी परित्याग कर देते हैं। यह प्रवेश तथा निर्गमन ही जीवों का आविर्भाव तथा तिरोभाव कहलाता है। शरीर में जीवात्मा का प्रवेश होना 'जन्म' कहलाता है और शरीर से जीवात्मा का अलग होना 'मरण' कहलाता है। यदि शरीर में जीवात्मा विद्यमान न हो, तो उसे मृतक कहते हैं।

स्त्री के शोणित में पुरुष के शुक्र के सम्मिश्रण की क्रिया को माता के उदर में बालक का गर्भ धारण करना कहते हैं। पुरुष के शुक्र के अणु तथा स्त्री के शोणित के अणु जीवाणु हैं। वे कोरी आँखों से दिखायी नहीं पड़ते; परन्तु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वे दृष्टिगोचर होते हैं। सामान्य रूप से इस प्रकार के जीवाणुओं के सम्मिश्रण को ही 'गर्भ' कहते हैं तथा वैज्ञानिक रीति से इसे शोणित के फलद्रूप होने की क्रिया कहते हैं।

एक व्यक्ति की मृत्यु के विषय में जो घटनाएँ होती हैं, उनके क्रम को जानने के लिए तथा इस विषय में वर्तमान अज्ञान के आवरण को विदीर्ण करने के लिए विचारशील मानव सदा ही प्रयत्नशील रहा है; परन्तु मृत्यु के परे जीवन के विषय में जो अज्ञान का आवरण है, उसे दूर करने में मनुष्य को पूर्ण सफलता मिल चुकी है, यह नहीं कहा जा सकता।

इस रहस्य के उद्घाटन के लिए आधुनिक विज्ञान भी प्रयत्नशील है; परन्तु अद्यावधि कोई ऐसा तथ्य इसके हाथ नहीं लगा है, जो किसी प्रकार की मान्यता की आधारभूमि बन सके। परन्तु इस विषय में जो प्रयोग किये जा रहे हैं, उनसे बहुत-सी रोचक बातों का पता चलता है।

ऐसा कहा जाता है कि इस बात का अभी पता नहीं लग सका कि एक कोश से बने हुए शरीर की स्वाभाविक मृत्यु कब हुई? जब इस पृथ्वी पर एक कोश से बने हुए प्राणियों के जीवन का प्रारम्भ हुआ, उस समय उनके लिए मृत्यु अज्ञात थी। जब एक कोश से बने हुए प्राणियों से अनेक कोश वाले प्राणियों का इस जगत् में विकास हुआ, तभी से यह मृत्यु का दृश्य देखने में आता है।

विज्ञान की प्रयोगशालाओं में किये गये प्रयोगों से पता चला है कि बिल्ली या मुर्गे के शरीर से अलग किये हुए चूलिका-ग्रन्थि, स्त्रीबीज, अण्डकोष, प्लीहा, हृदय, गुरदा इत्यादि सम्पूर्ण अंग जब जीवित रखे जाते हैं, तो उनमें नये कोश तथा तन्तुओं का उभार होने के कारण उनके आकार तथा परिमाण में वृद्धि होती है।

यह भी देखने में आया है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समाप्त हो जाने के अनन्तर भी शरीर के अंग अपनी क्रियाएँ करते रहते हैं। रुधिर के श्वेत कणों की यदि सँभाल की जाये, तो वे जिस शरीर से निकाले गये हैं, उसके नाश हो जाने पर भी महीनों तक जीवित रहते हैं। परन्तु यह बात सच है कि उनमें जो जीवन है, वह रक्त-कणों का जीवन है, वह उस व्यक्ति का जीवन नहीं है।

मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। यह तो केवल एक ही व्यक्तित्व के विकास का अन्त है। विश्व में विश्वमय बनने के लिए जीवन सतत प्रवहणशील है तथा जब तक वह अनन्त में विलीन नहीं हो जाता, तब तक वह प्रगतिशील बना रहता है।

४. मृत्यु का क्रम

श्री वसिष्ठ मुनि अपने योगवासिष्ठ में कहते हैं :

"शरीर में होने वाली व्याधियों के कारण इस शरीर की नाड़ियों की शक्ति क्षीण पड़ जाती है और उसके परिणाम स्वरूप नाड़ियों के संकोच और विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। नाड़ियों के इस संकोच और विकास के कारण ही अन्दर का श्वास बाहर और बाहर का श्वास अन्दर आता-जाता रहता है। इस गति के अवरुद्ध होने से शरीर अपना सन्तुलन खो बैठता है तथा पीड़ा का अनुभव करता है। इसके कारण न तो अन्दर का श्वास भली-भाँति बाहर होता है और न बाहर का श्वास ही भली-भाँति शरीर में पुनः प्रवेश करता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया में अवरोध होने से मनुष्य अचेत हो जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। व्यक्ति की सम्पूर्ण वासनाएँ तथा आसक्तियाँ जो उस समय उसके अन्दर वर्तमान होती हैं, वे सब-की-सब बाहर निकल आती हैं। जो व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण वासनाओं तथा संस्कारों के साथ शरीर के अन्दर रहता है, उसे ही जीव कहते हैं। जब शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है, तब व्यक्ति के अन्दर रहने वाले प्राण जीव के साथ शरीर से बाहर निकल आते हैं और वायु में भटकते रहते हैं। वायु-मण्डल की वायु इस प्रकार के जीव के साथ रहने वाले अनेक प्राणों से आपूर्ण रहती है। वायु में रहने वाले ये जीव अपने पूर्व-जीवन के अनुभवों के कारण उन प्राणों के अन्दर टिके रहते हैं। मैं उन्हें देख सकता हूँ। इस भाँति जो जीवात्मा अपनी सम्पूर्ण कामनाओं के साथ रहता है, उसे उस समय प्रेत (परलोक में गया हुआ) कहते हैं।

"जहाँ पर जब एक (शरीर) मृत्यु को प्राप्त होता है, तब मृत्यु की अचेतनावस्था दूर हो जाने पर वह (जीव) वहीं पर दूसरे लोक का अनुभव करने लगता है।"

५. मृत्यु के चिह्न

मृत्यु के वास्तविक चिह्न को खोज निकालना बहुत ही कठिन है। हृदय के स्पन्दन का स्तम्भित हो जाना, नाड़ी की गति रुक जाना अथवा श्वासोच्छ्वास का स्थगित होना-ये मृत्यु के वास्तविक चिह्न नहीं हैं। हृदय का स्पन्दन तथा नाड़ी एवं श्वासोच्छ्वास इत्यादि क्रियाओं का बन्द होना, अवयवों का कठोर पड़ जाना, शरीर में उष्णता का अभाव ये सभी मृत्यु के सामान्य कारण हैं। नेत्रों में अपना प्रतिबिम्ब पड़ता है कि नहीं-इसका पता डाक्टर लगाते हैं और उसके पाँव को झुकाने का भी प्रयास करते हैं; परन्तु ये चिह्न मृत्यु के ठीक-ठीक चिह्न नहीं हैं। कारण यह है कि ऐसे बहुत से उदाहरण देखने में आये हैं कि श्वासोच्छ्वास तथा हृदय की धड़कन बन्द होने पर भी कुछ समय पश्चात् वे व्यक्ति पुनः जीवित हो उठे।

हठयोगियों को पेटी में बन्द कर उन्हें चालीस दिन तक पृथ्वी के अन्दर गाड़ देते हैं। उसके अनन्तर उन्हें बाहर निकाला जाता है और वे जीवित रहते हैं। श्वासोच्छ्वास दीर्घ काल तक रोका जा सकता है। यदि कृत्रिम रूप से प्राणायाम के द्वारा श्वास को रोका जाये, तो भी दो दिवस तक श्वासोच्छ्वास बन्द रहता है। इस विषय के बहुत से उल्लेख पाये जाते हैं। लगातार घण्टों तक तथा कई दिनों तक भी हृदय की धड़कन रोकी जाती है और पुनः चालू की जाती है। इससे यह कहना बहुत कठिन है कि मृत्यु का ठीक तथा अन्तिम चिह्न क्या हो सकता है? शरीर का बिगड़ जाना तथा सड़ जाना ही मृत्यु का अन्तिम चिह्न हो सकता है।

मृत्यु के अनन्तर शरीर बिगड़ने लगे, इसके पहले ही किसी को तुरन्त गाड़ नहीं देना चाहिए। कोई ऐसा सोच सकता है कि अमुक व्यक्ति मर गया है; परन्तु हो सकता है कि वह मनुष्य अर्धसमाधि, अचेतनावस्था अथवा समाधि की दशा में रह रहा हो। ये सम्पूर्ण अवस्थाएँ मृत्यु से मिलती-जुलती हैं। बाह्य चिह्न समान ही होते हैं।

हृदय की गति रुक जाने के कारण जिन लोगों की मृत्यु होती है, उनके शव को तुरन्त ही नहीं गाड़ देना चाहिए; क्योंकि ऐसा सम्भव है कि कुछ समय के अनन्तर उनका श्वासोच्छ्वास पुनः चालू हो जाये। शरीर में बिगाड़ होने के पश्चात् ही उनके शव को गाड़ने आदि की क्रिया करनी चाहिए।

एक योगी स्वेच्छा से अपने हृदय के स्पन्दन को रोक सकता है। वह समाधि की दशा में घण्टों अथवा दिनों तक रह सकता है। समाधि-अवस्था में हृदय की धड़कन तथा श्वासोच्छ्वास की क्रियाएँ नहीं होतीं। यह निद्रा-रहित निद्रा अथवा सम्पूर्ण चेतनावस्था है। जब योगी स्थूल चेतना की स्थिति में आता है, तब हृदय की धड़कन तथा श्वासोच्छ्वास की क्रियाएँ पुनः प्रारम्भ हो जाती हैं। विज्ञान इस विषय का कुछ स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। डाक्टर जब स्वयं अपनी आँखों से इन अवस्थाओं को देखते हैं, तो वे अवाक् हो जाते हैं।

६. मृत्यु के समय तत्त्वों का अलग होना

यह स्थूल शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश- इन पाँच महाभूतों से बना हुआ है। देवताओं का शरीर तैजस अथवा दिव्य पदार्थ का बना होता है। उनमें अग्नि-तत्त्व की अधिकता रहती है। इसी भाँति जलचरों में जल-तत्त्व तथा पक्षियों में वायु-तत्त्व की अधिकता रहती है।

शरीर के अन्दर जो कठोरता का अंश है, वह पृथ्वी-तत्त्व के कारण है। रस-भाग जल के कारण है। शरीर में तुम जो उष्णता का अनुभव करते हो, वह अग्नि-तत्त्व के कारण है। शरीर का हिलना-डुलना तथा दूसरी क्रियाएँ वायु के कारण होती हैं। अवकाश आकाश के कारण है। जीवात्मा इन पाँच तत्त्वों से भिन्न है।

पाँचों महातत्त्व प्रकृति के अक्षय कोष से उत्पन्न हुए हैं। मृत्यु के पश्चात् ये तत्त्व अलग हो कर अपने मूलभूत तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। पार्थिव तत्त्व अपने उस मूल कोष में जा कर मिल जाता है जो कि पृथ्वी तत्त्व से बना होता है। दूसरे तत्त्व भी अपने-अपने मूल-तत्त्व में जा मिलते हैं।

मृत शरीर को स्नान करा कर नया वस्त्र धारण कराते हैं और उसके अनन्तर उसे श्मशान भूमि में ले जाते हैं। वहाँ उसे अग्नि की चिता पर रखते हैं। इस समय जो मन्त्र पढ़ते हैं, उसमें प्राण-तत्त्व को बोधित करते हैं। प्राण-तत्त्व को इसलिए सम्बोधित किया जाता है कि जिससे मुख्य प्राण स्थूल शरीर से पंच-प्राणों को विमुक्त कर दे और वे बाहर की वायु में रहने वाले अपने-अपने तत्त्वों में मिल जायें। उसके पश्चात् शरीर को लक्ष्य करके मन्त्र पढ़ा जाता है जिससे कि वह अपने पाँचों तत्त्वों-पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश के साथ अपने मूल स्रोत में विलीन हो जाये। उसके अनन्तर शरीर में अग्नि लगा देते हैं। प्राण सहित जीवात्मा इस भाँति शरीर से विलग हो कर चेतना में प्रवेश करता है और स्थूल तत्त्वों से अलग होते ही अपनी आगे की यात्रा प्रारम्भ कर देता है।

जो-जो इन्द्रियाँ अधिष्ठाता देवों के साथ रह रही होती हैं, उन (इन्द्रियों) की क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। दृष्टि सूर्य के अन्दर चली जाती है, जिस सूर्य से आँख को देखने की शक्ति मिली थी। वाणी अग्नि में चली जाती है। प्राण वायु में मिल जाते हैं। श्रोत्र दिशाओं में मिल जाते हैं। शरीर पृथ्वी में मिल जाता है। शरीर के लोम ऋतु-कालीन वनस्पति में मिल जाते हैं। शिर के केश वृक्षों में मिल जाते हैं तथा रक्त एवं वीर्य जल में मिल जाते हैं।

७. उदान वायु के कार्य

जिस वायु को पवन अथवा हवा कहते हैं, वही वायु प्राण अथवा प्राण-शक्ति है। प्राण इन्द्रियों को गतिमान् करता है। प्राण विचार को उत्पन्न करता है। प्राण शरीर को गति प्रदान करता है और गतिशील बनाता है। प्राण अन्न को पचाता, रक्त-संवा करता तथा मल-मूत्र को बाहर निकालता है। प्राण श्वासोच्छ्वास की क्रिया कराता है। प्राणों के द्वारा ही तुम देखते, सुनते, स्पर्श करते, स्वाद चखते तथा विचार करते हो। समष्टि-प्राण हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा है। प्रकृति का व्यक्त होना प्राण है। स्थूल प्राण श्वास तथा सूक्ष्म प्राण जीवन-शक्ति है।

जिस प्रकार फुटबाल के अन्दर रबर की एक थैली होती है, उसी प्रकार इस स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर होता है। मृत्यु के समय उदान वायु इस सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर खींच लाता है। जो स्वप्नावस्था में कार्य करता है, जो स्वर्ग को जाता है, वह सूक्ष्म शरीर है। उदान वायु सभी प्रकार के प्राणों को वहन करने वाला वाहन है। यह उदान वायु भोजन को निगलने में सहायक होता है। जब तुम प्रगाढ़ निद्रा में होते हो, तब यह तुम्हें ब्रह्म के पास पहुँचाता है। उदान वायु का निवास स्थान कण्ठ है।

सारे प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा स्थूल शरीर का आधार तथा मूल-कारण यह अजर-अमर आत्मा है। यह तुम्हारे हृदय-प्रकोष्ठ में रहता है। वहाँ एक सौ एक (१०१) नाड़ियाँ हैं। इन सभी नाड़ियों की बहत्तर सहस्र (७२,०००) उपनाड़ियाँ हैं। रक्त-संचार की क्रिया करने वाला व्यान इन नाड़ियों में गतिमान् रहता है।

इन नाड़ियों में से एक मुख्य नाड़ी द्वारा उदान वायु बाहर आता है। वह उदान वायु तुम्हारे पुण्य-कर्मों के आधार पर तुम्हें उत्तम लोकों में, तुम्हारे बुरे कर्मों के आधार पर तुम्हें अधम लोकों में और तुम्हारे पुण्यापुण्य मिश्रित कर्मों के आधार पर तुम्हें मानव-लोक में ले जाता है।

जो योगी जीवन्मुक्त बन गये होते हैं, उनको न तो जन्म से और न इन भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों से ही कोई सम्बन्ध रहता है। उन योगियों के मन और प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। उनका जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा में विलीन हो जाता है।

इन जीवन्मुक्तों को आगे ले जाने के लिए उदान वायु की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जिन्होंने अजर-अमर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लिया है तथा जिन्होंने वैराग्य द्वारा अपने मन को शुद्ध एवं पवित्र बना लिया है, वे जीवन्मुक्त योगी मृत्यु के क समय सम्पूर्णतः विलीन हो जाते हैं; उन्हें इस लोक में पुनः वापस नहीं आना पड़ता।

८. आत्मा क्या है?

आत्मा के दो प्रकार हैं-एक तो व्यक्तिगत आत्मा अर्थात् जीवात्मा और दूसरा सर्वोत्तम आत्मा अर्थात् परमात्मा। व्यक्तिगत आत्मा सर्वोत्तम आत्मा का प्रतिबिम्ब या प्रतिमूर्ति है। जिस प्रकार एक सूर्य जल के भिन्न-भिन्न भागों में प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार परमात्मा का प्रतिबिम्ब भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न अन्तःकरण में पड़ता है।

आत्मा चैतन्य है। वह अभौतिक पदार्थ है। वह बुद्धि-रूप अथवा ज्ञान-रूप है। वह स्वयं चैतन्य है। जीवात्मा उस चैतन्य का प्रतिबिम्ब है। यह वह जीवात्मा है जो शरीर की मृत्यु के पश्चात् शरीर से अलग हो कर स्वर्गलोक को जाता है और उस जीवात्मा के साथ इन्द्रिय, मन, प्राण, संस्कार, वासनाएँ तथा भावनाएँ रहती हैं। जब यह जीवात्मा स्वर्ग की ओर प्रयाण करता है, तब उसे प्राणमय सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है।

जब सरोवर का जल सूख जाता है, तब जल के अन्दर रहने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब अपने बिम्ब सूर्य में जा मिलता है। इसी भाँति जब ध्यान-धारणा के द्वारा मन विलीन हो जाता है, तब यह जीवात्मा स्वयं परमात्मा में विलीन हो जाता है और यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी है।

वासना, इच्छा, अहंकार, अभिमान, लोभ, काम तथा राग-द्वेष के कारण जीवात्मा अशुद्ध बनता है और उसके परिणाम स्वरूप यह जीवात्मा परिच्छिन्न बनता है, वह अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान् बनता है। जो सर्वोत्तम आत्मा परमात्मा है, वह अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। वह ज्ञान-स्वरूप तथा आनन्द-स्वरूप है।

अज्ञान के कारण ही यह जीवात्मा बन्धन में पड़ता है और उससे ही उसे मन, शरीर तथा इन्द्रियों की मर्यादा में आना पड़ता है। ये बन्धन और मर्यादा केवल देखने को हैं। ये माया-रूप हैं। जब यह आत्मा अनन्त तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने-आपको मर्यादित पदार्थों तथा बन्धनों से मुक्त बना लेता है। जिस प्रकार जल का एक बुदबुद सागर के साथ एक-रूप बन जाता है, उसी भाँति अज्ञान के नष्ट हो जाने पर यह जीवात्मा भी परमात्मा के साथ एक-रूप हो जाता है।

जीवात्मा ही शरीर, मन तथा इन्द्रियों को जीवन प्रदान करता है। यही उन्हें विकसित करता तथा गति एवं प्रेरणा प्रदान करता है। जब यह जीवात्मा शरीर को छोड़ कर चला जाता है, तब यह शरीर लकड़ी के एक कुन्दे के समान बन जाता है। उस समय यह मृत शरीर न तो बोल सकता है, न चल सकता है और न देख ही सकता है।

वह सर्वोत्तम परमात्मा स्वयं चैतन्य-स्वरूप है, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है, स्वयं आनन्द-रूप है, स्वयं ज्ञान-रूप है तथा स्वयम्भू है। वह स्वयं को जानता है तथा दूसरों को भी जानता है। वह स्वयं ज्योति है और सभी पदार्थों को

प्रकाशित करता है। अतः वह चैतन्य है। भौतिक पदार्थ अपने-आपको नहीं जानते हैं; अतएव वे जड़-चेतना-रहित हैं।

वह परमात्मा निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापक, अविभाज्य, अविनाशी तथा देश-काल से अपरिच्छिन्न है। यद्यपि सूर्य स्वयं दिवस एवं रात्रि का निर्माण करता है: परन्तु सूर्य में काल अथवा दिवारात्रि कुछ भी नहीं है। इसी भाँति वह परमात्मा भी है। वह अनन्त, शाश्वत तथा अमर है।

एकमेव परमात्मा ही सत् है। नाम-रूप-मय यह जगत् माया-रूप हैं। जिस भाँति रज्जु में सर्प का आरोप किया जाता है, उसी भाँति उस परमात्मा में इस जगत् का आरोप किया गया है। हाथ में दीपक लेते ही रज्जु में रहने वाला सर्प नष्ट हो जाता है। तुम धारणा ध्यान करो अथवा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करो, उसके परिणाम स्वरूप इस जगत् का अध्यास पूर्ण रूप से जाता रहेगा।

प्रत्येक व्यक्ति ऐसा अनुभव करता है कि मैं हूँ- 'अहं अस्मि' । कोई ऐसा नहीं कहता कि 'मैं नहीं हूँ' (मेरी सत्ता नहीं है)। इससे ही यह स्वतः सिद्ध है कि अजर-अमर परमात्मा का अस्तित्व (सत्ता) है। प्रगाढ़ निद्रा के समय तुम परमात्मा में विश्राम करते हो। उस समय तुम्हारे लिए यह जगत् नहीं रह जाता है। तुम विशुद्ध आनन्द का अनुभव करते हो। इस बात से भी यह प्रमाणित होता है कि परमात्मा की सत्ता है और उसका स्वयम्भू-स्वरूप शुद्ध आनन्द है।

अपने मन को शुद्ध बनाओ। उसको स्थिर करो। परमात्मा में अपने मन को लगा दो। अपने शाश्वत दिव्य स्वभाव के विषय पर ध्यान करो और उसका दर्शन करो। ऐसा करने से तुम जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पा जाओगे; तुम शाश्वत आनन्द तथा अमरत्व प्राप्त कर लोगे ।

९. शरीर-सम्बन्धी दार्शनिक विचार

चार्वाक लोग नास्तिक हैं। वे मृत्यु के पश्चात् आत्मा की सत्ता का निषेध करते हैं। उसी भाँति भौतिकवादी भी शरीर को आत्मा मान कर उसकी सेवा-पूजा करते हैं और आत्मा जो वास्तव में शरीर से भिन्न है, तो भी वे शरीर से भिन्न रहने वाली आत्मा का निषेध करते हैं। वे लोग भी नास्तिक ही हैं। चार्वाक, लोकायत तथा भौतिकवादियों की ऐसी मान्यता है कि 'यह शरीर ही आत्मा है तथा आत्मा शरीर से अलग हो कर नहीं रहता है। वे लोग यह भी मानते हैं कि 'शरीर के मर जाने पर आत्मा भी मर जाता है।'

वे लोग ऐसा भी बतलाते हैं कि जिस प्रकार पान, सुपारी तथा चूने के सम्मिश्रण से लाल रंग पैदा होता है अथवा कुछेक पदार्थों के योग से मादक पेय तैयार हो जाता है, उसी भाँति पाँचों महाभूतों के सम्मिश्रण से जीवात्मा की रचना होती है। क्या ही सुन्दर दार्शनिक विचार है! यह दार्शनिक विचार तो शरीर-सम्बन्धी ही है। विरोचन तथा उसके अनुयायियों की यह विचारधारा है।

जो आँखों से दिखायी नहीं पड़ता है, उसको वे लोग नहीं मानते हैं। अपनी इन्द्रियों की पहुँच से परे वे किसी भी वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। वे लोग प्रत्येक वस्तु के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण माँगते हैं। यदि वे अपनी आँखों से जीवात्मा को देख लें, तभी वे उसकी सत्ता को मानने को तैयार होंगे। वे नहीं जानते हैं कि आत्मा का अनुभव तो समाधि में ही सम्भव है। वह प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं है। उनका दर्शन है- "खाओ, पीओ तथा मौज उड़ाओ; इन्द्रियों के भोगों को पूरे परिमाण में भोग लो। भविष्य के विषय में कोई विचार न करो। यदि तुम्हारे पास धन न हो, तो तुम भीख माँग कर अथवा उधार ले कर खाओ, पीओ और पीते ही रहो; क्योंकि जब शरीर जल

कर भस्म हो जायेगा, तो तुम्हारे कर्मों का लेखा लेने वाला कोई नहीं होगा।" प्रत्येक देश में इस प्रकार की विचारधारा वाले लोग प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं और दिन-प्रति-दिन उनकी संख्या में वृद्धि ही होती जा रही है। संसार में ऐसे बहुत से लोग हैं जो आत्मा की सत्ता में विश्वास ही नहीं करते हैं।

जीवात्मा के पुनर्जन्म अथवा आवागमन के विषय में चार्वाकमतावलम्बी तथा भौतिकवादी माथापच्ची नहीं करते हैं। मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से, कब और किस प्रकार आया? मृत्यूपरान्त क्या बचा रहता है? जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? मृत्यु के दूसरे तट पर क्या है? जब शरीर मर जाता है, तब व्यक्ति किन-किन अवस्थाओं को पार करता है और किस लोक में अपने-आपको पाता है? इस प्रकार के दार्शनिक प्रश्नों पर वे विचार नहीं करते। वे लोग तो ऐसा मानते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार के प्रश्नों की खोज-बीन करने लगता है, वह अज्ञानी है। वे एकमात्र अपने-आपको ही चतुर तथा बुद्धिमान् मानते हैं। उनके विचारों को बदलने अथवा उन्हें समझाने में कोई भी युक्ति अथवा तर्क काम नहीं देते। आत्मा के अनस्तित्व के प्रतिपादन में उन लोगों ने ग्रन्थ-के-ग्रन्थ भर डाले हैं। ये विपरीत बुद्धि वाले क्या ही अद्‌भुत मनुष्य हैं!

भारत के आधुनिक कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले अधिकांश विद्यार्थी, जो कि भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही सन्तानें हैं, कुशिक्षा एवं कुसंगति के कारण उपर्युक्त दर्शन के अनुयायी बन गये हैं। वे दम्भ एवं काम के पाश में आ गये हैं। वे प्रार्थना, सन्ध्या, गायत्री-जप तथा गीता, उपनिषद्, रामायण एवं भागवत के स्वाध्याय को छोड़ बैठे हैं। वे तो शरीर के पुजारी बन गये हैं, वेशभूषा का अन्धानुकरण कर रहे हैं। वे होटल, रेस्तराँ, क्लब, सिनेमा आदि में नियमित रूप से जाते हैं। वे बड़े उत्साह से ताश खेलते तथा उपन्यास पढ़ते हैं और प्रति मास सैकड़ों रुपये व्यय कर डालते हैं। इसका तो उन्हें विचार ही नहीं आता कि हमारे माता-पिता कितना आर्थिक संकट झेल रहे हैं। जब वे स्नातक बन कर आते हैं, तो पचास रुपये भी उपार्जन नहीं कर पाते। अज्ञानी माता-पिता इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण कल्पनाओं को प्रश्रय देते हैं कि उनका पुत्र बड़ा न्यायाधीश, इंजीनियर, बैरिस्टर तथा नागरिक बन जायेगा। वे रुपये उधार ले कर तथा घर की भूमि-सम्पत्ति बेच कर भी अपने बालकों को पढ़ाते हैं। परिणाम स्वरूप ये माता-पिता अपने बालकों को बेरोजगारों की श्रेणी में पाते हैं। प्रकृति निश्चय ही दुष्ट विद्यार्थियों को दण्ड देती है।

चार्वाकमतावलम्बी तथा भौतिकवादी जनों का ऐसा मत है कि शरीर अथवा भूतों का संघात ही विचार, बुद्धि, चैतन्य, मन और जीव इत्यादि को उत्पन्न करता है और जब तक शरीर रहता है, तब तक चैतन्य इत्यादि भी रहते हैं। उनकी ऐसी मान्यता है कि जैसे यकृत का विकार पित्त है, वैसे ही भेजे की एक क्रिया का विकार विचार, बुद्धि अथवा चैतन्य है। परमाणुओं का संघात बुद्धि अथवा चैतन्य को उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई भी गति उत्तेजना, भाव तथा विचार को कभी भी उत्पन्न नहीं कर सकती। चैतन्य अथवा बुद्धि किसी भी प्रकार गति का कार्य नहीं बन सकती। जड़ पदार्थ अथवा जड़ शक्ति ने कभी भी चैतन्य या बुद्धि को उत्पन्न किया हो - ऐसा कोई भी वैज्ञानिक सिद्ध नहीं कर सकता है। ये चार्वाक तथा भौतिकवादी अवास्तविक तर्कों से अपने को धोखे में डाल रहे हैं। इन्द्रिय-जन्य भोगों के आकर्षण के कारण वे लोग अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे हैं। प्रत्येक वस्तु को उसके ठीक प्रकाश में देखने की सूक्ष्म बुद्धि इनमें नहीं है। यह शरीर तो सतत परिवर्तित होता रहता है। पंचभूतों का संघात यह पार्थिव शरीर तो नाशवान् है; परन्तु जड़ पदार्थ, शक्ति, मन इत्यादि का आधार, अधिष्ठान तथा मूल कारण जो यह अविनाशी आत्मा है, यह नित्य है। इस शरीर का नाश हो जाने पर भी इस प्रकार का ज्ञान बना रहेगा कि 'मैं हूँ।' तुम अपने विषय में कभी ऐसा सोच ही नहीं सकते और न कल्पना ही कर सकते हो कि इस शरीर का नाश हो जाने पर मैं नहीं रहूँगा। तुम्हारे अन्दर एक ऐसी स्वाभाविक भावना है कि 'इस शरीर का नाश हो जाने के पश्चात् भी मैं अवश्य रहूँगा।' यही यह प्रकट करता है कि शरीर से स्वतन्त्र एक अजर-अमर आत्मा है। आत्मा का प्रदर्शन तो कभी भी नहीं किया जा सकता; परन्तु ऐसे कितने ही अनुभूत तथ्य हैं, जिनके आधार पर इसके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है।

मृत्यूपरान्त क्या अवशेष रहता है? शरीर की मृत्यु के पश्चात् आत्मा का क्या होता है? वह आत्मा कहाँ चली जाती है? क्या वह मृत्यूपरान्त भी रहती है? इस प्रकार का स्वाभाविक प्रश्न एक-साथ ही सबके मन में उठता रहता है। यह वह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जो सबके हृदय-तल को स्पर्श करता है। वह प्रश्न आज भी प्रत्येक देश के प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में वैसा ही बना हुआ है जैसा कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व था। इसे कोई रोक नहीं सकता है। इस प्रश्न की आज भी चर्चा हो रही है और भविष्य में भी इसकी चर्चा होती रहेगी। पुरातन युग से ही तत्त्वज्ञानी, ऋषि, मुनि, योगी, विचारक, स्वामी, अध्यात्मज्ञानी तथा पैगम्बर इत्यादि इस महान् तथा जटिल प्रश्न को सुलझाने का यथाशक्य प्रयास करते आये हैं।

जब तुम भोग-विलास-मय जीवन में निमग्न रहते हो, जब तुम लक्ष्मी के क्रोड़ में होते हो, तब तुम इस विषय को भूल जाते हो; परन्तु जिस समय तुम देखते हो कि मृत्यु के क्रूर हाथों ने तुम्हारे एक प्रिय कुटुम्बी को तुमसे छीन लिया है, उस समय तुम आश्चर्यचकित हो जाते हो और सोचने लगते हो कि 'वह प्रिय कुटुम्बी कहाँ गया ? क्या वह अब भी कहीं पर है? क्या शरीर से अलग भी कोई आत्मा है? उसका पूर्ण रूप से नाश हो गया-ऐसा सम्भव नहीं। यह तो हो नहीं सकता कि उसके विचार एवं कर्मों के संस्कार पूर्णतः नष्ट हो जायें।'

अपने अन्तर्मुखी ध्यान से प्राप्त अनुभव के आधार पर उपनिषद् द्रष्टा ऋषियों ने यह अधिकारपूर्ण घोषणा की है कि 'एक सर्वव्यापक अविनाशी आत्मा की सत्ता है। वह आत्मा स्वयं-प्रकाश, पूर्ण, आनन्दघन, अज, अविनाशी, अमर तथा देश-काल एवं विचार-रहित है। जब शरीर तथा मन आदि के सीमित बन्धन नष्ट हो जाते हैं, जब अविनाशी आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति से अज्ञान का आवरण दूर हो जाता है, तब जीवात्मा परमात्मा के साथ तद्रूप बन जाता है। वह आत्मा अन्तर्यामी और मन, प्राण तथा इन्द्रियों का प्रेरक है। मन आत्मा से ही प्रकाश प्राप्त करता है।

जीवात्मा भौतिक विज्ञान की मर्यादा से परे है। वह जड़ विज्ञान की पहुँच से भी परे है। मनुष्य वह जीवात्मा है, जिसने इस स्थूल शरीर को धारण कर रखा है। जीवात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है। वह आकाश, मन तथा शक्ति से भी विशेष सूक्ष्म है। चैतन्य तथा ज्ञान आत्मा के स्वभाव हैं, शरीर के नहीं। चैतन्य ही आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है। मनुष्य का व्यक्तित्व तो अजर, अमर, सर्वव्यापक, अविभाज्य अथवा ब्रह्म का आंशिक प्रकट स्वरूप है। मनुष्य के अन्दर रहने वाला अमर अंश आत्मा है।

हे अज्ञानी मानव! अमर आत्मा का निषेध करने वाले ग्रन्थों का आधार ले कर तुम पथ-भ्रष्ट हो गये हो । अब इस मोह-निद्रा से जग जाओ। अपने नेत्र खोलो । तुमने तो अपने लिए नरक में स्थान सुरक्षित कर लिया है और उस अन्धतम प्रदेश में जाने के लिए सीधा पारपत्र प्राप्त कर लिया है। स्वर्ग का द्वार बन्द करने वाले निकृष्ट ग्रन्थों को पढ़ने से ऐसा हुआ है। इन्हें अग्नि को भेंट कर दो तथा गीता एवं उपनिषदों को पढ़ो। नियमित जप, कीर्तन तथा ध्यान करो और इस भाँति अपने बुरे संस्कारों को आमूल नष्ट कर डालो। तभी तुम विनाश से सुरक्षित रह सकोगे।

इस शरीर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित न करो। तुम यह नाशवान् शरीर नहीं हो। तुम तो अविनाशी आत्मा हो। तुम आत्मा से तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करो। 'तत्त्वमसि' - 'वह आत्मा तुम हो।' इसका अनुभव करो। इसका साक्षात्कार करो तथा मुक्त बनो।

१०. मूर्च्छा, निद्रा तथा मृत्यु

मूर्च्छा में पड़े हुए व्यक्ति के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वह जाग रहा है; क्योंकि वह अपनी इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों को देख नहीं सकता है। मूर्च्छा दूर होने पर जब वह व्यक्ति पुनः चेतना प्राप्त करता

है, तब वह कहता है कि 'मैं गहन अन्धकार में पड़ गया था। मुझे किसी भी वस्तु का भान न था।' जाग्रत मनुष्य अपने शरीर को सीधा खड़ा रखता है; परन्तु मूर्च्छित होने वाले व्यक्ति का शरीर नीचे लुढ़क जाता है।

मूर्च्छित व्यक्ति स्वप्न की अवस्था में है-ऐसा नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि वह पूर्ण रूप से बेहोश हो जाता है। 'वह मनुष्य मर गया है' ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि उसमें प्राण-शक्ति होती है और उसका शरीर गरम होता है। उसके श्वासोच्छ्वास भी चलते रहते हैं।

जब मनुष्य अचेत होता है और जब लोगों को यह शंका होती है कि वह मनुष्य जीवित है अथवा मर गया है, तब लोग उस मनुष्य के शरीर में गरमी है या नहीं-इस बात का पता करने के लिए उसकी छाती पर हाथ रखते हैं और उसकी नाक के पास भी हाथ रखते हैं कि जिससे यह मालूम हो सके कि उसका श्वासोच्छ्वास चल रहा है अथवा नहीं। यदि लोगों को ऐसा मालूम हो जाये कि मनुष्य के शरीर में गरमी नहीं है और वह श्वास नहीं ले रहा है, तब वे लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि मनुष्य मर गया है। इसके विपरीत यदि लोगों को गरमी और श्वास का पता चलता है, तो उन्हें विश्वास होता है कि मनुष्य मरा नहीं है। उसके मुख पर ठण्ढा जल छिड़कते हैं। इससे वह मनुष्य होश में आ जाता है। इस भाँति मूर्च्छित व्यक्ति मरा हुआ मनुष्य नहीं है; क्योंकि वह फिर चेतना प्राप्त कर जीवित होता है।

कितनी ही बार ऐसा होता है कि मूर्च्छित होने पर मनुष्य बड़ी देर तक श्वास नहीं लेता। उसका शरीर थर-थर काँपता रहता है। उसका चेहरा भयंकर प्रतीत होता है। उसकी आँखों की टकटकी बंध जाती है। परन्तु निद्रित मनुष्य शान्त और सुखी दिखायी पड़ता है। वह नियमित रूप से श्वासोच्छ्वास लेता है। उसके नेत्र मूँदे होते हैं। उसके शरीर में प्रकम्पन नहीं होता है। निद्रित व्यक्ति को एक उँगली के स्पर्श मात्र से ही जगाया जा सकता है; परन्तु मूर्च्छा में पड़े हुए व्यक्ति को लाठी के आघात से भी नहीं उठा सकते। मूर्च्छा बाह्य कारणों से भी आती है। शिर पर लाठी का प्रहार अथवा इसी प्रकार के अन्य आघातों के कारण ही मूर्च्छा उत्पन्न होती है; परन्तु निद्रा थकावट के कारण आती है। मूर्च्छा को 'अर्ध-सुषुप्ति' कहते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि निद्रा की भाँति वह ब्रह्म-सुख का आधा अनुभव करता है। इसका अर्थ इतना ही है कि मूर्च्छा की दशा निद्रा की दशा से आधे अंश में मिलती-जुलती है अर्थात् मनुष्य जब मूर्च्छावस्था में होता है, तब वह एक ओर तो प्रगाढ़ निद्रा की दशा में होता है और दूसरी ओर वह मृत्यु की दशा में पड़ा होता है-ऐसा कहा जा सकता है। वास्तव में मूर्च्छा मृत्यु का द्वार ही है। यदि उसका कोई प्रारब्ध कर्म शेष रह गया होता है, तब तो वह होश में आता है अन्यथा मृत्यु को प्राप्त होता है।

इस मूर्च्छावस्था की आयुर्वेद के वैद्यों तथा ऐलोपैथी के डाक्टरों ने भली-भाँति शोध की है। सामान्य अनुभव से भी इसका ज्ञान हो जाता है।

जाग्रत दशा, स्वप्न दशा, प्रगाढ़ सुषुप्ति की दशा तथा मूर्च्छा की दशा-इन सम्पूर्ण दशाओं का मूक साक्षी ब्रह्म है। वह तुम्हारा अन्तरात्मा है। वह अमर एवं अविनाशी है। उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करो। शरीर की सभी दशाओं का अतिक्रमण कर सदा-सर्वदा के लिए सुखी तथा आनन्दमय बन जाओ।

द्वितीय प्रकरण

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा

१. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (क)

जीवात्मा प्राण, मन तथा इन्द्रियों के साथ अपने पूर्व-शरीर को त्याग देता है और एक नवीन शरीर धारण करता है। अविद्या, शुभ-अशुभ कर्म तथा पूर्व-जन्मों के संस्कारों को भी वह अपने साथ ही ले जाता है।

जिस प्रकार कीड़ा दूसरी घास पर अपने पाँवों को टिका कर ही पहले की घास की पकड़ को छोड़ता है, वैसे ही इस वर्तमान शरीर को छोड़ने के पहले जीवात्मा को आने वाले शरीर का भान रहता है। सांख्य मत के अनुसार 'जीव तथा इन्द्रियाँ-दोनों ही व्यापक हैं और जब नया शरीर धारण करना होता है, तब कर्म के अनुरूप ही नये शरीर का कार्य प्रारम्भ हो जाता है।' बौद्ध मत के अनुसार 'नये शरीर में आत्मा इन्द्रियों के बिना अकेले ही कार्य प्रारम्भ करता है तथा नये शरीर की भाँति नयी इन्द्रियों की रचना होती है। वैशेषिकों के मतानुसार 'अकेले मन ही शरीर में प्रवेश करता है।' दिगम्बर जैन मत के अनुसार 'जिस प्रकार एक तोता एक वृक्ष को छोड़ कर दूसरे वृक्ष पर उड़ जाता है, उसी प्रकार अकेला जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर में चला जाता है।' ये सम्पूर्ण मत समीचीन नहीं हैं और ये वेद-विरुद्ध भी हैं। 'जीवात्मा मन, प्राण, इन्द्रिय तथा सूक्ष्म भूत अथवा तन्मात्राओं के साथ ही पुराने शरीर से चला जाता है' - यह विचार ही ठीक है। जीवात्मा नये शरीर के लिए बीज-रूप सूक्ष्म भूतों या तन्मात्राओं को अपने साथ ले जाता है। ये सभी तन्मात्राएँ जीवात्मा के साथ ही जाती हैं।

जब जीवात्मा शरीर का त्याग करता है, तब सबसे पहले मुख्य प्राण शरीर छोड़ देता है और तब उसका अनुसरण करते हुए दूसरे सभी प्राण भी चले जाते हैं। ये सब प्राण तन्मात्राओं की भूमिका अथवा मूल-आधार के बिना टिक नहीं सकते हैं। तन्मात्राएँ ही प्राण के संचरण के लिए भूमिका तैयार करती हैं।

जब प्राण दूसरे शरीर में जाता है, तब वहाँ केवल आनन्द ही रहता है। विषयों की तन्मात्राएँ प्राणों का वाहन बनती हैं। जहाँ तन्मात्राएँ होती हैं, वहीं इन्द्रिय तथा प्राण भी होते हैं। वे कभी भी विलग नहीं होते हैं। प्राण के बिना जीवात्मा नये शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता है।

जब मरण-काल आ उपस्थित होता है, तब प्रयाण करते हुए जीवात्मा के साथ जाने के लिए प्राण और इन्द्रियाँ बिलकुल निष्क्रिय बन जाती हैं।

यज्ञ में आहुति-रूप से अर्पित किये जाने वाले दूध, घी इत्यादि पदार्थ एक सूक्ष्म आकार ग्रहण करते हैं, जिन्हें अपूर्व कहते हैं। वे अपूर्व यज्ञ करने वाले के साथ सम्बद्ध रहते हैं। मरण के पश्चात् जीव जल के साथ संयुक्त हो कर प्रयाण करता है। यज्ञ में आहुति-रूप से दिये हुए जल इत्यादि पदार्थ ही उस सूक्ष्म अपूर्व के रूप में होते हैं।

भेंट, तर्पण के रूप में प्रदान किया हुआ जल अपूर्व के रूप में सूक्ष्म आकार धारण करता है। यह अपूर्व जीवात्मा से सम्बद्ध होता है और जीव को उसके पुण्य-फल प्राप्त कराने के लिए स्वर्गलोक में ले जाता है।

जो लोग यज्ञ-याग आदि करते हैं, वे स्वर्ग में देवताओं को आनन्द प्रदान करते हैं और उनके साथ स्वयं भी आनन्द भोगते हैं। वे पुण्यशाली व्यक्ति देवताओं के साथ उनके सेवाभावी साथी के रूप में रहते हैं। वे लोग देवताओं के साथ रह कर देवों के आनन्द का उपभोग करते हैं और उस लोक में उनकी सेवा करते रहते हैं। वे लोग चन्द्रलोक में आनन्द भोगते हैं और जब उनका पुण्य समाप्त हो जाता है, तब पृथ्वी पर पुनः वापस आ जाते हैं।

जो जीव स्वर्ग से लौटते हैं, उनका संचित कर्म कुछ अवशेष रहता है और वह कर्म ही उनके जीवन का कारण बनता है। जीव के कर्मों का एक संचित भाग होता है, जिसे उसने अभी भोगा नहीं है। उस संचित कर्म की शक्ति से जीवात्मा इस भूलोक में वापस आता है। कर्म-राशि में जो पुण्य-कर्म होते हैं, वे पुण्य फल के भोग के लिए जीव को चन्द्रलोक में ले जाते हैं, तब चन्द्रलोक में भोगों के लिए प्राप्त जल-रूप शरीर पिघल जाता है। जिस भाँति सूर्य-रश्मियों से हिम-उपल पिघल जाता है, जिस भाँति अग्नि के ताप से घी पिघल जाता है, उसी भाँति अब स्वर्ग के भोगों का अन्त आने वाला है-इस विचार से उत्पन्न क्लेश के कारण जल-रूप शरीर भी गल जाता है। इसके अनन्तर अवशेष कर्मों के आधार पर जीव नीचे आ जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद् (५-१०-७) में हम देखते हैं कि 'जो जीव अपने पूर्व-जन्मों में अच्छे आचरण वाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मण योनि, क्षत्रिय योनि अथवा वैश्व योनि प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरण वाले होते हैं, वे तत्काल अशुभ योनियों को प्राप्त होते हैं। वे कुत्ते की योनि अथवा शूकर की योनि प्राप्त करते हैं।'

स्मृति बतलाती है कि भिन्न-भिन्न वर्णाश्रम के लोग अपने-अपने धर्म का अनुष्ठान करते हैं। वे लोग अपने पुण्य-कर्मों का फल भोगने के लिए इस जगत् से परलोक को चले जाते हैं। अपने शेष रहे हुए संचित कर्म-फल भोगने के लिए जब वे पुनः जन्म लेते हैं, तब वे विशेष वर्ण, उत्तम कुल, अधिक सौन्दर्य, दीर्घ आयु, ज्ञान, चरित्र, समृद्धि, सुख-सुविधा तथा कुशलता आदि गुण प्राप्त करते हैं अर्थात् जीव अपने संचित कर्म के अनुसार ही जन्म लेते हैं।

ब्रह्म-हत्या आदि कितने ही ऐसे जघन्य पाप हैं, जिनके कारण कई जन्म लेने पड़ते हैं। जीव जिस मार्ग से ऊपर गया होता है, कुछ दूर तक तो वह उसी मार्ग से नीचे आता है और फिर उसका मार्ग बदल जाता है।

पापी चन्द्रलोक में नहीं जाते हैं। वे लोग यमलोक को जाते हैं और वहाँ अपने बुरे कर्मों का फल भोग कर पुनः भूलोक में वापस आ जाते हैं।

जो पाप करते हैं, उनके लिए नरक भयजनक लगता है। रौरव, महारौरव, वह्नि, वैतरणी तथा कुम्भीपाक नरक अस्थायी हैं। तामिस्र तथा अन्ध तामिस्र-ये दोनों नरक स्थायी माने जाते हैं। चित्रगुप्त तथा दूसरे यमदूत सातों नरकों की देख-भाल रखते हैं। उन सातों नरकों के भी मुख्य नियामक यमराज ही माने जाते हैं। चित्रगुप्त तथा दूसरे यमदूत तो यमराज द्वारा नियुक्त किये हुए अधीक्षक तथा सहकारी हैं। वे सब यम के शासन तथा प्रभुत्व के अधीन कार्य करते हैं। चित्रगुप्त तथा अन्यान्य यमदूत यमराज से निर्देश प्राप्त करते हैं।

२. तृतीय स्थान

श्रुति कहती है कि जो ज्ञान के साधन द्वारा देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में नहीं जाते, न कर्म के साधन द्वारा पितृयान मार्ग द्वारा चन्द्रलोक को ही जाते हैं, अर्थात् जो इन दोनों मार्गों तथा साधनों से वंचित रह जाते हैं, वे निम्न योनि में बारम्बार जन्मते तथा मरते रहते हैं। इस भाँति पाप करने वाले तृतीय स्थान को जाते हैं। श्रुति का वचन है कि जो इन दोनों में से किसी मार्ग द्वारा नहीं जाते, वे बारम्बार जन्मने-मरने वाले कीट-पतंग आदि क्षुद्र जीव-जन्तुओं में जन्म लेते हैं। इनके विषय में ही ऐसा कहा जाता है-"उत्पन्न होओ और मरो।" यही उनका तृतीय स्थान है। पापी लोग जीव-जन्तु की भाँति क्षुद्र प्राणी माने जाते हैं; क्योंकि वे कीट-पतंगों के शरीर धारण करते हैं। उनका स्थान तृतीय स्थान कहा जाता है; क्योंकि वह न तो ब्रह्मलोक है और न चन्द्रलोक ही है।

जीवात्माएँ फिर इसी मार्ग से जिस प्रकार वे गये थे, उसी प्रकार लौटते हैं। वे पहले आकाश को प्राप्त होते हैं और आकाश से वायु को। वायु हो कर वे धूम्र होते हैं और धूम्र हो कर अभ्र होते हैं। वे अभ्र हो कर मेघ होते हैं, मेघ हो कर बरसते हैं। वे पुण्यशाली जीव आकाश, वायु इत्यादि पदार्थ-रूप नहीं बन जाते; अपितु वे तो उन पदार्थों के सदृश्य ही बनते हैं। वे आकाश के सदृश सूक्ष्म रूप धारण करते हैं और इससे वे वायु की सत्ता अथवा प्रभाव में आ जाते हैं और वहाँ से आगे चल कर वे धूम्र के सम्पर्क में आ कर उससे मिल जाते हैं और इस प्रकार जीवात्मा इनसे हो कर शीघ्र ही निकल जाता है।

"मेघ हो कर वह बरसता है। तब वह जीव धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल, उड़द आदि हो कर उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह निष्क्रमण निश्चय ही कष्टप्रद है। उस अन्न को जो-जो भक्षण करता है, जो-जो वीर्य-सेचन करता है, तद्रूप ही वह जीव हो जाता है" (छान्दोग्य उपनिषद्: ५-१०-५)।

आकाश, वायु, धूम्र, अभ्र, मेघ आदि रूपों में जब जीवात्मा को यात्रा करनी होती है, तब उसे अल्प समय ही लगता है; परन्तु बाद में उसे जब जौ, वीर्य, गर्भजात शिशु के रूप में निष्क्रमण करना होता है, तब उसे इसमें पूर्वापेक्षा बहुत अधिक समय लगता है और साथ ही कष्ट भी बहुत अधिक होता है।

नारदीय पुराण कहता है- "जो पुण्यशाली जीव ऊपर से नीचे आना आरम्भ करता है, उसे माता के उदर में प्रवेश करने में एक वर्ष लग जाता है; क्योंकि इसके पूर्व उसे अनेक स्थानों में भटकना पड़ता है।" धान्य तथा औषधियों में उनका अपना जीवात्मा रहता है। ये पुण्यशाली जीव उन जीवात्माओं के सम्पर्क में आते हैं; परन्तु वे उनके सुख-दुःख के भागी नहीं बनते । वे पुण्यशाली जीवात्माएँ तो धान्य के पौधों के केवल सम्पर्क में ही आते हैं।

धान्य तथा औषधियों को तो ये जीवात्माएँ अपने विराम-स्थल के रूप में ही उपयोग करते हैं। वे उनके साथ तद्रूप नहीं बनते। वे अपनी विशेषता खो नहीं देते।

छान्दोग्य उपनिषद् की यह घोषणा है- "उस अन्न को जो-जो भक्षण करता है और जो-जो वीर्य-सेचन करता है, तद्रूप ही वह जीव हो जाता है" (५-१०-६)।

जो पुरुष वीर्य-सेचन करता है, उसके साथ जीव सम्पर्क में आता है। ऊपर से उतरने वाला जीवात्मा उसका आहार बन कर उसका वीर्य बनता है। जीवात्मा पुरुष के अन्दर तब तक ही रहता है, जब तक कि पुरुष का वीर्य स्त्री के उदर में सेचन नहीं किया जाता है। जिस धान्य में जीवात्मा आया होता है, वही धान्य जब पुरुष के भोजन में आता है, तब उस धान्य से जो वीर्य-रूप रस बनता है, उसके साथ वह जीवात्मा सम्बन्ध में आता है और उसके परिणाम स्वरूप वह अन्त में माता के उदर में शरीर धारण करता है।

माता के उदर में वह जीवात्मा एक ऐसे सम्पूर्ण विकसित शरीर को धारण करता है, जो पूर्व-संचित कर्मों के फल भोगने के लिए उपयोगी हो। जिस परिवार में जीवात्मा को जन्म लेना होता है, उस परिवार के लोग भी उसके संचित कर्मों से स्वभावतः ही सम्बन्धित होते हैं। इस विषय में छान्दोग्य उपनिषद् कहती है-"उन जीवों में जो अच्छे आचरण वाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मण योनि, क्षत्रिय योनि अथवा वैश्य योनि प्राप्त करते हैं; परन्तु जो अशुभ आचरण वाले होते हैं, वे कुत्ते की योनि, शूकर की योनि अथवा चाण्डाल की योनि प्राप्त करते हैं" (५-१०-७)।

पुनर्जन्म की इस सम्पूर्ण योजना को बतलाने का अभिप्राय यह है कि जो सर्वोत्तम सुख एवं आनन्द-रूप है, वह एकमेव आत्मा ही है। केवल वही तुम्हारी खोज का विषय होना चाहिए। शोक-सन्ताप-मय इस संसार में तुम्हें ग्लानि उत्पन्न हो और इस भाँति तुम आत्मा के शाश्वत सुख को प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही तत्पर बनो।

अरे अज्ञानी जन, रे मूर्ख मानव, ओ दुःखी जीव, हे मोहापन्न आत्मा, अज्ञान की दीर्घ निद्रा से तुम जग जाओ। अपनी आँखें खोलो। मोक्ष प्राप्त करने के लिए साधन-चतुष्टय का विकास करो और मानव जीवन के चरम तथा परम लक्ष्य को इस जीवन में ही प्राप्त कर लो। शरीर-पिंजर से बाहर निकल आओ । न मालूम किस अनादि काल से तुम इस पिंजर में आ कर फँस गये हो। तुम बारम्बार माता के उदर में निवास करते रहते हो। अविद्या की इस ग्रन्थि का उच्छेदन कर डालो और शाश्वत सुख के साम्राज्य में विचरण करो।

३. कर्म तथा पुनर्जन्म (क)

इस स्थूल शरीर से आत्मा का विलग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। इस शरीर के ही कारण मनुष्य को सब शोक-सन्ताप प्राप्त होते हैं। योगी को मृत्यु से भय नहीं लगता; क्योंकि वह तो अपने-आपको इस अजर-अमर सर्वव्यापक आत्मा से एक-रूप बना लेता है।

कर्म और पुनर्जन्म-ये दोनों हिन्दू शास्त्र के ही नहीं, बौद्ध शास्त्र के भी महान् स्तम्भ हैं। जो मनुष्य इन दोनों महान् सत्यों में विश्वास नहीं करता, वह इन दोनों धर्मों के तथ्य को हृदयंगम नहीं कर सकता है।

यदि तुम शोक, दुःख, कष्ट तथा मृत्यु के रहस्य को जान जाओ, तो तुम दुःख और शोक का अतिक्रमण कर सकोगे। मृत्यु एक ऐसी घटना है जो मानव-मन को गम्भीर चिन्तन में प्रवृत्त करती है। मृत्यु का अध्ययन ही वास्तव में दर्शन का विषय है। सभी दार्शनिक विचारधाराएँ मृत्यु की घटना से उत्पन्न हुई हैं। भारत के सर्वोत्तम जीवन-दर्शन का प्रारम्भ भी मृत्यु के विषय से ही होता है। तुम भगवद्गीता, कठोपनिषद् तथा छान्दोग्य उपनिषद्

का परिशीलन करो। उनमें इस विषय का वर्णन है। मृत्यु तो सत्य के ध्येय-रूप शाश्वत ब्रह्म की खोज तथा उसके साक्षात्कार के लिए आह्वान है।

मृत्यु तो शरीर का परिवर्तन मात्र है। जीवात्मा इस शरीर को व्यवहृत वस्त्र की भाँति उतार फेंकता है। परमानन्द सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य नित्य परिशुद्ध तथा पूर्ण बनता रहता है। इस क्रिया में इसे करोड़ों वर्ष लग जाते हैं

हिन्दू-धर्म के अनुसार जीवन तो नित्य-निरन्तर प्रवाहशील प्रगति है, जिसका कभी भी अन्त नहीं। जो कुछ भी परिवर्तन हो रहा है, वह तो आवरणों तथा बाह्य शरीर का ही परिवर्तन है। आत्मा तो अमर है। यह जीव अपने कर्मानुसार एक के अनन्तर दूसरा रूप धारण करता रहता है। हिन्दू धर्म दो मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर टिक रहा है : एक तो कर्म का नियम तथा दूसरा पुनर्जन्म का सिद्धान्त। मृत्यु तो विकास के लिए एक आवश्यक प्रक्रिया है। जिस प्रकार तुम एक घर से निकल कर दूसरे घर में प्रवेश करते हो, उसी प्रकार जीवात्मा भी अनुभव प्राप्त करने के लिए एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

मृत्यु के उपरान्त, जो जीव शरीर से उत्क्रमण करता है, उसको प्रेत की संज्ञा दी जाती है। वह परलोक की यात्रा करता है। स्थूल शरीर से विलग हुआ जीव दश दिन तक अपने प्रिय एवं परिचित स्थानों में चक्कर लगाता रहता है। इन दश दिनों तक उसे भूत का आकार मिलता है। इस अवधि में उसके सूक्ष्म अथवा लिंग-शरीर को प्रतिदिन आकार मिलता रहता है तथा उसके मस्तक, आँख तथा दूसरे अवयवों का गठन होता रहता है। पितरों को तीर्थ-स्थानों में श्राद्ध तथा तर्पण के रूप में जो-कुछ तिल, जल इत्यादि दिया जाता है, उससे इस लिंग-शरीर का परिपोषण होता है।

ग्यारहवें दिन जीव को पूरा आकार प्राप्त हो जाता है। अब वह जीव मृत्युदेव यमराज की सभा में जाने के लिए प्रयास आरम्भ करता है। यमराज के यहाँ पहुँचने में जीव को मरने के पश्चात् एक वर्ष लग जाता है। यह मार्ग विघ्न-बाधा तथा कष्टों से आकीर्ण है। जो मनुष्य बहुत ही कुत्सित कर्म किये होता है, उसे बहुत कष्ट भोगने पड़ते हैं; परन्तु यदि मृत व्यक्ति के पुत्र इत्यादि स्व-जन उस वर्ष में उसके हेतु पिण्डदान तथा श्राद्ध-तर्पण की क्रिया करते हैं और पवित्र विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन इत्यादि अर्पित करते हैं, तो उस जीवात्मा के कष्ट कुछ कम हो जाते हैं और उसकी मृत्यु-यात्रा सरल हो जाती है। मृत व्यक्ति का पुत्र बिना रुदन के ही पिण्डदान दे। जो जन्मा है, वह मरेगा अवश्य और जो मर गया है, उसका जन्म होना भी अवश्यम्भावी है। यह अपरिहार्य है। इसका कोई उपाय नहीं। अतः तुम्हें उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। दशाह-क्रिया को बन्द नहीं रखना चाहिए। बारहवें दिन पुत्र को सपिण्ड श्राद्ध कर्म अवश्य करना चाहिए और सोलह मास तक अन्वाहार्य-श्राद्ध (मासिक श्राद्ध) करना चाहिए। पुत्र जो कुछ श्राद्ध-तर्पण आदि की क्रिया करता है, उससे मृत आत्मा को न्याय-सभा में जाने के लिए मार्ग में पोषण मिलता है।

मार्ग में उग्र गरमी पड़ती है, उस जीव को बहुत ही ताप लगता है; परन्तु उसका पुत्र ग्यारहवें दिन जो छाते का दान करता है, इससे उसके शिर पर मधुर छाया होती है। वह मार्ग कण्टकाकीर्ण है, परन्तु जूते के दान के प्रतिफल से वह अश्वारोही बन आगे बढ़ता है। वहाँ पर शीत, उष्णता तथा वात का भयावह क्लेश होता है; परन्तु वस्त्र-दान की सहायता से वह मृत आत्मा सुखपूर्वक अपने मार्ग पर चलता रहता है। वहाँ भीषण गरमी पड़ती है और जल भी अप्राप्य है; परन्तु मृत व्यक्ति के पुत्र ने जो जल-पात्र दान किया था, तृषित होने पर वह जीव उस दान की सहायता से जल-पान करता है। पुत्र को इसी भाँति गो-दान भी करना चाहिए।"

यमलोक के प्रधान लेखपाल चित्रगुप्त हैं। वे भाग्य का लेखा-जोखा रखते हैं। जब एक वर्ष पूरा हो जाता है, तब मृत आत्मा इस पृथ्वी लोक में जो-जो भले-बुरे कर्म किये होता है, उसे चित्रगुप्त बतलाते हैं। उस दिन वह मृत आत्मा अपने प्रेतत्व का परित्याग कर देता है। उस दिन वह पितृ की उच्च स्थिति को प्राप्त होता है।

पितृ-पूजन हिन्दू-धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। पितरों की तीन स्थितियाँ गिनी जाती हैं : पिता, पितामह तथा प्रपितामह और माता, मातामही तथा प्रमातामही। इस लोक में जो जीवित है, उसके ये तीनों ही पितृ माने जाते हैं। जो आत्मा अपने इहलौकिक जीवन में शुभ कर्म करता है, वह मृत्यु के अनन्तर पितृलोक में अपने पूर्वजों से सम्बन्ध प्राप्त करता है और उनके साथ आनन्दपूर्वक रहता है।

जिन लोगों ने कुसंग, अज्ञान अथवा अहंकार के कारण श्राद्ध, तर्पण तथा दूसरे धार्मिक कार्य करना छोड़ दिया है, उन्होंने वास्तव में अपने पूर्वजों की तथा अपनी भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचायी है। उन्हें अब जग जाना चाहिए। अभी से ही उन्हें इन धार्मिक कृत्यों को प्रारम्भ कर देना चाहिए। अभी भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ है।

संवत्सरी, श्राद्ध, तर्पण तथा पितृ-पूजन आदि धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान द्वारा तुम अपने पूर्वजों के शुभ आशिष प्राप्त करो।

४. मृत्यूपरान्त जीवात्मा कैसे शरीर छोड़ता है

जब मृत्यु का समय आ पहुँचता है, तब श्वास-क्रिया में कठिनाई मालूम होती है और शरीर स्थित जीवात्मा शब्द करता-करता बाहर निकल जाता है। जिस प्रकार अधिक भार से लदी हुई गाड़ी शब्द करती है, उसी प्रकार जब प्राण छूटते हैं, तब जीवात्मा शब्द करता है।

जीवात्मा की उपाधि सूक्ष्म शरीर है। जिस प्रकार इस शरीर में रहते हुए जीवात्मा जाग्रत तथा स्वप्न की अवस्थाओं में विचरण करता रहता है, उसी भाँति मृत आत्मा इस लोक और परलोक में भी विचरण करता है। यह जन्म से मृत्यु पर्यन्त गति करता रहता है। जब तक इहलौकिक जीवन में रहता है, तब तक वह स्थूल शरीर तथा इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है; परन्तु जब मरता है, तो वह स्थूल शरीर से पृथक् हो जाता है। इस शरीर से जिस समय प्राण विलग होते हैं, उसी समय जीवात्मा भी तुरन्त विलग हो जाता है। सर्वोत्तम स्वयं-प्रकाश परमात्मा ही जीवात्मा का नियमन करता है। आत्मा के प्रकाश के आधार पर ही मनुष्य बैठता है, उठता है तथा कार्य करता है।

सूक्ष्म शरीर का मुख्य आधार-रूप यह प्राण है। स्वयं-प्रकाश आत्मा से ही प्राण-शक्ति को प्रेरणा मिलती है। ऐसा विदित होता है कि जब सूक्ष्म शरीर निष्क्रमण के लिए उद्यत होता है, तब आत्मा भी उसके साथ हो लेती है; अन्यथा सूक्ष्म शरीर से संयुक्त जीवात्मा भार से लदी हुई गाड़ी की भाँति आवाज किस प्रकार कर सकता है? वह इसलिए आवाज करता है कि प्राण-शक्ति के अलग होने से जो असह्य पीड़ा होती है, उसके कारण जीवात्मा की स्मृति विलुप्त हो जाती है। इस समय जो पीड़ाएँ सहन करनी पड़ती हैं, उनके कारण यह जीवात्मा मन की असहायावस्था में आ पड़ता है। अतः जब मरण-काल आता है, तब वह जीवात्मा अपने कल्याण के लिए कोई भी साधन अपना नहीं सकता है। अन्त-काल में आचरण करने योग्य साधनों का अभ्यास करने के लिए उसे पहले से ही सावधान रहना चाहिए; क्योंकि उस समय वह ईश्वर का चिन्तन नहीं कर सकता।

ज्वर तथा अन्यान्य व्याधियों से आक्रान्त हो कर यह शरीर वृद्धावस्था में कृश एवं दुर्बल हो जाता है। ज्वर तथा अन्य कारणों से जब यह शरीर अत्यन्त कृश हो जाता है, तब भार-बोझिल गाड़ी की भाँति जीवात्मा शब्द करता-करता उत्क्रमण करता है।

मृत्यु के कारण अनेक एवं विविध हैं। मनुष्य सर्वदा काल के मुख में है। जब वह जरा भी तैयार नहीं रहता, तभी मृत्यु अकस्मात् उसे संसार से उठा लेती है। मनुष्य सदा ऐसा सोचता रहता है कि वह मृत्यु से बच जायेगा अथवा यदि वह यह मानता भी है कि मृत्यु अवश्यमेव आनी है, तो भी वह ऐसा विश्वास करता है कि वह बहुत दिनों के पश्चात् ही आयेगी। जैसे आम, अंजीर अथवा पीपल के वृक्ष का फल अपनी शाखा से अलग हो जाता है, उसी भाँति अनन्त-रूप जीवात्मा उस शरीर के अंगों से सम्पूर्णतया अलग हो जाता है। तब वह जीवात्मा अपनी प्राण-शक्ति को विकसित करने के लिए, जिस मार्ग से विशेष शरीर में आया था, उसी मार्ग से पीछे आता है। वह स्थूल शरीर के नेत्र आदि अंगों से पूर्णतया अलग हो जाता है। इस शरीर से अलग होते समय वह जीवात्मा अपनी प्राण-शक्ति की सहायता से इस स्थूल शरीर का रक्षण नहीं कर सकता। जिस भाँति जीवात्मा स्थूल शरीर तथा इन्द्रियों को छोड़ प्रगाढ़ निद्रा में प्रवेश करता है, उसी भाँति मरण-काल में भी वह इस स्थूल शरीर का संग छोड़ देता है और दूसरे शरीर से सम्बन्ध जोड़ता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति स्वप्न से जागरण में, जागरण से स्वप्न में और उसमें से फिर प्रगाढ़ निद्रा में बारम्बार अवस्था-परिवर्तन करता रहता है, उसी भाँति यह जीवात्मा भी बारम्बार एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। यह जीवात्मा भूतकाल में ऐसे अनेक शरीरों में से हो कर आया है और भविष्य में भी इसी भाँति इसका अनेक शरीरों में प्रवेश करना चालू रहेगा। यह जीवात्मा अपने भूतकालीन कर्म, ज्ञान आदि के आधार पर ही भविष्य में जन्म लेता है । अपनी प्राण-शक्ति को प्रकट करने के लिए ही यह जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। अपनी प्राण-शक्ति के आधार पर ही यह जीवात्मा अपने कर्मों की फल-भोग आदि इच्छाओं को पूरा करता है। अपने कर्मों के फल भोगने में यह प्राण-शक्ति केवल निमित्त कारण है और इसीलिए यह विशेषता बतलायी है कि 'अपनी प्राण-शक्ति को प्रकट करने के लिए।'

अपने कर्मों के फल के साक्षात्कार के लिए इस जीवात्मा ने अखिल विश्व को साधन-रूप में ग्रहण किया है और अपने इस ध्येय को सिद्ध करने के लिए वह एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँच जाता है। शतपथ ब्राह्मण बतलाता है कि 'मनुष्य उस शरीर में जन्म लेता, जो उसके लिए निर्माण किया गया है' (६-२-२-२७) । जिस भाँति मनुष्य स्वप्न की दशा से जाग्रत दशा में आता है, यह परिस्थिति उसके सदृश ही है, जिसमें कि एक शरीर से दूसरे शरीर में आना होता है।

५. शरीर-त्याग करते समय जीवात्मा राजा के तुल्य है

जब किसी देश का राजा अपनी राजधानी से अपने राज्य के किसी स्थान को देखने के लिए निकलता है, तब ग्राम के नेता लोग अन्न, जल तथा निवास तैयार कर राजा के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। वे कहते हैं- "ये आये, ये आये।" उसी प्रकार जब जीवात्मा निष्क्रमण के लिए उद्यत होता है, तब सम्पूर्ण अधिदेव तथा अधिभूत, उसके किये हुए कर्मों के फल के साधनों के साथ उस जीवात्मा की प्रतीक्षा करते हैं। वे देव जीवात्मा के योग्य सूक्ष्म शरीर तैयार करते हैं और जीवात्मा उस शरीर से कर्म का फल भोगता है।

जब राजा एक प्रदेश से जाने वाला होता है, तब 'राजा यहाँ से जाने वाले हैं' - इतनी साधारण-सी बात जान कर ही अधिकारी लोग उस राजा से मिलने आते हैं। उसी प्रकार जब मरण-काल आ पहुँचता है और कर्म-फल का भोक्ता जीवात्मा जाने वाला होता है, तब इस शरीर की इन्द्रियाँ ऐसा जान कर उससे मिलने जाती हैं। श्वासोच्छ्वास की क्रिया जब कष्टसाध्य हो जाती है, उससे जीवात्मा चला जाना चाहता है, ऐसा जान कर इन्द्रियाँ उसके पास जा पहुँचती हैं। वे इन्द्रियाँ शरीर का परित्याग करने वाले अपने नियामक जीवात्मा की आज्ञा से नहीं, वरन् उसकी इच्छा जान कर ही उससे मिलने जाती हैं।

६. निष्क्रमण की प्रक्रिया

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि जब मरण-काल आ पहुँचता है, तब यह जीवात्मा शरीर तथा इन्द्रियों को पूर्णतया छोड़ देता है। जब जीवात्मा निर्बल हो जाता है और अपनी चेतना खो बैठता है, तब इन्द्रियाँ उसके पास आ पहुँचती हैं। वास्तव में जीवात्मा निर्बल नहीं पड़ता, अपितु शरीर निर्बल पड़ जाता है। 'जीवात्मा निर्बल पड़ता है'- यह आलंकारिक अथवा लाक्षणिक वर्णन है, क्योंकि जीवात्मा तो निराकार है, अतः वह निर्बल नहीं पड़ता। इसी भाँति अचेतावस्था में भी समझना चाहिए। जब मरण-काल आ पहुँचता है, तब जीवात्मा असहाय-सा मालूम होता है। ऐसा इन्द्रियों के बाहर चले जाने के कारण ही होता है। इस असहायता का आरोप लोग जीवात्मा पर लगाते हैं। इसीलिए लोग कहते हैं कि 'अरे, यह मनुष्य तो अचेत हो गया।'

जब मनुष्य मरणासन्न होता है, तब उसकी भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ अपने मूल कारण में लीन हो जाती हैं, इससे वे इन्द्रियाँ अपना कार्य नहीं कर सकतीं। मरण के साथ ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ हृदय में लीन हो जाती हैं। इस हृदय को हृदय-कमल अथवा हृदयाकाश कहा जाता है। जब मनुष्य सुषुप्ति में होता है, तब उसकी इन्द्रियाँ सम्पूर्ण रूप से हृदय में विलीन नहीं होतीं। सुषुप्ति तथा मृत्यु में इतना ही भेद है।

नेत्रेन्द्रिय के विषय में यह बात समझनी है कि नेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठाता देव सूर्य का एक अंश है और जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक वह देव देखने की क्रिया चलाता है। जब मनुष्य मर जाता है, तब वह देव नेत्र की सहायता करना बन्द कर देता है और अपने आत्मा सूर्य में लीन हो जाता है। इसी भाँति अन्य सभी इन्द्रियां भी अपने-अपने देवों में विलीन हो जाती हैं-जैसे कि वाणी अग्नि में, प्राण वायु में इत्यादि। जब मनुष्य अन्य नवीन शरीर धारण करता है, तब वे इन्द्रियाँ अपने अधिष्ठातृ देवों के साथ उस शरीर में अपना-अपना यथोचित स्थान ग्रहण करती हैं। इसी भाँति इन्द्रियों के विलीन होने तथा उनके पुनः प्रकट होने की क्रिया त्तो प्रतिदिन की प्रगाढ़ निद्रावस्था में होती रहती है। जब नेत्र का अधिष्ठाता देव सम्पूर्ण रीति से लीन होने को तैयार होता है, तब मृतप्राय व्यक्ति रूप-रंग नहीं पहचान सकता। इस दशा में जीवात्मा प्रगाढ़ निद्रावस्था की भाँति प्रकाश से सम्पूर्ण अंशों का आहरण कर लेता है।

मरणोन्मुख व्यक्ति की हर एक इन्द्रिय सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बद्ध हो जाती है। इसीलिए उसे देख कर आस-पास के लोग कहते हैं कि 'अब वह देखता नहीं है।। इसी प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता सभी देव, एक के अनन्तर एक, अपने-अपने अंश को समाहत कर मूल-कारण में विलीन हो जाते हैं। तब वह इन्द्रियाँ अपनी क्रिया बन्द कर देती हैं। इसके अनन्तर मरने वाला व्यक्ति सुनता नहीं, सूँघता नहीं, देखता नहीं और न बोलता ही है। वह अचेत हो जाता है और तदनन्तर सदा के लिए अपनी चेतना खो बैठता है। 'वह अमुक व्यक्ति है तथा वह अमुक जाति-वर्ण का है' यह उसे कभी स्मरण नहीं होता। इस भाँति वह अपनी ज्ञान-शक्ति, स्मृति तथा जागरण की चेतना खो देता है। बाह्य जगत् उसको शून्य-सा उद्भासित होता है। उसके अनन्तर इन्द्रियाँ हृदय में एकत्रित हो जाती हैं।

सूक्ष्म शरीर में आत्मा की स्वयं-प्रकाश ज्ञान-ज्योति नित्य-निरन्तर अपने विशिष्ट रूप में विभासित होती रहती है। यह सूक्ष्म शरीर उस आत्मा का एक सीमित साधन है, जिसका आधार ले कर आत्मा सापेक्ष सत्ता में अभिव्यक्त होता है और इस भाँति वह आत्मा जन्म-मरण तथा आवागमन के परिवर्तन का विषय बनता है।

७. जीवात्मा कैसे उत्क्रमण करता है

जीवात्मा इस शरीर में रहते हुए जैसे कर्म किये रहता है तथा जैसे अनुभव प्राप्त किये रहता है, उसके अनुरूप ही शरीर से उसके निष्क्रमण का मार्ग भिन्न-भिन्न होता है। यदि उसके शुभ कर्मों का संचय अधिक है और उसी के अनुसार उसने ज्ञान भी प्राप्त किया है, तो उससे जीवात्मा को सूर्य की ओर ले जाया जाता है और वह जीवात्मा नेत्र के द्वारा शरीर त्यागता है। यदि जीवात्मा हिरण्यगर्भ के लोक को जाने का अधिकारी है, तो वह शिर द्वारा शरीर को छोड़ता है। इसी प्रकार अपने भूतकाल के कर्मों तथा अनुभवों के अनुसार यह जीवात्मा शरीर के भिन्न-भिन्न मार्गों से उत्क्रमण करता है।

परलोक को प्रयाण करने के लिए जब जीवात्मा देह त्याग करता है, तब प्राण भी उस शरीर को परित्याग कर देता है और प्राण द्वारा शरीर के परित्याग करने के साथ ही दूसरी इन्द्रियाँ भी शरीर को छोड़ देती हैं। जिस प्रकार स्वप्नावस्था में जीवात्मा में स्वतन्त्र चेतना नहीं होती, उसी भाँति मरण की दशा में भी जीवात्मा को भूतकाल के कार्यों की स्वतन्त्र स्मृति नहीं रह जाती; परन्तु कुछ विशेष स्मृतियाँ बनी रहती हैं। यदि प्रत्येक जीवात्मा की चेतना स्वतन्त्र हो, तो वह अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर ले। 'हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है' - इस विचार में जो मनुष्य सतत संलग्न रहता है, वह मरण-काल में जैसी भावना करता है, वैसी अवस्था प्राप्त कर लेता है। मृत्यु के समय एक भावना होती है, जिसमें उसके चित्त की विशेष वृत्ति के रूप में उसके संस्कार ही होते हैं। इस भावना के आधार पर ही जीवात्मा विशेष प्रकार का नवीन शरीर धारण करता है। अतः मृत्यु-काल में कर्म-वासना से मुक्त रहने के लिए मोक्षकामी साधकों को अपने जीवन काल में योगाभ्यास, ज्ञान, विज्ञान तथा सद्‌गुणों के अर्जन में बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

जिस जीवात्मा को परलोक की यात्रा करनी होती है, उसे सभी प्रकार के अनुभवों का ज्ञान होता है। जिन कर्मों को भुगतना तथा जिन कर्मों का त्याग करना है, इस प्रकार के दोनों कर्मों का पूरा ज्ञान उसे होता है। उस जीवात्मा ने भूतकाल में जो-जो जन्म लिये थे और उन जन्मों में जो-जो कर्म किये थे, उन सबका संस्कार उस जीवात्मा को होता है। नये जन्म में जीवात्मा के चरित्र-गठन में भूतकाल के ये संस्कार सक्रिय कार्य करते हैं। भूतकाल के जीवन में किये हुए कर्मों के जो संस्कार पड़े होते हैं, उनके आधार पर ही भविष्य में प्राप्त होने वाले नये जीवन के कार्यों का निर्माण होता है। इस जीवन में बिना विशेष शिक्षा के ही इन्द्रियाँ कुछेक कार्यों में निपुणता प्राप्त कर लेती हैं। सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति चित्रकला में विशेष प्रवीण होते हैं। वे किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किये बिना भी सर्वश्रेष्ठ चित्रकार को भी मात दे देते हैं। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कि एक काम की प्रचुर शिक्षा प्राप्त करने पर भी उसे नहीं कर सकते हैं। यह सब पुरातन संस्कारों के प्रकट होने अथवा अप्रकट होने पर निर्भर करता है।

जीवात्मा भविष्य में कौन-सा जन्म लेगा, इसका आधार ज्ञान, कर्म तथा पूर्व-प्रज्ञा-इन तीनों पर रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह सद्‌गुणों का विकास करे तथा सत्कर्म करे, जिससे कि वह अभिलषित भोगों के उपभोग के लिए इच्छानुकूल उपयुक्त शरीर धारण कर सके।

यद्यपि इन्द्रियाँ सर्वव्यापक हैं और सब-कुछ ग्रहण करती हैं; परन्तु वे शरीर तथा तन्मात्राओं की मर्यादा में रहती हैं, यह बात व्यक्ति के कर्म, ज्ञान तथा पूर्व-प्रज्ञा के कारण है। अतः यद्यपि इन्द्रियाँ स्वाभाविक रूप से सर्वव्यापक तथा असीम हैं, तो भी जो नवीन शरीर बनता है, उसका आधार मनुष्य के कर्म तथा पूर्व-प्रज्ञा के ऊपर रहता है और इस भाँति इन्द्रियों की प्रतिक्रियाएँ भी इसका अनुसरण कर संकोच एवं विकास को प्राप्त होती हैं।

जिस प्रकार जोंक एक तृण के अन्तिम छोर पर पहुँच कर दूसरे तृण-रूप आश्रय को पकड़ कर अपने को सिकोड़ लेती है, उसी प्रकार जीवात्मा भी एक शरीर को अलग फेंक कर अचेतावस्था को प्राप्त करके दूसरे शरीर का आश्रय ले अपना उपसंहार कर लेता है।

जिस प्रकार सुनार स्वर्ण का थोड़ा-सा भाग ले कर उससे दूसरे नवीन और अधिक सुन्दर रूप की रचना करता है, उसी प्रकार जीवात्मा इस शरीर को फेंक कर-अचेतावस्था को प्राप्त करके पितर, गन्धर्व, देव अथवा हिरण्यगर्भ के लोकों के सुखोपभोग के उपयुक्त दूसरे नवीन और सुन्दर रूप की रचना करता है।

पुनर्जन्म का मूल-कारण वासना ही है। जीवात्मा का लिंग-शरीर अथवा मन जिसमें अत्यन्त आसक्त होता है, उसी फल को यह साभिलाष प्राप्त करता है। इस लोक में यह जो-कुछ कर्म करता है, उसका फल भोगने के लिए पुन: इस लोक में आ जाता है। पुनर्जन्म की कामना करने वाला पुरुष ही ऐसा करता है; परन्तु जो पुरुष कामना नहीं करता, वह कदापि पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता। जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है, उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता, ब्रह्म ही होने से वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो ब्रह्मवेत्ता है और जिसने अपनी सम्पूर्ण वासनाओं को निर्मूल बना दिया है, उसके लिए कोई भी कर्म फल-जनक नहीं होता; क्योंकि श्रुति कहती है-"जो पूर्ण आप्तकाम हो चुके हैं तथा जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है, उनकी समस्त कामनाएँ इस शरीर में ही विलीन हो जाती हैं" (मुण्डक उपनिषद्) ।

८. मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा (ख)

यह जीवात्मा मुख्य प्राण, ज्ञानेन्द्रिय तथा मन के साहचर्य में अपने पूर्व-शरीर को छोड़ देता है और नवीन शरीर धारण करता है। वह अविद्या, शुभ-अशुभ कर्म तथा पूर्वकालीन जन्मों में प्राप्त संस्कारों को भी अपने साथ ही ले जाता है।

जब जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, तब वह सूक्ष्म शरीर की तन्मात्राओं से परिवेष्टित होता है। यह सूक्ष्म शरीर ही नये शरीर का बीज होता है।

यह जीवात्मा धून आदि आतिवाहिक पदार्थों के द्वारा ऊर्ध्वारोहण कर चन्द्रलोक में जाता है। वहाँ अपने शुभ कर्मों का फल भोग कर शेष संचित कर्मों का फल भोगने के लिए, जिस मार्ग से गया होता है, उसी मार्ग से अथवा अन्य मार्ग से भी वापस आता है।

स्वर्ग में देव बन कर रहने के लिए जो शुभ कर्म किया था, वह पुण्य-कर्म जब पूरा हो जाता है, तब शेष बचा हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म उस जीवात्मा को फिर इस लोक में वापस लाता है। इस भाँति के आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना नव-जात शिशु के सुख-दुःख का स्पष्टीकरण कर सकना सम्भव नहीं होगा।

एक ही जन्म में गत जीवन के सभी कर्मों की पूर्ति हो जाये, यह सम्भव नहीं;क्योंकि मनुष्य शुभ तथा अशुभ-दोनों ही प्रकार के कर्म किये रहता है, जिसके परिणाम-स्वरूप वह मनुष्य-योनि, देव-योनि अथवा पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेता है। इससे यह सम्भव नहीं कि शुभ-अशुभ-दोनों प्रकार के कर्मों के फल की पूर्ति एक ही जन्म में हो जाये। अतएव यद्यपि स्वर्ग में पुण्य-कर्मों का फल पूरा-पूरा भोगा जा चुका होता है, तथापि दूसरे कर्म संचित रहते हैं, जिनके कारण मनुष्य भले अथवा बुरे वातावरण में जन्म लेता है।

जीवात्मा जो नया शरीर धारण करता है, उसका भान उसे पहले से ही रहता है। जिस प्रकार जोंक अथवा कीड़ा दूसरी घास पर अपने पाँवों को टिका कर ही पहली घास की पकड़ को छोड़ता है, वैसे ही इस वर्तमान शरीर को छोड़ने से पहले जीवात्मा को अपने भावी शरीर का भान रहता है।

एक मत यह है कि मृत्यु होने के पश्चात् जो कर्म फल-जनक होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं और इससे जो लोग चन्द्रलोक में जा कर फिर वापस आते हैं, उनके पास किसी प्रकार का कर्म अवशेष नहीं रहता। परन्तु यह मत यथार्थ नहीं है। कल्पना कीजिए कि कुछ विशेष कर्म एक ही प्रकार के जन्म में पूर्ण रूप से भोगे जाते हैं तथा कुछ विशेष कर्म दूसरे प्रकार के जन्म में भोगे जाते हैं, तो फिर वे कर्म एक ही जन्म में किस प्रकार पुंजीभूत हो सकते हैं? हम ऐसा तो कह नहीं सकते कि अमुक कर्म फल देना बन्द कर देते हैं; क्योंकि प्रायश्चित के अतिरिक्त इस भाँति कर्मों का फल बन्द नहीं होता। यदि सम्पूर्ण कर्म एक-साथ ही फल धारण करते हों, तो स्वर्ग अथवा नरक में जीवन व्यतीत करने अथवा पशु-पक्षी योनि में जीवन समाप्त करने के पश्चात् दूसरा जन्म ग्रहण करने का कोई कारण ही नहीं रहता; क्योंकि इनमें पुण्य अथवा पाप करने का कोई साधन नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्रह्महत्या इत्यादि कितने ऐसे महापाप है। जिन्हें भोगने के लिए कई जन्म लेने पड़ते हैं। श्री मध्वाचार्य जी ब्रह्मसूत्र पर अपने भाष्य में लिखते हैं कि 'चौदह वर्ष की आयु से ले कर जीवात्मा अमुक आवश्यक कर्म करता है, जिसका एक-एक कर्म भी कम-से-कम दश जन्मों का कारण बनता है। फिर सभी कर्मों का फल एक ही जन्म में भोग सकना कैसे सम्भव हो सकता है?

९. दो मार्ग-देवयान तथा पितृयान

(अ) अर्चि मार्ग (देवयान)

उत्तरायण मार्ग अथवा देवयान वह मार्ग है, जिससे योगी ब्रह्म के पास जाते हैं। यह मोक्ष को प्राप्त कराता है। यह मार्ग ब्रह्म के उपासकों को ब्रह्मलोक में ले जाता है। वह ब्रह्म का उपासक देवयान मार्ग पर पहुँच कर अग्निलोक में आता है, तदनन्तर वायुलोक में और वहाँ से क्रमशः सूर्यलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा प्रजापति के लोक में होता हुआ ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है।

वे लोग अर्चि (ज्योति) को प्राप्त होते हैं। वे अर्चि से दिन को, दिन से शुक्ल पक्ष को, शुक्ल पक्ष से उत्तरायण के छह मासों को, इन छह मासों से संवत्सर को और संवत्सर से आदित्य को प्राप्त होते हैं।

जब यह जीवात्मा इस लोक से प्रयाण करता है, तब वह वायु को प्राप्त होता है। वायु उसके लिए रथ-चक्र के छिद्र की भाँति मार्ग दे देता है। वह उस मार्ग से ऊपर चढ़ता है और आदित्य को प्राप्त होता है।

जब वह चन्द्रमा से विद्युत् लोक की ओर जाता है, तब वहाँ एक अमानव पुरुष होता है जो उसे ब्रह्म के समीप पहुँचा देता है।

अर्चि ही ब्रह्मविद्या के उपासकों का देवयान मार्ग है। केवल ब्रह्म के उपासकों के लिए ही यह मार्ग उन्मुक्त रहता है।

(आ) धूम्र मार्ग (पितृयान)

पितृयान मार्ग या धूम्र मार्ग पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाला है। जो लोग फल की कामना से यज्ञादि क्रियाएँ तथा दानादि कर्म करते हैं, वे लोग इस मार्ग से चन्द्रलोक को जाते हैं और वहाँ पर जब उन जीवों का पुण्य-कर्म समाप्त हो जाता है, तब वे जीव पुनः इस लोक में वापस आ जाते हैं।

इस सम्पूर्ण मार्ग में धूम्र तथा कृष्ण वर्ण के पदार्थ होते हैं। जब जीव इस मार्ग से चलता है, तब वहाँ किसी प्रकार का प्रकाश नहीं होता। यह अविद्या के द्वारा प्राप्त होता है। अतः यह धून मार्ग या तामिस्र मार्ग कहलाता है। यह मार्ग पितरों का है। जो लोग फल-प्राप्ति की अभिलाषा से यज्ञ तथा दान आदि कर्म करते हैं, उनके लिए यह पितृयान है।

ये दोनों मार्ग सभी लोगों के लिए उन्मुक्त नहीं होते। उपासकों के लिए देवयान मार्ग उपयुक्त है और कर्मठ लोगों के लिए धूम्रयान मार्ग उन्मुक्त है। जैसे संसार-प्रवाह नित्य है, वैसे ही ये दोनों मार्ग भी नित्य हैं।

आत्मवेत्ता जीवन्मुक्त महापुरुषों के प्राण उत्क्रमण नहीं करते। वे ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। जिन जीवन्मुक्तों को कैवल्य मोक्ष प्राप्त हो गया है, उनके जाने अथवा वापस आने के लिए कोई लोक नहीं होता। वे सर्वव्यापक ब्रह्म के साथ एक बन जाते हैं।

इन दोनों मार्गों के लक्षणों तथा उनके परिणामों से अवगत हो कर योगी अपनी विवेक-बुद्धि को नहीं खोता। जो योगी यह जानता है कि देवयान मार्ग मोक्ष की ओर तथा पितृयान मार्ग जन्म-मृत्यु-मय संसार की ओर ले जाता है, वह योगी मोह को नहीं प्राप्त होता है। इन दोनों मार्गों का ज्ञान योगी को जीवन के ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रत्येक क्षण मार्ग-दर्शक बना रहता है।

तृतीय प्रकरण

मृत्यु से पुनरुत्थान तथा न्याय

१. मृत्यु से पुनरुत्थान

कब्रिस्तान से मुरदों के पुनः उठने का नाम कयामत है। इसलाम, ईसाई तथा पारसी-धर्म के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं: मृत्यु से पुनरुत्थान, ईश्वर से न्याय प्राप्त करना और पुरस्कार अथवा दण्ड भुगतना ।

यहूदी लोगों ने इस सिद्धान्त को पारसी-धर्म से ग्रहण किया था। उन्होंने ही इसे ईसाई तथा इसलाम-धर्म को प्रदान किया।

कितने ही लेखकों की ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार का पुनरुत्थान केवल आत्मा का ही है; परन्तु इस विषय में सामान्य लोगों का विचार यह है कि कब्रिस्तान से आत्मा और शरीर-दोनों ही उठ बैठते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि शरीर अलग-विलग हो गया हो, तो वह शरीर कैसे उठ सकता है? परन्तु मुहम्मद साहब ने शरीर के एक अंग के रक्षण में बड़ी सावधानी रखी है। यह अंग भविष्य में ढाँचे के आधार का अथवा उसमें उपयुक्त होने वाले पिण्ड का काम देता है। उनका ऐसा उपदेश है कि पृथ्वी के कारण मानव शरीर नष्ट हो जाता है; परन्तु उसकी एक अस्थि, जिसे 'अल-अजीब' कहते हैं, नष्ट नहीं होती। मानव शरीर में सर्वप्रथम इस 'अल-अजीब' की रचना हुई। जिस प्रकार किसी वृक्ष के बीज का नाश नहीं होता और उससे नया वृक्ष उत्पन्न होता है, 'अल-अजीब' अन्तिम समय तक अविकृत ही रहती है।

मुहम्मद साहब बतलाते हैं कि कयामत का जो दिन आने वाला है, उस दिन ईश्वर चालीस दिनों तक वृष्टि करेंगे, जिससे यह सम्पूर्ण पृथ्वी बारह हाथ ऊपर तक जलमग्न हो जायेगी और जिस प्रकार पौधे का अंकुर प्रस्फुटित होता है, वैसे ही उससे सम्पूर्ण शरीर विकसित हो उठेंगे।

यहूदी भी यही बात बतलाते हैं। वे मूल अस्थि को 'लज़' नाम से पुकारते हैं। परन्तु उनका कहना यह है कि पृथ्वी की रज से जो तुषार पैदा होगा, उस (अल-अजीब) से ही यह शरीर विकसित होगा।

बुन्दहेस के इकतीसवें प्रकरण में ऐसा प्रश्न किया गया है कि जिसे पवन उड़ा गया है तथा जिसे तरंगों ने आत्मसात् कर लिया है, यह शरीर पुनः कैसे बन जायेगा मृत व्यक्ति का पुनरुत्थान कैसे होगा? इसका उत्तर आहुरमज्द ने दिया है कि 'उस पृथ्वी में वपन किया हुआ बीज मेरे द्वारा पुनः उगता है और फिर से नवजीवन प्राप्त करता है, जब मैंने वृक्षों को उनकी जाति के अनुसार जीवन दिया है, जब मैंने बालक को माँ के उदर में रखा है, जब मैंने मेघ को बनाया है जो पृथ्वी के जल का शोषण का लेता है और जहाँ मैं इच्छा करता हूँ, वहाँ वह उसकी वृष्टि करता है। जब मैंने इस भाँति प्रत्येक वस्तु की रचना की है, तो फिर पुनरुत्थान के कार्य को सम्भव बनाना क्या मेरे लिए दुष्कर है? स्मरण रखो कि इन सभी वस्तुओं की मैंने एक बार रचना की है और जो वस्तुएँ नष्ट हो गयी हों, उनकी रचना क्या मैं पुनः नहीं कर सकता ?'

अन्न के बीज की उपमा दी जाती है। वह इस प्रकार है। उस बीज को पृथ्वी के उदर में समारोपित किया जाता है और तदुपरान्त वह बीज असंख्य अंकुरों के रूप में फूट निकलता है। यह उदाहरण पुनरावर्तन के लिए

दिया जाता है। जब गेहूँ का कोरा बीज पृथ्वी के अन्दर दबा दिया जाता है, तब वह संख्याबद्ध अंकुर परिधान के साथ प्रस्फुटित हो जाता है, तो जो सदाचारी व्यक्ति अपने परिधानों में दबा दिये गये हैं, वे कितने ही विविध रूपों में प्रकट होंगे।

परमात्मा के हाथ में जो तीन कुंजियाँ हैं, वे किसी दूसरे प्रतिनिधि को नहीं दी गयी हैं। वे हैं : (१) वर्षा की कुंजी, (२) जन्म की कुंजी, तथा (३) पुनरावर्तन की कुंजी।

पुनरावर्तन के चिह्न

पुनरावर्तन के लिए जो दिवस निश्चित किया गया है, उस दिन के आगमन के चिह्न-स्वरूप कुछ बातें निश्चित की गयी हैं। वे हैं: (१) सूर्य का पश्चिम दिशा में उदय होना, (२) दजाल का प्रकट होना, यह दजाल एक विकराल राक्षस है जो अरबी भाषा में इसलाम-धर्म के सत्यों की शिक्षा देगा, तथा (३) सुर नामक दुन्दुभि (नक्कारे) की ध्वनि यह स्वर तीन बार बजेगा।

ये सभी विचार न्यूनाधिक रूप से यहूदी धर्म के ही हैं। जिन जीवों का पुनरावर्तन होता है, उन्हें पुनरावर्तन के दिन के अनन्तर तथा न्याय के दिन से पूर्व, अपने मस्तक के कुछ ही मीटर की ऊँचाई पर स्थित सूर्य के झुलसाने वाले ताप में दीर्घ काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

२. न्याय-दिवस

शरीर से अलग हुए जीवात्मा को कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी होगी। उसके अनन्तर उसका न्याय करने के लिए परमात्मा प्रकट होंगे। वहाँ मुहम्मद साहब मध्यस्थ के रूप में कार्य करेंगे। उसके पश्चात् प्रत्येक जीवात्मा की उसके जीवन के कर्मों के आधार पर जाँच होगी। शरीर के प्रत्येक अंग और अवयवों को अपने पाप-कर्मों को स्वीकार करना पड़ेगा। प्रत्येक मनुष्य को एक पुस्तक दी जायेगी, जिसमें उसके सभी कर्म अंकित होंगे। हिन्दू-धर्म के अनुसार यमराज के अधिकारी चित्रगुप्त की जो पुस्तक कही जाती है, जिसमें कि सभी मनुष्यों के कर्म अंकित होते हैं, उनके साथ इसकी तुलना की जा सकती है।

गैब्रीअल के हाथ में एक तुला होगी और वे पुस्तकें इस तुला में तोली जायेंगी। जिनके बुरे कर्मों की तुलना में भले कर्म भारी होंगे, वे स्वर्ग को भेजे जायेंगे और जिनके भले कर्मों की तुलना में बुरे कर्म भारी होंगे, वे नरक में डाले जायेंगे।

मुसलमानों ने यह मान्यता यहूदियों से ली है। अन्तिम दिन पेश की जाने वाली इन पुस्तकों की, जिनमें कि मनुष्यों के कर्मों का हिसाब रहता है तथा उनको तोलने वाली तुला की चर्चा प्राचीन यहूदी लेखकों ने की है।

यहूदियों ने पारसी-धर्म के अनुयायियों से यह मन्तव्य स्वीकार किया है। पारसी लोगों की ऐसी मान्यता है कि मेहर तथा सरूश नामक दो देवदूत न्याय के दिन पुल से पार जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जाँच करने के लिए पुल के ऊपर खड़े होंगे। मेहर दिव्य दया के प्रतिनिधि हैं। वे अपने हाथ में एक तुला रखेंगे और लोगों के कर्मों को तोलेंगे। मेहर के दिये हुए विवरण के अनुसार प्रभु प्रत्येक व्यक्ति के दण्ड की घोषणा करेंगे। यदि व्यक्ति के सुकर्म की अधिकता हुई और यदि वे पलड़े को बाल बराबर भी झुका सके, तो प्रभु उन लोगों को स्वर्ग में मिलेंगे; परन्तु जिनके सुकर्मों का भार हलका होगा, उनको दूसरा देवदूत सरूश पुल के ऊपर से नरक में धकेल देगा। यह सरूश प्रभु के न्याय का प्रतिनिधि है।

स्वर्ग के मार्ग में एक पुल होता है, जिसे मुहम्मद साहब 'अल सिरात' के नाम से पुकारते हैं। यह पुल नरक के प्रदेश से हो कर जाता है। यह बाल से भी पतला और तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। जो मुसलमान सुकर्म किये रहते हैं, वे इस पुल को सुगमता से पार कर जायेंगे। मुहम्मद साहब उनका नेतृत्व करेंगे। दुष्कर्म करने वाले इस पुल पर लड़खड़ा कर शिर के बल नीचे नरक में जा पड़ेंगे। यह नीचे पापियों के लिए अपना मुख फैलाये रहता है।

यहूदी लोग नरक के पुल की बात करते हैं। वह पुल सूत के धागे से अधिक विस्तृत नहीं है। हिन्दू वैतरणी नदी की बात करते हैं। पारसी लोगों का उपदेश है कि अन्तिम दिन सभी मनुष्यों को 'चिनवत्' नामक पुल से पार होना है।

चतुर्थ प्रकरण

मृत्यूपरान्त आत्मा

१. मृत्यूपरान्त आत्मा

(पारसी-धर्मानुसार)

मृत्यु के पश्चात् आत्मा 'हेमिस्तिकेन' नाम के एक मध्यम लोक को जाता है। यह लोक ईसाई धर्म के 'परगेटरी' से मिलता-जुलता है। सदाचारी व्यक्ति का आत्मा एक सौन्दर्यमयी अप्सरा से मिलता है। यह अप्सरा उस आत्मा के पवित्र विचार, पवित्र वाणी तथा पवित्र कर्मों का प्रतीक है। वह आत्मा न्यायासन-रूप से प्रसिद्ध 'चिनवत् पुल' को पार करती है और वहाँ से स्वर्ग को जाती है। यह पुल सदाचारी व्यक्ति को सरल मार्ग प्रदान करता है। वह आत्मा 'आहुरमज़्द' के स्वर्णासन के रूप में प्रसिद्ध 'अमेश स्पेण्टस' को प्राप्त होता है।

दुराचारी मनुष्य की आत्मा को एक दुष्ट कुरूप वृद्धा स्त्री मिलती है। वह स्त्री उसके बुरे विचार, बुरी वाणी तथा बुरे कर्मों का प्रतीक है। वह दुराचारी आत्मा पुल को पार नहीं कर सकती और उससे वह अग्नि अथवा नरक में जा गिरती है। यह पुल दुष्ट मनुष्यों के लिए तलवार की धार के समान संकीर्ण बन जाता है।

मृत व्यक्ति की आत्मा तीन दिन तक उस घर में चक्कर काटती रहती है, जहाँ कि उसने आराम के अन्तिम दिन व्यतीत किये थे। जिस खण्ड में उसका मरण हुआ होता है, उसमें 'उस्तवैती गाथा' गायी जाती है, जिसका भाव यह है कि 'जिसको आहुरमज़्द मुक्ति प्रदान करेंगे, वह आत्मा सुखी है।' उस स्थान में चार दिन तक

अन्य बहुत-सी धार्मिक क्रियाएँ भी की जाती हैं। चौथे दिन प्रातः आत्मा को 'चिनवत् पुल' पर उपस्थित होना होता है। जब सदाचारी व्यक्ति की आत्मा आगे बढ़ती है, वहाँ सुरभित पवन प्रवाहित होने लगता है और वहाँ पर एक सुन्दरी नारी प्रकट होती है। जीवात्मा आश्चर्यचकित हो पूछता है- "तू कौन है?" वह अप्सरा उत्तर देती है-"मैं तुम्हारी आत्म-चेतना हूँ। मैं तुम्हारे पवित्र विचार, पवित्र वाणी तथा पवित्र कर्मों की मूर्त रूप हूँ।"

जब दुराचारी व्यक्ति आगे जाता है, तब दुर्गन्धपूर्ण वायु प्रवाहित होने लगती है और जब वह पुल के पास पहुँचता है, तब वहाँ एक कुरूप वृद्धा स्त्री आ उपस्थित होती है। आत्मा उससे पूछता है-"हे वृद्धा स्त्री, तू कौन है?" तब वह उत्तर देती है-"मैं तुम्हारी आत्म-चेतना हूँ। मैं तुम्हारे बुरे विचार, बुरी वाणी तथा बुरे कर्मों की मूर्त रूप हूँ।"

२. गीता इस विषय में क्या कहती है?

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं- "हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं। मैं उन सभी को जानता हूँ, परन्तु हे परन्तप ! तू नहीं जानता।

"इस संसार में ये सनातन जीव मेरे ही अंश हैं। जब यह जीवात्मा इस शरीर से उत्क्रमण करता है, तब वह श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, जिह्वा तथा नासिका पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ छठे मन को अपने साथ खींच लेता है। इन सभी इन्द्रियों का स्थान प्रकृति है। इन्द्रियों की निवास-स्थान-रूप प्रकृति उस पुरुष से भिन्न है, जिसे परमात्मा के नाम से सम्बोधित करते हैं। जैसे वायु पुष्प आदि से गन्ध ले जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा शरीर से उत्क्रमण के समय इन ज्ञानेन्द्रिय और मन को आकर्षित कर लेता है और अन्य शरीर में प्रवेश करते समय इनको साथ ले जाता है। शरीर को छोड़ जाने वाले, शरीर में रहने वाले अथवा इन्द्रियों के विषयों को भोगने वाले इस जीवात्मा को मूढ़ लोग नहीं देख सकते, किन्तु ज्ञान-नेत्र-युक्त महात्मा गण ही उसको देखते हैं।

"इस लोक में दो प्रकार के पुरुष हैं-क्षर और अक्षर। सब भूतों को क्षर कहते हैं और कूटस्थ अविनाशी को अक्षर कहते हैं। इन दोनों से विलक्षण एक उत्तम पुरुष है, उसे परमात्मा कहते हैं। वह अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में व्यापक हो कर उन सबका धारण-पोषण करता है। मैं ऊपर बतलाये हुए क्षर तथा अक्षर से परे तथा उत्तम हूँ, इसके कारण मैं लोक तथा वेद में पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूँ।

"हे भरतर्षभ! जिस काल में गमन करने से योगी लोग फिर नहीं लौटते और जिस काल में गमन करने से लौटते हैं, मैं उस काल को तुम्हें बतलाऊँगा।

"अग्नि, ज्योति, दिवस, शुक्ल पक्ष तथा उत्तरायण के छह महीनों के समय जो ब्रह्मज्ञानी गमन करते हैं, वे ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

"धूम्र, रात्रि, कृष्ण पक्ष तथा दक्षिणायन के छह महीनों के समय जो योगी जन गमन करते हैं, वे चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं और फिर लौट आते हैं।

"संसार के शुक्ल तथा कृष्ण-ये दोनों ही मार्ग सदा से चले आ रहे हैं। इनमें से एक पर चलने वाला इस लोक में फिर नहीं लौटता और दूसरे मार्ग पर चलने वाला पुनः वापस आ जाता है।"

३. मृत्यु तथा उसके अनन्तर

देवी लीला ने पूछा- "देवी सरस्वती ! मृत्यु के विषय में मुझे संक्षेप में बतलाइए कि मृत्यु सुखद होती है अथवा दुःखद तथा मरण प्राप्त कर जो लोग इस लोक से परलोक को प्रयाण करते हैं, यहाँ से जाने के अनन्तर उनका क्या होता है?"

देवी सरस्वती ने उत्तर दिया- "मृत्यु प्राप्त कर यहाँ से प्रयाण करने वाले जीव तीन प्रकार के हैं-अज्ञानी, योग के ज्ञाता तथा धार्मिक वृत्ति वाले। उनकी मृत्यु के परिणाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

"जो लोग धारणा-योग का अभ्यास करते हैं, वे अपने शरीर का त्याग करने के पश्चात् अपने इच्छानुकूल गति करते हैं और इससे सिद्ध योगी अपनी इच्छानुसार सर्वत्र विचरण करने में स्वतन्त्र होते हैं (यह विषय मानसिक ध्यान, शारीरिक तप तथा संयम पर आधारित है)।

"जो लोग धारणा-योग का अभ्यास नहीं करते तथा जो ज्ञान प्राप्ति में भी संलग्न नहीं होते और न अपने भविष्य के लिए सद्गुणों का संचय करते हैं, वे लोग अज्ञानी जीव कहलाते हैं। उन लोगों को मृत्यु का दुःख तथा दण्ड भुगतना पड़ता है।

"जिनका मन संयमित नहीं है तथा वह कामनाओं, सांसारिक वासनाओं और चिन्ताओं से आपूर्ण होता है, वे लोग इतने अधिक दुःखी होते हैं, जैसे कि कमल अपनी नाल से विलग होने पर होता है। वास्तव में अपनी अपरिमित वासनाओं पर विजय प्राप्त करने और अपनी अनन्त कामनाओं तथा चिन्ताओं को नष्ट कर लेने पर ही हमें वास्तविक सुख प्राप्त होता है।

"जो मन शास्त्रों का अनुसरण नहीं करता और न पुण्यशालियों की संगति से अपने को पवित्र ही बनाता है, अपितु वह दुर्जनों की संगति में रहता है, मरणावस्था- काल में वह मन अनि के समान धधकती कामनाओं से अपने को सन्तप्त बनाता है।

"जिस समय कण्ठ की घरघराहट श्वास-प्रश्वास की गति को अवरुद्ध बनाती है, नेत्र-दृष्टि मन्द हो जाती है तथा मुख की कान्ति म्लान हो जाती है, मृत्यु के उन अन्तिम क्षणों में जीवात्मा भी अपनी बुद्धि की मन्दता अनुभव करता है।"

"क्षीण पड़ी हुई दृष्टि के ऊपर उस समय गहन अन्धकार छा जाता है और दिन के प्रकाश में भी नेत्रों के समक्ष तारे टिमटिमाते हुए दृष्टिगोचर होने लगते हैं। क्षितिज भी मेघाच्छन्न-सा प्रतीत होता है तथा वह नेत्रों के समक्ष एक नैराश्यपूर्ण दृश्य उपस्थित करता है।

"इस समय सारे शरीर में तीव्र वेदना का संचार होता है और सम्पूर्ण भूत गण नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पृथ्वी वायु का रूप धारण कर नाच रही हो और अन्तरिक्ष मरते हुए व्यक्ति का निवास स्थान हो।

"सारा आकाश-मण्डल उसके समक्ष घूमता-सा दीख पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि सागर की तरंगें उसे दूर लिये जा रही हैं। जैसा कि स्वप्न की दशा में होता है, वह कभी तो अपने को वायु में ऊपर उठाया हुआ और दूसरे ही क्षण नीचे धकेला-सा अनुभव करता है।

"ऐसे समय में उसे ऐसा विचार आता है कि वह एक अन्धकारपूर्ण गर्त में गिर रहा है और फिर ऐसा सोचने लगता है कि वह किसी पर्वत की उपत्यका में पड़ा हुआ है। वह अपने इस दुःख को लोगों से कहना चाहता है; परन्तु उसकी वाणी साथ नहीं देती।

"कभी उसे ऐसा लगता है कि वह अभी आकाश से गिर रहा है और फिर सोचता है कि वह वात-चक्र में घूम रहा है। कभी उसको ऐसा मालूम होता है कि वह रथ में आरूढ़ हो अति-तीव्र वेग से जा रहा है और फिर वह अपने को हिम की भाँति पिघलता-सा अनुभव करता है।

"वह संसार तथा जीवन के कष्टों के विषय में अपने स्नेही जनों को अवगत कराना चाहता हूँ; परन्तु उसे ऐसा लगता है कि वह इतनी तीव्र गति से अपने स्नेही जनों से अलग ले जाया जा रहा है, जैसे कि विमान ले जाता है।

"वह चक्कर करने वाले यन्त्र अथवा अलात-चक्र की भाँति चक्कर काटता है अथवा जैसे कि पशु को रस्सी से बाँध कर ले जाते हैं, वैसे ही वह घसीट कर ले जाया जाता है। वह ऐसी गति करता है मानो भँवर हो और इधर-उधर ऐसे फिराया जाता है जैसे कि इंजन का यन्त्र।

"उसे ऐसा लगता है कि वह आकाश में तृण की भाँति उड़ रहा है और जैसे पवन मेघ को खींच ले जाता है, वैसे ही वह खींचा जा रहा है। तब वाष्प की भाँति ऊपर उठता है और फिर नीचे गिर जाता है जैसे कि भारी बादल समुद्र में बरसता है।

"वह अनन्त आकाश से होता हुआ जाता है और वहाँ चक्कर काटता है जैसे कि वह कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ रहा है जो पृथ्वी तथा समुद्र पर होने वाले परिवर्तनों से मुक्त (शान्ति एवं विश्राम का स्थान) हो।

"इस भाँति वह जीव ऊँचे उड़ता और नीचे गिरता हुआ अविराम भटकता रहता है। वह जीव बड़ी कठिनाई से श्वासोच्छ्वास लेता है और इससे उसके शरीर को बहुत पीड़ा एवं कष्ट होता है।

"जिस प्रकार ज्यों-ज्यों सूर्यास्त होता जाता है, त्यों-त्यों पृथ्वी का धरातल दृष्टिगोचर होना बन्द हो जाता है, वैसे ही जीव की इन्द्रियों की क्रियाएँ बन्द होने से उन इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान भी क्षीण पड़ता जाता है।

"इस भाँति वह जीवात्मा अपने भूत तथा वर्तमान काल की स्मृति खो देता है और जिस प्रकार सन्ध्याकालीन प्रकाश के जाते रहने पर दिशाओं का ज्ञान जाता रहता है, उसी प्रकार उसे दिशा का ज्ञान नहीं रहता।

"मूर्च्छा की दशा में उसका मन अपनी विचार-शक्ति को खो देता है और इस भाँति अपने विचार और चेतना की शक्ति के नष्ट हो जाने से वह जीव शून्यता की दशा में पड़ जाता है।

"मूर्च्छा की अचेतावस्था में शरीर के अन्दर प्राण की श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है और इस भाँति जब प्राण की गति पूर्णतः बन्द हो जाती है, तब प्राण का अवरोध हो जाता है जैसे कि मूर्च्छा में होता है।

"मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं के निर्बल पड़ने के साथ ही जब सन्निपात का ज्वर अपनी अन्तिम अवस्था में पहुँच जाता है, तब जड़ता के नियमानुसार शरीर पाषाण के समान कठोर बन जाता है। यह जड़-तत्त्व का नियम चेतन प्राणियों के साथ प्रारम्भ से ही लगा हुआ है" (योगवासिष्ठ)।

४. शोपेनहावर का मन्तव्य 'मृत्यूपरान्त की दशा'

विद्यार्थी : मुझे आप एक शब्द में यह बतलाइए कि मैं अपनी मृत्यु के पश्चात् क्या बनूँगा? ध्यान रहे कि आपका विचार स्पष्ट एवं सारभूत हो ।

दार्शनिक : सर्व तथा शून्य ।

विद्यार्थी : मैंने ऐसा ही सोचा था। मैंने आपके समक्ष एक प्रश्न रखा और आपने उसका उत्तर विपरीत ढंग से दिया। यह रीति तो बहुत ही विचित्र है।

दार्शनिक : जी हाँ ! परन्तु प्रश्न तो तुम अलौकिक करते हो और फिर यह आशा रखते हो कि उसका उत्तर ऐसी भाषा में मिले जो कि मर्यादित ज्ञान को ही व्यक्त करती है। इससे यदि उसमें कुछ विरोध उठे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

विद्यार्थी : 'अलौकिक प्रश्न तथा मर्यादित ज्ञान' - ऐसा कहने से आपका क्या अभिप्राय है? इस प्रकार के शब्द मैंने पहले ही सुन रखे हैं। वे मेरे लिए कोई नये नहीं हैं। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग करने में मेरे प्राध्यापक की रुचि थी; परन्तु इन विशेषणों को वे केवल देवों के लिए ही प्रयोग करते थे और वे उसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय की चर्चा नहीं करते थे। यह ठीक और उचित ही था। वे अपना मन्तव्य यों व्यक्त करते थे कि 'यदि वह देव स्वयं इस जगत् में है, तो वह मर्यादित बनता है; परन्तु यदि वह देव इस जगत् से बाहर अन्यत्र कहीं है, तो वह अलौकिक बनता है।' इससे अधिक सीधी और स्पष्ट व्याख्या अन्य कोई हो ही नहीं सकती। 'आप जहाँ हैं, वहीं की आप जानते हैं, उससे अधिक नहीं।' केन्ट की यह अनर्गल मान्यता अब कुछ विशेषता नहीं रखती । यह बात प्राचीन है और आधुनिक विचारों के साथ संगत नहीं है; क्योंकि अभी तो जर्मनी की शिक्षा के इस राजनगर में श्रेष्ठ पुरुषों का एक दल ही हमारे सामने खड़ा है।

दार्शनिक : (पार्श्व में) 'यह जर्मन हंबग है' ऐसा इनके कहने का अभिप्राय है।

विद्यार्थी : उदाहरण-स्वरूप पूर्व-कालीन शक्तिशाली शलेर मेचर तथा प्रखर मेधावी हेगल को ही लीजिए। परन्तु वर्तमान युग में तो हम इन सब व्यर्थ की बातों को त्याग ही बैठे हैं। यही नहीं, वरन् मुझे तो इस विषय में यों कहना चाहिए कि हम इन विषयों से इतना आगे बढ़ चुके हैं कि अब उनके साथ रह सकें, ऐसा सम्भव ही नहीं रहा, तो फिर इनका उपयोग ही क्या है? इन सब बातों से हमारा प्रयोजन ही क्या रहा?

दार्शनिक : अलौकिक ज्ञान वह ज्ञान है जो सम्भाव्य अनुभव की मर्यादा से परे हो। यह ज्ञान वस्तुओं के उनके वस्तुगत स्वभाव का निर्णय करता है। इसके विपरीत वस्तुओं की मर्यादा के अन्दर रहने वाला ज्ञान मर्यादित ज्ञान है। अतः यह ज्ञान मर्यादित दृश्य से परे कुछ भी नहीं बतला सकता। इस मर्यादा के विचार से तुम एक व्यक्ति की भाँति हो और तदनुसार मृत्यु तुम्हारा अन्त मानी जायेगी । परन्तु तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारी वास्तविक तथा आन्तरिक सत्ता नहीं है। यह व्यक्तित्व तुम्हारी सत्ता की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है। यह स्वयं वस्तु नहीं, वरन् काल के आकार में अभिव्यक्त होने वाला दृश्य है, अतः इसका आदि तथा अन्त है। तुम्हारा जो वास्तविक आत्मा है, वह तो काल को जानता भी नहीं। वह व्यक्ति की दी गयी आदि अथवा अन्त की सीमा से परे है।

वह आत्मा तो सर्वत्र है तथा प्रत्येक व्यक्ति में व्याप्त है। उससे पृथक् तो किसी की सत्ता हो ही नहीं सकती । अतः मृत्यु आने पर एक ओर जहाँ तुम व्यक्ति-रूप से तिरोधान होते हो, वहाँ दूसरी ओर तुम अस्तित्व रखते हो तथा सम्पूर्ण वस्तुओं के रूप में तुम विद्यमान रहते हो। 'मृत्यु होने के पश्चात् तुम सर्व तथा शून्य बनते हो' - पहले जो मैंने तुमसे ऐसा कहा था, उस समय मेरा अभिप्राय यही था। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इससे अधिक संक्षिप्त रूप में दिया जा सके और वह सारपूर्ण भी हो; यह तो अशक्य है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि यह उत्तर उलटे ढंग से दिया गया है; लेकिन ऐसा केवल इसलिए है कि तुम्हारा जीवन तो काल की सीमा में है, परन्तु तुममें रहने वाला अंश अमर है, वह शाश्वत अविनाशी है। तुम इस विषय को यों भी कह सकते हो कि तुम्हारा जो अमर अंश है, वह काल की मर्यादा में लुप्त नहीं हो जाता और साथ ही वह अविनाशी भी है। परन्तु यहाँ तुम्हारे लिए एक दूसरी उलटी बात उठ खड़ी होती है। तुम देख रहे हो कि यहाँ अलौकिक विषय को मर्यादित ज्ञान की सीमा में लाने का प्रयास किया जा रहा है। मर्यादित ज्ञान जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नहीं है, वैसे विषयों में इसका दुरुपयोग करना एक प्रकार से इसके प्रति हिंसात्मक कार्य है।

विद्यार्थी : देखिए, यदि मैं एक विशेष व्यक्ति के रूप में न रह सका, तो मैं आपकी अमरता के लिए एक कौड़ी भी देने का नहीं।

दार्शनिक : ठीक है। मैं इस विषय में तुम्हें सन्तुष्ट कर सकूँगा। कल्पना कीजिए कि मैं तुम्हें गारण्टी दूँ कि मरने के पश्चात् तुम एक व्यक्ति के रूप में रह सकोगे; परन्तु इसमें एक प्रतिबन्ध यह है कि प्रथम तुम तीन मास तक पूर्ण अचेतावस्था में व्यतीत करो।

विद्यार्थी : मुझे इसमें कोई भी आपत्ति न होगी।

दार्शनिक : यह स्मरण रहे कि मनुष्य जब पूर्ण रीति से अचेत अवस्था में रहता है, तब उसे समय का पता ही नहीं चलता। इसी भाँति जब तुम मृत हुए होते हो तो तुम्हारे लिए समय तो एक-समान ही हुआ होता है। भले ही मृत्यु की मूर्च्छित अवस्था में तीन मास व्यतीत हुए हों या दश सहस्र वर्ष, और जब इस मूच्र्छा से तुम उठते हो तो उस समय तुम्हें जो कुछ भी बतला दिया जाता है, उस पर तुम्हें विश्वास कर लेना होता है। चाहे तीन मास व्यतीत हुए हों या दश सहस्र वर्ष, जब तक तुम्हारा व्यक्तित्व वापस नहीं आता, तब तक तो तुमने उस समय के विषय में ध्यान ही नहीं दिया; उसे तुम स्वयं स्वीकार कर लेते हो।

और, कल्पना कीजिए कि ऐसा संयोग आ जाये कि प्रथम अचेतावस्था के दश हजार वर्ष व्यतीत हो जायें और उसके अनन्तर भी किसी को तुम्हें उठाने का विचार ही न सूझे, तो यह तो मेरी समझ में तुम्हारे लिए सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात होगी। इन थोड़े से वर्षों के जीवन के उपरान्त ही आने वाली इस दीर्घ कालीन मूर्च्छा का अनुभव करने के पश्चात् तो तुम अपनी शून्यता के पूर्ण अभ्यस्त हो गये होगे। जो कुछ भी हो, परन्तु इतना तो तुम्हें निश्चित ही है कि तुम मूच्र्छा के विषय में सम्पूर्ण रीति से अनभिज्ञ होगे। अब तुम्हें इतना और समझना है कि जो अज्ञात शक्ति तुम्हें तुम्हारी वर्तमान अवस्था में जीवित रखती है, वह सत्ता पूर्व के दश सहस्र वर्षों में भी अपने कार्य से अविरत नहीं हुई और जो तुम्हें भिन्न दशा का अनुभव हुआ, ऐसी दशा में भी वह गयी नहीं थी और इससे उस मूर्च्छा की अवस्था में भी वह तुम्हें जीवन प्रदान करती है। यदि तुम्हें ऐसा मालूम हो, तो तुम उससे पूर्ण आश्वस्त रहते हो।

विद्यार्थी : निश्चय ही। मालूम होता है कि आप इन पुष्पित वचनों से मुझे अपने व्यक्तित्व को भुला कर दूसरी ओर ले जाना चाहते हैं। परन्तु मैं आपकी युक्तियों से पूर्ण रूप से परिचित हूँ। मैं आपको यह स्पष्ट बतला देना चाहता हूँ कि अपने व्यक्तित्व के बिना रह सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं अज्ञात शक्ति से अपने को, अपने व्यक्तित्व को अपने से अलग होने नहीं दे सकता। आप जिसे अलौकिक घटना कहते हैं, उसके कारण मैं अपने व्यक्तित्व के बिना कुछ न कर सकूँ- यह सम्भव नहीं है और न मैं अपने व्यक्तित्व का परित्याग करने को ही तैयार हूँ।

दार्शनिक : मैं समझता हूँ कि तुम्हारी ऐसी मान्यता है कि तुम्हारा व्यक्तित्व ऐसी रमणीय वस्तु है-ऐसी श्रेष्ठ, ऐसी पूर्ण तथा अनुपम कि उससे श्रेष्ठतर किसी वस्तु की तुम कल्पना ही नहीं कर सकते। तुम्हारी वर्तमान परिस्थिति से यदि-जैसा कि कहा जाता है उसी प्रकार-कोई वस्तु अधिक अच्छी तथा अधिक टिकाऊ हो, तो क्या तुम उस वस्तु के साथ अपनी वर्तमान परिस्थिति का विनिमय करने को प्रस्तुत न होगे ?

विद्यार्थी : आपको पता नहीं कि मेरा व्यक्तित्व, भले ही वह कैसा भी हो, मेरा अपना अस्तित्व ही है। इस जगत् में मेरा अपना व्यक्तित्व मेरे लिए सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु है; क्योंकि 'ईश्वर ईश्वर है और मैं मैं हूँ।' मैं मैं ही बना रहना चाहता हूँ। यही एक मुख्य बात है। मुझे शाश्वत सत्ता की आवश्यकता नहीं। मैं जिस पर विश्वास करूँ, उससे पहले तो मेरा व्यक्तित्व मेरे लिए सिद्ध होना है।

दार्शनिक : तुम इस समय क्या कर रहे हो, जब तुम ऐसा कहते हो कि 'मैं हूँ', 'मैं बना रहना चाहता हूँ।' इस बात को कहने वाले तुम अकेले ही नहीं हो। प्रत्येक प्राणी जिसमें चैतन्य का किंचित् भी आभास है, ऐसा ही कहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम्हारी जो इच्छा है, यह तुम्हारा एक अंश है, जो स्वयं तुम्हारा व्यक्तित्व नहीं है। वह अंश बिना किसी भेद के सभी प्राणियों में सामान्य रूप से विद्यमान है। यह एक व्यक्ति की इच्छा नहीं है, अपितु यह स्वयं सत्ता की इच्छा है। जिस किसी भी वस्तु की सत्ता है, उन सबका यह मूलगत तत्त्व है। इतना ही नहीं, यह तो अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं का कारण ही है। इस प्रकार की इच्छा एक ही बात के लिए सतृष्ण रहती है। वह किसी दूसरे प्रकार की किसी साधारण वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होती; अपितु सामान्य रीति से वह अपनी सत्ता के लिए सतृष्ण रहती है। यह सामान्य सत्ता कोई निश्चित की हुई सत्ता नहीं है। नहीं, यह तो उसका लक्ष्य ही नहीं है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि यह इच्छा व्यक्ति के अन्दर ही चैतन्य को प्राप्त होगी और इसी से ऐसा मालूम होता है कि इस प्रकार की सत्ता केवल व्यक्तित्व से ही सम्बन्धित है। यही आभास है। यह आभास है, यह सत्य है। इस आभास से ही व्यक्ति दृढ़ता से आबद्ध है; परन्तु यदि वह चाहे, तो वह इस श्रृंखला को तोड़ कर मुक्त हो सकता है। अत: मैं ऐसा बतला दूँ कि यह बात परोक्ष रूप से यों है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सत्ता की तीव्र कामना रहती है। जीवित रहने की वह एक ऐसी इच्छा है जो वास्तविक है तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणादायक है और वह सभी वस्तुओं में एक ही रीति तथा समान भाव से रहती है। तत्पश्चात् तो सत्ता का होना एक स्वतन्त्र कार्य है। इतना ही नहीं, वह इच्छा का एकमात्र प्रतिबिम्ब है। जहाँ-जहाँ सत्ता रहती है, वहाँ-वहाँ वह भी रहती है और एक क्षण के लिए तो ऐसा कह सकते हैं कि सत्ता के अन्दर ही इच्छा का एकमात्र सन्तोष रहता है और इससे मेरी धारणा तो यह है कि यह कभी भी विराम नहीं लेती, वरन् सदा उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ती रहती है और अन्त में उसके अन्दर सन्तोष को प्राप्त करती है। यह इच्छा व्यक्तित्व की अपेक्षा नहीं रखती । व्यक्तित्व से इसका कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, उसके अनुसार तो यह ऐसी ही मालूम होती है; क्योंकि व्यक्ति का तो अपने तक ही सम्बन्ध होता है, अतः इच्छा

के चैतन्य के साथ उसका सीधा सम्बन्ध नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि प्राणी अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए सावधान रहता है और यदि ऐसा न हो, तो प्राणी की भिन्न-भिन्न जातियों का रक्षण निश्चित न रहे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व पूर्णता का स्वरूप नहीं है, वरन् वह तो मर्यादा का स्वरूप है; अतः व्यक्ति को मर्यादा से मुक्त करने में कोई हानि नहीं, अपितु लाभ है। वस्तु के विषय में तुम चिन्तित मत बनो। एक बार भी 'तुम कौन हो' इसे पूर्ण रूप से जान लो; 'तुम्हारी सत्ता वास्तव में क्या है', उसे समझ लो, अर्थात् विश्व में व्यापक इच्छा को जानो कि सबको जीना है और तब सारा प्रश्न तुम्हें अविचारपूर्वक तथा उपहासात्मक-सा प्रतीत होगा।

विद्यार्थी : दूसरे दार्शनिकों की भाँति आप स्वयं ही अविचारपूर्ण तथा हास्यास्पद हैं। इस भाँति के अबोध व्यक्तियों के साथ मेरी आयु का मनुष्य वार्तालाप में पाव घण्टा समय नष्ट करता है। इसका एक ही कारण है कि इससे मेरा मन बहलाव होता है तथा समय भी कट जाता है; परन्तु अभी तो विदा माँगता हूँ; क्योंकि मुझे दूसरे आवश्यक कार्य करने हैं।

५. अन्तिम विचार आकार धारण करता है

मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी भाग्य का निर्माण करता है। मनुष्य का अन्तिम विचार उसके भावी जन्म का निर्णय करता है। भगवान् श्री कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में बतलाते हैं- "हे कौन्तेय! अन्त समय में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ मनुष्य शरीर छोड़ता है, वह सदा उस-उस भाव से प्रभावित हुआ उसी-उसी भाव को प्राप्त होता है" (गीता : ८-६)।

अजामिल अपने अपवित्र जीवन से पतित हो कुत्सित जीवन व्यतीत कर रहा था। पापमयी वृत्तियों के कारण वह दोषों के गहरे गर्त में जा पड़ा था तथा चोरी एवं लूट-पाट इत्यादि जघन्य कर्म करता था। सामान्य वेश्या के संग में पड़ कर वह उसका दास बन चुका था। वह दश लड़कों का पिता बन गया था। उनमें से अन्तिम लड़के का नाम उसने 'नारायण' रखा। जब वह मरणासन्न था, तब अपने अन्तिम पुत्र के विचार में निमग्न हो गया। उस समय मृत्यु के तीन भयंकर यमदूत अजामिल के पास आ धमके। भय-कातर हो अजामिल ने अपने अन्तिम पुत्र 'नारायण' को उच्च स्वर से पुकारा।

'नारायण' का नाम लेते ही भगवान् विष्णु के पार्षद द्रुतगति से वहाँ आ पहुँचे तथा यम के दूतों को उनके कार्य से रोक दिया। विष्णु के पार्षदों ने अजामिल को मुक्त कर दिया और उसे वैकुण्ठ-लोक ले गये।

जब शिशुपाल मरा, तो उसके शरीर से दिव्य ज्योति प्रकट हुई और वह भगवान् श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश कर गयी। इस दुष्ट शिशुपाल ने अपना सारा जीवन भगवान् श्री कृष्ण की निन्दा करने में व्यतीत कर दिया था और उससे वह भगवान् श्री कृष्ण में प्रवेश कर गया।

जिस प्रकार दीवाल पर कीट भ्रमर से दंशित होने पर भ्रमर का स्मरण करता-करता भ्रमर में ही रूपान्तरित हो जाता है, उसी प्रकार एक मनुष्य, जो अपने घृणादि भावों को भगवान् श्री कृष्ण पर केन्द्रित करता है, अपने पापों से मुक्त हो जाता है और नियमित भक्ति के द्वारा भगवान् को प्राप्त कर लेता है-जैसे कि गोपिकाओं ने काम-भाव से, कंस ने भय के कारण, शिशुपाल ने घृणा के कारण तथा नारद ने भक्ति के भाव से श्री कृष्ण को प्राप्त कर लिया था।

भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं- "जो व्यक्ति अनन्य-चित्त हो कर निरन्तर प्रतिदिन मेरा स्मरण करता है, उस सदा समाहित चित्त वाले योगी को मैं सुलभ हूँ; और इस प्रकार मुझ को प्राप्त कर तथा मुझ में लीन हो कर वह दुःख तथा कष्टमय इस अनित्य संसार में पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता। हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक-पर्यन्त सभी लोक काल-परिच्छिन्न हैं तथा वे एक निश्चित समय में लय को प्राप्त होते हैं; परन्तु मुझ को प्राप्त कर लेने पर पुनर्जन्म नहीं होता। अतः अपने मन और बुद्धि को मुझ सर्वोत्तम वासुदेव में स्थिर रखते हुए नित्य-निरन्तर मेरा ही ध्यान कर" (गीता : ८-१४, १५, १६)।

"यदि मनुष्य सांसारिक सुख-भोगों में रत होते हुए भी अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास धीरे-धीरे करता रहता है, तो मरण की अन्तिम घड़ी में अपने आन्तरिक ज्ञान की सहायता से परमात्म-विषयक विचार उसमें स्वयमेव जाग्रत हो जाता है।" भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं- "अभ्यास योग से युक्त किसी दूसरी ओर न जाने वाले (स्थिर) मन से योगी उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है" (गीता : ८-८)। आगे चल कर भगवान् कहते हैं- "अन्त समय में जो व्यक्ति मेरे वास्तविक स्वरूप भगवान् श्री कृष्ण अथवा नारायण का स्मरण करते-करते शरीर त्याग करता है, वह मेरे स्वरूप को ही प्राप्त होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मरण-काल में मनुष्य मुझे जिस रूप में स्मरण करता है, उस स्वरूप को वह मनुष्य पा लेता है। वे भाव उसके पूर्व-संस्कार तथा सतत चिन्तन के परिणाम-स्वरूप ही होते हैं" (गीता : २-७२)।

जिस मनुष्य को अपने जीवन में नस्य-सेवन की कुटेव पूरी-पूरी पड़ गयी हो, वह मनुष्य जब मरण-काल के पूर्व अचेत बन जाता है, तब वह अपनी अँगुली नाक पर इस प्रकार रखता है मानो वह नस्य-सेवन कर रहा हो; क्योंकि उस मनुष्य में नस्य-सेवन की बुरी आदत पड़ी होती है।

इसी प्रकार लम्पट मनुष्य को मृत्यु-काल में जो विचार आता है, वह विचार उसकी स्त्री के विषय का ही होता है। पुराने मद्यपी का अन्तिम विचार मदिरा-पान के विषय का, लोभी साहूकार का अन्तिम विचार अपने धन के विषय का, युद्ध करते हुए सैनिक का विचार अपने शत्रु को गोली से मार गिराने का तथा अपने इकलौते पुत्र में प्रगाढ़ ममता रखने वाली माँ का अन्तिम विचार अपने पुत्र के विषय का होता है।

राजा भरत ने दयावश एक मृग-शावक का पालन-पोषण किया और अन्त में वे उसमें आसक्त हो गये। मृत्यु के अन्तिम समय में उनका विचार उस मृग के विषय का था, अतः उन्हें मृग की योनि में जन्म लेना पड़ा; परन्तु उनकी आत्मा की स्थिति पर्याप्त ऊँची थी, जिससे मृग की योनि में भी उन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति बनी रही।

जो मनुष्य आजीवन अपने मन को अनुशासित रखेगा तथा सतत अभ्यास के द्वारा उसे ईश्वर से युक्त कर देगा, उसी व्यक्ति का अन्तिम विचार ईश्वर-विषयक होगा। इस प्रकार का अभ्यास एक या दो दिन के सामान्य प्रयत्न अथवा एकाध सप्ताह या महीने के अभ्यास से नहीं हो सकता। इसके लिए तो यावज्जीवन सतत प्रयत्न तथा संग्राम की आवश्यकता है।

६. व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता

(जीवत्व)

व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता में अन्तर है। बहुतों को इन दोनों पदों का स्पष्ट बोध नहीं है। वे इन्हें मिला देते हैं और इससे उलझन आ खड़ी होती है। कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि व्यक्तित्व ही व्यक्तिगत सत्ता है और व्यक्तिगत सत्ता ही व्यक्तित्व है। वास्तव में जो पदार्थ व्यक्ति को व्यक्ति से अथवा व्यक्ति को इतर पदार्थों से पृथक् करता है, वही व्यक्तित्व कहलाता है। यों साधारण वार्तालाप में व्यक्तित्व शरीर का ही वाच्य है। जब एक मनुष्य

दीर्घकाय होता है, उसका रूप सौम्य होता है और अंग-प्रत्यंग सुडौल तथा मुखाकृति सुन्दर होती है, तो हम उसके विषय में यो कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व आकर्षक है।' जब एक मनुष्य दूसरों को प्रभावित कर सकता है, तो लोग यों कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ही प्रबल है।' जब कोई मनुष्य भीरू तथा संकोची होता है, तो हम यों कहते हैं कि 'अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ही निस्तेज है; अतः उसे अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए।' जीवन में सफलता के प्राप्त्यर्थ समाज में व्यक्तित्व का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

पर्सनालिटी (personality) शब्द मूल लैटिन शब्द पर्सना (persona) से बना है, जिसका अर्थ है बाह्य रूप। अतः पर्सनालिटी एक विशेष प्रकार की चेतना है, जिसका सम्बन्ध इस स्थूल शरीर से है। अमुक पुरुष, अमुक स्त्री अथवा अमुक कुमारी-ये व्यक्तित्व के ही अभिव्यंजक हैं। क्षुधा, पिपासा, शारीरिक सौन्दर्य, श्याम अथवा गौर वर्ण, ऊँचाई, आकार, क्रोध तथा शरीर के सभी मर्यादित धर्मों को व्यक्तित्व ही कहा जाता है। वह ब्राह्मण है, वह संन्यासी है, वह व्यापारी है, वह डाक्टर है-इन सभी विषयों का समावेश व्यक्तित्व शब्द में है। यह एक प्रकार का बाह्य रूप है, जिसे मनुष्य ने वर्तमान परिस्थिति में धारण कर रखा है। मृत्यु मनुष्य के व्यक्तित्व को विनष्ट करती है; परन्तु यह उसकी व्यक्तिगत सत्ता (जीवत्व) को नष्ट नहीं कर सकती। व्यक्तिगत सत्ता एक स्वतन्त्र वस्तु है और अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। यह शरीर की सीमाओं से नितान्त परे है तथा आपके व्यक्तित्व के साथ इसका किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। यह आपकी अहं-वृत्ति का विषय है और एक सतत गतिमान प्रवाह के समान है। यह एक ही प्रकार के विचार का-अहं-भाव का सातत्य है। अन्य सभी विचार इस 'अहं-वृत्ति' के चतुर्दिक् होते हैं। मैं बालक था। मैं पूर्ण वयस्क हो गया। मैं डाक्टर था। मैंने खाया। मैंने पिया। मैंने कहा। मैंने ध्यान किया। मैंने बातचीत की। मैं अमरीका, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी गया था। एक ही 'अहं' इन सभी अनुभवों को प्राप्त हुआ। यह 'अहं' ही इस शरीर का निवासी है तथा यह बाल्य, यौवन तथा वृद्धावस्था में एक-सा स्थिर रहता है।

आपके व्यक्तित्व में तो निरन्तर रूपान्तरण होता रहता है; किन्तु आपकी व्यक्तिगत सत्ता में अहं-भावना में कभी भी परिवर्तन घटित नहीं होता, क्योंकि ' अहं-वृत्ति' का ज्ञान आपके साथ ही लगा रहता है। इस स्थूल शरीर का परित्याग कर देने के अनन्तर भी यह 'अहं-वृत्ति' बनी रहती है। मृत्यूपरान्त भी आप अपनी इस 'अहं-वृत्ति' को अपने साथ ही ले जाते हैं। स्वप्नावस्था में भी आपके अन्दर यह 'अहं-वृत्ति' रहती है। इस प्रगाढ़ निद्रा में भी आपकी 'अहं-वृत्ति' चालू रहती है। यदि प्रगाढ़ निद्रा में आपको अपनी 'अहं-वृत्ति' की चेतना न होती, तो आपकी यह स्मृति न होती कि 'मैं सुख से सोया था।'

धारणा, ध्यान तथा निर्विकल्प-समाधि के द्वारा आप अपनी इस 'अहं-वृत्ति' को परब्रह्म परमात्मा में एकाकार कर उसे विलुप्त कर सकते हैं। जिस भाँति पात्र के ध्वस्त हो जाने पर पात्र का जल सागर के जल में मिल कर एक बन जाता है; उसी भाँति जब अज्ञान का नाश हो जाता है, तब अविनाशी परब्रह्म का ज्ञान होने पर-ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से भेद-भाव नष्ट हो जाता है, तब यह व्यक्तिगत सत्ता (जीवत्व-भाव) भी अनन्त एवं विश्वव्यापी परब्रह्म के साथ एक बन जाता है। अब तो आपको व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत सत्ता के भेद का स्पष्ट ज्ञान हो ही गया होगा।

७. प्राचीन मिश्रवासियों की मान्यता

मिश्रवासी छाया-शरीर (double) के अस्तित्व को मानते थे। इस छाया-शरीर का आकार स्थूल शरीर की प्रतिच्छाया के समान था। जब तक स्थूल शरीर का अस्तित्व रहता है, तब तक छाया-शरीर का भी अस्तित्व रहता था। इस भाँति जीवात्मा ही तथाकथित छाया-शरीर था। इसका अपना कोई पृथक् अस्तित्व न था। स्थूल शरीर से सम्बन्ध विच्छेद करना इसके लिए कभी भी परिहार्य न था । यदि शरीर के किसी भी अंग को आघात पहुँचता, तो

छाया शरीर अथवा जीवात्मा को भी आघात पहुँचता । अतः जीवात्मा को अनवच्छिन्न बनाये रखने के लिए वे मृत शरीर को भली-भाँति सुरक्षित रखते थे। शव को 'ममी' बना कर सुरक्षित रखने की क्रिया का वे व्यवहार करते थे। विगत जीवात्मा को अमर बनाने के विचार से वे शव को चिरकाल तक सुरक्षित रखना चाहते थे।

छाया-शरीर स्थूल शरीर के स्थित रहने तक ही अवस्थित रहता है। यदि शव नष्ट हो गया, तो विगत आत्मा का भी नाश होना अवश्यम्भावी था। मृत्यु के अनन्तर वह जीवात्मा समस्त संसार में स्वच्छन्द रूप से भ्रमण करता तथा तीव्र क्षुधा एवं पिपासा से उत्पीड़ित होने पर अपने शव के पास पुनः आ जाता।

चेल्डियन लोग भी छाया-शरीर में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी कि शरीर के नाश हो जाने पर आत्मा भी नष्ट हो जाती है। उन्हें यह आशा थी कि मृत शरीर पुनः पुनर्जीवन प्राप्त करेगा। स्थूल शरीर के अतिरिक्त अन्य किसी दशा की वे कल्पना ही नहीं कर पाये।

प्राचीन मिश्रवासी तथा चेल्डियन लोग मृत व्यक्ति की आत्मा के शरीर से अलग रहने की बात को स्वीकार करने को तैयार न थे अर्थात् उनकी मान्यता थी कि कब्रिस्तान अथवा जहाँ मृतक का शव रहता है, उस स्थान को छोड़ कर आत्मा अन्यत्र नहीं रहती । इसी भाँति कुछ ईसाई लोग भी शव का पुनर्जन्म मानते हैं; अतः वे शव को सुरक्षित रखने के लिए मशाले लगाते तथा उसे दफन करते हैं। जिस प्रकार हिन्दू शव का दाह-संस्कार करते हैं, वैसा वे नहीं करते। उनकी अब भी यह निश्चित धारणा है कि मृत शरीर पुनः जीवित हो उठेगा।

हिन्दू यह नहीं चाहते हैं कि शरीर त्याग करने के पश्चात् जीवात्मा एक क्षण भी शरीर के आस-पास चक्कर लगाता फिरे।

दिवंगत आत्मा जीवन का पुनः उपभोग करने के लिए बहुत ही लालायित रहती है। अपनी कामनाओं की परिपूर्ति हेतु वह स्थूल शरीर में प्रवेश करने के लिए उत्कण्ठित रहती है। हिन्दुओं को अभीष्ट नहीं कि मृत व्यक्ति की आत्मा इस लोक से आबद्ध रहे। वे चाहते हैं कि वे आत्माएँ अपने आनन्द-धाम की ओर द्रुतगति से प्रयाण करें। यही कारण है कि वे अविलम्ब ही शव का दाह-संस्कार कर डालते हैं।

पंचम प्रकरण

पुनर्जन्म का सिद्धान्त

१. पुनर्जन्म का सिद्धान्त

इमर्सन, प्लेटो (अफलातून) आदि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू तथा बौद्ध-धर्म का आधार है। प्राचीन मिश्रवासी भी इसमें विश्वास रखते थे। यूनानी दार्शनिकों ने तो इसे अपने दर्शन के मुख्य सिद्धान्त का ही रूप दे डाला।

मनुष्य इस पार्थिव शरीर से चिपका रहता है। जीवन के साथ चिपके रहने की यह आसक्ति भूतकाल के अनुभव तथा अस्तित्व को प्रमाणित करती है। साथ ही यह इस बात का भी प्रमाण है कि भविष्य में जीवन का अस्तित्व रहता है। मनुष्य इस जीवन को अत्यधिक चाहता है तथा भावी जीवन की भी प्रबल आकांक्षा रखता है।

कितने ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं और जन्म ग्रहण करने के पश्चात् कुछ ही सप्ताह, माह अथवा वर्ष में इस लोक से प्रयाण कर जाते हैं। कितने शिशु गर्भाशय में ही काल-कवलित हो जाते हैं। कुछेक व्यक्ति शतायु होते हैं। तो ऐसा क्यों होता है? क्या कारण है कि कुछेक प्राणी इस संसार में आते हैं और स्वल्प काल तक ही रह पाते हैं? इसके विपरीत कुछेक अन्य प्राणी दीर्घ काल तक जीवित रहते हैं? क्या ऐसा अकस्मात् ही होता है? क्या कोई ऐसा नियम है, जो जीवन तथा मृत्यु को नियन्त्रित करता है? क्या किसी निश्चित प्रयोजन के बिना मानव-प्राणी इस लोक में आते तथा यहाँ से प्रयाण कर जाते हैं? हाँ, इस विषय में एक नियम है जो कि जीवन और मृत्यु का नियमन करता है। वह नियम है-कार्य-कारण का नियम ।

कार्य-कारण का यह नियम सब पर आधिपत्य रखता है। कार्य-कारण का नियम अति-दुर्द्धर्ष तथा सर्वशक्तिसम्पन्न है। यह सम्पूर्ण जगत् इस सर्वोच्च नियम के अन्तर्गत गतिशील है। अन्य सारे नियम इस एक नियम के अन्तर्गत हैं। कर्म का नियम ही कार्य-कारण का नियम है। ईश्वर किसी भी प्राणी को दण्ड नहीं देता।

मनुष्य अपने ही कर्मों का फल भोगता है। कार्य-कारण का नियम उस पर लागू होता है। मनुष्य सत्कर्म द्वारा सुख की खेती काटता है। इसी भाँति अपने दुष्कर्म से वह दुःख, रोग, सम्पत्ति-नाश आदि कष्ट अनुभव करता है।

सहज-ज्ञान अथवा स्वाभाविक प्रवृत्ति भूतकाल के अनुभव का ही परिणाम है। पुनर्जन्म के आधारभूत अनेक प्रमुख सिद्धान्तों में हिन्दुओं ने इस सहज ज्ञान को भी एक सिद्धान्त माना है। भूतकाल में घटित मृत्यु का अनुभव मानव-चित्त में सुषुप्त अथवा अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। ये अनुभव संस्कार-रूप में उसके चित्त में रहते हैं। संस्कार चेतन मन के अन्तर्भाग में क्रियाशील रहता है। भूतकाल की दुःखानुभूति मानव-चित्त में वर्तमान रहती है और इसी कारण मानव-प्राणी मृत्यु से अत्यन्त भयभीत बना रहता है।

किसी के प्रति प्रथम दृष्टि में प्रेम के जागरण का हेतु एक-साथ व्यतीत किये हुए उनके पूर्व-जीवन की एक विशेष प्रकार की भावना ही है। इन युग्म आत्माओं में इससे पूर्व भी परस्पर प्रेम था। वे ऐसा सोचते हैं तथा वास्तव में उन्हें ऐसा आभास-सा भी होता है कि 'हम दोनों इससे पूर्व परस्पर कहीं मिले थे।' इस प्रकार का पारस्परिक प्रेम केवल लैंगिक आकर्षण मात्र नहीं है और ऐसे प्रेम का विच्छेद भी कदाचित् ही होता है। भगवान् बुद्ध ने अपनी पत्नी को बतलाया था कि वह पूर्व जन्म में भी उन पर ममता रखती थी। उन्होंने अन्य प्रसंगों पर दूसरे कई लोगों के पूर्व-जीवन की घटनाओं का विवरण भी दिया था।

प्रत्येक कार्य का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। शून्य में से कोई वस्तु प्रकट नहीं होती और न असत् से सत् की ही उत्पत्ति होती है। वर्तमान विज्ञान-शास्त्र का भी यही मौलिक सिद्धान्त है। दर्शन-शास्त्र का भी यही मूलभूत सिद्धान्त है। आप किसी शून्य से प्रकट नहीं हो गये। इस संसार में आपके अस्तित्व का कोई कारण है। एक जन्मान्ध है, एक मनुष्य मेधावी है, एक मन्द-बुद्धि है, एक मनुष्य धनवान् है, एक निर्धन है, एक व्यक्ति स्वस्थ है, एक रोग-ग्रस्त है, इन सबका एक निश्चित कारण है।

कारण कार्य की अव्यक्तावस्था है। कार्य कारण की व्यक्तावस्था है। वृक्ष कारण है और बीज उसका कार्य है। वाष्प कारण है और वृष्टि उसका कार्य है। सम्पूर्ण वृक्ष बीज में मौलिक रूप से अवस्थित रहता है। मनुष्य का अखिलांग वीर्य के एक बिन्दु में अदृश्य मौलिक दशा में रहता है। वट-बीज वट वृक्ष को ही उत्पन्न कर सकता है, वह आम्र-तरु को उत्पन्न नहीं कर सकता। मनुष्य का वीर्य-बिन्दु मानव-प्राणी का ही जनक होता है, अश्व का नहीं। वीर्य की एक लघु कणिका से सम्पूर्ण अवयवों से युक्त विशाल काया का आविर्भाव होता है। कितना महान् आश्चर्य है यह ! एक क्षुद्र बीज से एक दानवाकार सुविशाल वट वृक्ष प्रकट होता है। क्या ही अद्भुत चमत्कार है। आप अपने नेत्रों को बन्द कर इस रहस्यमयी घटना पर तनिक विचार तो करें। आप स्वयं आश्चर्य एवं विस्मय में पड़ जायेंगे।

इस स्थूल देह के अन्तर्गत एक लिंग-देह अथवा सूक्ष्म शरीर होता है। मृत्यु होने पर यह स्थूल शरीर अपने सभी संस्कारों तथा प्रवृत्तियों के साथ स्थूल शरीर से बाहर आ जाता है। उसका आकार वाष्प के सदृश होता है। यह कोरे नेत्रों से दृष्टि-गोचर नहीं हो सकता है। सूक्ष्म शरीर ही परलोक को जाता है। यह सूक्ष्म शरीर पुनः स्थूल शरीर में प्रकट होता है। सूक्ष्म शरीर के आकार का स्थूल शरीर के आकार में पुनः प्रकट होने की क्रिया को पुनर्जन्म का नियम कहते हैं। आप भले ही इस नियम का निषेध करें; परन्तु नियम तो नियम ही है। यह बहुत ही कठोर तथा निर्मम है। यदि आप इस नियम का निषेध करते हैं, तो स्पष्ट है कि आप इस नियम से अवगत नहीं हैं। आप इस नियम को स्वीकार करें अथवा न करें, किन्तु यह तो लागू होगा ही। उलूक पक्षी प्रकाश को स्वीकार करे अथवा न करे, किन्तु सूर्य के प्रकाश का अस्तित्व तो रहता ही है।

अनुभव द्वारा ही आपको ज्ञान प्राप्त होता है। एक मनुष्य हारमोनियम बजाता है। प्रारम्भ में वह सावधानीपूर्वक अपनी प्रत्येक उँगली को प्रत्येक चाबी पर रखता है और बारम्बार इसकी पुनरावृत्ति करता रहता

है। कालान्तर में उँगलियों की यह गति उसके लिए स्वाभाविक-सी हो जाती है। यहाँ तक कि चाबी की ओर विशेष ध्यान दिये बिना ही वह अमुक प्रकार के राग बजा सकने में सक्षम हो जाता है। इसी भाँति आपका वर्तमान स्वभाव भी भूतकाल में सावधानीपूर्वक किये हुए आपके कर्मों का परिणाम है।

श्री शंकराचार्य तथा श्री ज्ञानदेव ने अपने बाल्यकाल में चारों वेदों तथा अन्यान्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक बालक बड़ी ही कुशलता से पियानो बजाता है। एक बालक गीता पर प्रवचन करता है। जर्मनी का प्रख्यात कवि गोथे सतरह भाषाओं में निपुण था। इन मेधावी महापुरुषों ने अपने इस वर्तमान जीवन में इन्हें प्राप्त नहीं किया। उन्हें इनका ज्ञान पूर्व-जीवन में ही प्राप्त था।

प्रत्येक बालक अमुक प्रकार की प्रवृत्ति अथवा स्वभाव को ले कर जन्म ग्रहण करता है। यह स्वभाव पूर्व-काल में मनोयोगपूर्वक किये हुए उसके कर्मों से गठित होता है। कोई भी बालक कागज के कोरे पृष्ठ के समान अथवा रेखाहीन श्याम फलक जैसे शून्य मन के साथ जन्म नहीं लेता। इसके पूर्व भी हमारा जन्म हुआ रहता है। प्राचीन तथा अर्वाचीन युग के ऋषि, मुनि तथा योगियों का भी यह स्पष्ट उद्घोष है। ईसामसीह भी इसे मानते थे। उन्होंने इंजील में बतलाया है कि 'इब्राहीम से पूर्व भी मैं था।' आदिकालीन गिरजाघरों में भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्थान प्राप्त था। इलीजा ने ही जान बैप्टिस्ट के रूप में पुनः जन्म लिया था।

बौद्धिक विशेषताओं में रहने वाली इस प्रकार की विषमता तथा असमानता के कारण का स्पष्टीकरण आनुवंशिक परम्परा नहीं कर सकती। इन अलौकिक महापुरुषों के माता-पिता तथा भाई-बहन आदि सभी सामान्य कोटि के ही व्यक्ति थे। स्वाभाविक प्रकृति तो भूतकाल के कर्मों का ही परिणाम होती है। यह वंश-परम्परा से नहीं आती। असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने अपने पूर्व-जीवन में ही इन गुणों का अर्जन किया होता है।

यदि वर्तमान परिस्थितियों में आप अपनी इच्छाओं को इस जीवन में सन्तुष्ट न कर सके, तो इन अपूर्ण कामनाओं की परितृप्ति के हेतु आपको पुनः इस लोक में आना पड़ेगा। यदि आपको इस जीवन में कुशल संगीतकार बनने की तीव्र इच्छा जाग्रत हो उठी तथा अपनी इच्छा को आप पूर्ण नहीं कर सके और वह इच्छा अब भी बनी हुई है, तो यह इच्छा आपको पुनः इस संसार क्षेत्र में लायेगी और आपको उपयुक्त वातावरण तथा तदनुकूल परिस्थिति में रखेगी। एक कुशल संगीतकार बनने की प्रवृत्ति से आप अपने बाल्यकाल में ही संगीत का अभ्यास प्रारम्भ कर देंगे।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के विषय में एक आपत्ति यह उठायी जाती है कि 'हमें अपने पूर्व-जीवन की स्मृति क्यों नहीं होती ?' आपने अपने बाल्यकाल में जो-जो कार्य किये थे, क्या वे अब आपको स्मरण हैं? 'मुझे बाल्यकाल की बातें स्मरण नहीं, अत: मैं बाल्यकाल में नहीं था' -क्या आप ऐसा कह सकेंगे ? निश्चय ही आप ऐसा नहीं कहेंगे। यदि आपकी स्मृति के आधार पर ही आपके अस्तित्व का होना निर्भर करता है, तो आपका यह तर्क यह सिद्ध करता है कि आप अपने बाल्यकाल में एक बालक के रूप में स्थित नहीं थे; क्योंकि आपको अपने बाल्यकाल का स्मरण नहीं आता । निश्चय ही बाल्यकाल की विगत घटनाएँ आपके स्मृति-पटल से ओझल हो चुकी हैं; परन्तु आपने अपने अनुभवों के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह तो आपके जीवन का एक अविभाज्य अंग बन चुका है। वे अनुभव अब भी आपके चित्त में संस्कार-रूप से विद्यमान हैं।

यदि आपको भूतकालीन जीवन की स्मृति हो, तो सम्भवतः आप अपने वर्तमान जीवन का दुरुपयोग करेंगे। आपके पूर्व-जीवन में जो आपका कट्टर शत्रु रहा होगा, वहीं इस जीवन में आपके पुत्र के रूप में जन्म ले सकता है। अब यदि आप गत जीवन को स्मरण करें, तो आप उसके प्राण लेने के लिए तुरन्त ही अपनी खड्ग खींच लेंगे। शत्रुता की भावना आपके हृदय में शीघ्र ही जग उठेगी। जब आप कालेज में प्रविष्ट होते हैं, तो पाठशाला में प्राप्त सारे ज्ञान को भी आप अपने साथ ही ले जाते हैं। अब आप उच्चतर अभ्यास में उस ज्ञान की

वृद्धि तथा विकास करते हैं। जब आप कालेज में जाते हैं, तो पाठशाला में जो कुछ आपने किया है, उन सबको स्मरण नहीं रखते; परन्तु पाठशाला का अनुभव आपके साथ रहता है। इसी भाँति आपका भूतकालीन जीवन भी आपके साम्प्रतिक जीवन पर प्रभाव डालता है।

प्रकृति माता ने भूतकाल को आपसे गुप्त रख रखा है; क्योंकि भूतकाल की स्मृति वांछनीय नहीं है। थोड़ी देर के लिए आप कल्पना करें कि आप अपने विगत जीवन के विषय में जानते हैं। आपको यह भी पता है कि गत जीवन में आपने एक पाप किया था और अभी आपको उसका दण्ड मिलने वाला है। अब आप सदा ही इस विचार में निमग्न रहेंगे और इसके परिणाम स्वरूप अपने को निरन्तर चिन्तातुर बनाये रखेंगे। इसके कारण न तो आपको प्रगाढ़ निद्रा आयेगी और न आपको भोजन ही रुचिकर प्रतीत होगा। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "भूतकाल का चिन्तन न कीजिए। भविष्य की योजना न बनाइए। वर्तमान जीवन का निर्माण कीजिए। ठोस वर्तमान में ही जीवन-यापन कीजिए। सद्विचारों का पोषण कीजिए। पुण्य-कर्म कीजिए। इससे आप अपने भविष्य को सुन्दर बना सकेंगे।"

योगी संस्कारों पर संयम कर अपने पूर्व-जन्म का स्मरण कर सकता है। वह आपके चित्त में स्थित संस्कारों पर संयम कर आपको भी आपके पूर्व-जीवन के विषय में सब-कुछ बतला सकता है।

आपका वर्तमान जीवन आपके भूतकाल के कार्यों का परिणाम है। इसी भाँति आप वर्तमान जीवन में जो-कुछ कार्य कर रहे हैं, वे आपके भावी जीवन के निर्णायक होंगे। इस कार्य-कारण के नियम को आपने स्वयं परिचालित किया है और इससे आप जन्म-मरण के चक्र में फँस गये हैं। पुनर्जन्म के विषय में भी यही नियम है। यह नियम भी सभी प्राणियों के लिए बन्धनकारक है। जब आप उस अविनाशी परमात्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, तभी यह चक्र नष्ट होगा और आप मोक्ष तथा पूर्णत्व को प्राप्त करेंगे।

आपके अनुभवों का नाश होना दुष्कर है। आपके कार्य एक अदृश्य शक्ति से सम्पन्न होते हैं, जिसे अदृश्य अथवा अपूर्व कहते हैं। ये फलोत्पादक हैं। कार्य प्रवृत्ति के रूप में पुनः प्रकट होते हैं। यदि आप दया के बहुत से कार्य करें, तो आप दयालुता के कार्य करने की सुदृढ़ प्रवृत्ति का विकास करेंगे। जो लोग इस जीवन में बहुत ही दयालु हैं, उन्होंने अपने पूर्व-जन्मों में दया के बहुत से बड़े-बड़े कार्य किये थे।

इस भाँति पुनर्जन्म कर्म पर आधारित है। यदि मनुष्य पाशविक कार्य करता है, तो वह पशुयोनि में जन्म लेगा।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त उतना ही पुरातन है, जितने कि वेद और हिमालय । पुनर्जन्म का सिद्धान्त जीवन की बहुत-सी समस्याओं का समाधान करता है। आपका प्रत्येक शब्द, विचार तथा कार्य आपके लिए एक भण्डार तैयार करता है। भला बनिए, भले कार्य कीजिए। सद्विचारों को प्रश्रय दीजिए। पुण्य-कार्य कीजिए। हृदय को शुद्ध बनाइए। अमर आत्मा पर नित्य-प्रति ध्यान कीजिए। यह आपका ही आत्मा है। ऐसा करने से आप अपने को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करेंगे और इस जीवन में ही अमरत्व तथा शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेंगे।

२. कर्म तथा पुनर्जन्म (ख)

आज के युग में भी मानव जाति का बहुसंख्यक भाग इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। पूर्व के शक्तिशाली राष्ट्रों ने भी इस सिद्धान्त को सत्य के रूप में ग्रहण किया था। मिश्र की प्राचीन संस्कृति का गठन इसी सिद्धान्त के ऊपर था। पायथागोरस, प्लेटो (अफलातून), वर्जिल और ओविद आदि ने इसे स्वीकार कर इटली

तक इसका प्रचार किया। प्लेटो के दर्शन का तो यह मूलगत सिद्धान्त है, जब कि वह कहता है कि 'प्रत्येक प्रकार का ज्ञान स्मृति-रूप से विद्यमान है।' प्लेटो के सिद्धान्त के विरोधी प्लोटिनस, प्रोकलस आदि ने भी इस सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अंगीकार किया था। करोड़ों ही हिन्दुओं, बौद्धों तथा जैनियों ने इस विचार-धारा को अपने दर्शन, धर्म, राज्य तथा सामाजिक संस्थाओं का मौलिक आधार बनाया। फारस के उनागी सम्प्रदाय में इसे मुख्य सिद्धान्त माना गया था। जीवात्मा के पुनर्जन्म को ड्रूइड मत में एक आवश्यक सिद्धान्त माना जाता था। उसका प्रभाव केल्ट, गाल तथा ब्रिटिश जनता पर पड़ा । रोमन, ड्रूइड तथा हिब्रू लोगों की प्रथा-प्रणाली तथा धार्मिक कृत्यों में इस सिद्धान्त की सुस्पष्ट झलक मिलती है। बेबीलोन के साम्राज्य के आधिपत्य में आने पर यहूदियों ने भी इस विचारधारा को स्वीकार किया। बैप्टिसर जान को वे द्वितीय इलीजा मानते थे। इसी प्रकार ईसा को वे बैप्टिस्ट जान अथवा प्राचीन पैगम्बरों में से किसी एक का अवतार मानते थे। रोमन कैथोलिकों का पवित्रता का सिद्धान्त भी इसी का कामचलाऊ रूप-सा प्रतीत होता है, जिसका कि उन लोगों ने इसके स्थान की पूर्ति के लिए आविष्कार किया था। कैण्ट, शिलिंग, शोपेनहावर प्रभृति दार्शनिक इस सिद्धान्त के समर्थक थे। जूलियस, मुल्लर, डोर्नर तथा एडवर्ड बीचर जैसे धर्म-शास्त्रज्ञ भी इसको स्वीकार करते हैं। आज भी बर्मा, श्याम, चीन, जापान, तुर्किस्तान, तिब्बत, ईस्ट इंडीज तथा लंका देश के निवासियों पर इस सिद्धान्त का साम्राज्य है। इन देशों की जनसंख्या ७५०० लाख है, जो कि सम्पूर्ण मानव-जाति का दो-तिहाई भाग है। ईसा संवत् से सहस्रों वर्ष पूर्व से हिन्दू, बौद्ध तथा जैन इस महान् एवं सर्वोत्कृष्ट तत्त्वज्ञान के सिद्धान्त का शिक्षण संसार को प्रदान कर रहे थे; परन्तु पाश्चात्य जगत् तथा यूरोपीय देशों में जो आत्मघाती असंगत मान्यताएँ अन्धयुग के कारण प्रचलित हुई हैं, उन विचित्र मान्यताओं के आधार पर पूर्व के वास्तविक सिद्धान्तों का अस्तित्व मिटाया जा रहा है। क्या यह बात विस्मयजनक नहीं है? ज्ञानी पुरुषों को उत्पीड़ित कर तथा कुस्तुन्तुनियाँ के भव्य पुस्तकालय में संग्रहीत असंख्य ग्रन्थों को नष्ट कर चर्च के धर्माधिकारियों ने समस्त यूरोप को मानसिक अन्धकार में ला पटका है। धार्मिक विचारों के नृशंसतापूर्ण दमन के काले कारनामे जगत् में इसकी ही देन हैं। इसके परिणाम-जन्य साम्प्रदायिक युद्धों तथा उपद्रवों सेलाखों मनुष्यों की प्राण-हानि हुई है।

पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त में अविश्वास रखने वालों के लिए यहाँ एक विचारणीय उदाहरण है। अभी थोड़े ही समय हुए, दिल्ली में शान्ति देवी नाम की एक छोटी बालिका ने अपने पूर्व-जन्म का विवरण विस्तारपूर्वक दिया था। इससे दिल्ली तथा मथुरा में ही नहीं, वरन् सारे उत्तर प्रदेश में बड़ी सनसनी फैल गयी। उसका बयान सुनने के लिए लोगों का एक बड़ा जमघट एकत्रित हो गया। उस लड़की ने मथुरावासी अपने पूर्व-जन्म के पति तथा पुत्र को पहचान लिया। पूर्व-जन्म में उसने जहाँ धन गाड़ रखा था, उस स्थान को उसने बतला दिया तथा घर के आँगन का वह कुआँ भी बतलाया जो अब बन्द कर दिया गया है। उसके बतलाये हुए विवरण की नियमित जाँच तथा पुष्टि प्रत्यक्षदर्शी माननीय व्यक्तियों द्वारा की गयी। स्पून, सीतापुर तथा अन्य अनेक स्थानों में इस प्रकार की घटनाएँ प्राय: सामान्य-सी हो चली हैं। ऐसी अवस्था में जीवात्मा पहले के स्थूल शरीर को छोड़ कर तुरन्त ही अपने सूक्ष्म शरीर के साथ नवीन जन्म धारण कर लेता है और यही कारण है कि जीवात्मा को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति आ जाती है। वह जीवात्मा मानसिक लोक में अधिक काल तक नहीं रुकता जहाँ कि उसे जगत् के अपने विभिन्न अनुभवों के अनुसार नये मन तथा सूक्ष्म शरीर का नव-निर्माण करना होता है।

आदि कालीन गिरजाघरों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्थान प्राप्त था । इलीजा ने ही बैप्टिस्ट के रूप में पुनः जन्म लिया था। क्या अन्धे बालक ने स्वयं पाप किया था अथवा उसके पिता ने, जिससे कि वह बालक जन्मान्ध पैदा हुआ ? ऐसा उन लोगों ने प्रश्न किया जो कर्म के प्रतिफल में दूसरों को भी कारण मानते थे। मृत्यु के तुरन्त बाद ही एक चिन्ताजनक घड़ी आ उपस्थित होती है। उस समय पवित्र स्थान की ओर प्रयाण करने वाले जीवात्मा को अपने अधिकार में लेने के लिए देवदूतों का असुरों से सामना होता है।

पायथागोरस तथा दूसरे तत्त्वज्ञानियों ने जन्म-मरण के आवागमन के सिद्धान्त का विश्वास भारत से ही ग्रहण किया। पायथागोरस का जन्म छठी शताब्दी में हुआ था। उसने पुनर्जन्म के सिद्धान्त की शिक्षा दी और आश्चर्य तो यह है कि इसके साथ ही उसने मांस-भक्षण का निषेध भी चालू किया।

नवजात शिशु स्वतः ही अपनी माँ का दुग्ध-पान करने की चेष्टा करता है और बत्तख का बच्चा स्वयमेव तैरना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार की स्वाभाविक क्रियाएँ पूर्व-स्मृति का प्रमाण हैं। पूर्व-जन्मों में जो क्रियाएँ की होती हैं, उन क्रियाओं के परिणाम-स्वरूप संस्कार पड़े होते हैं। ये संस्कार अविभेद्य होते हैं और उनके ही परिणाम-स्वरूप इस जीवन की स्मृक्ति है। हमारा प्रत्येक कार्य चित्त पर एक संस्कार डालता है। वह संस्कार ही स्मृति में परिणत हो जाता है। यह स्मृति आगे चल कर अपने अनुरूप नये कर्म तथा नये संस्कारों को उत्पन्न करती है। वृक्ष और बीज के दृष्टान्त के समान ही कर्म और संस्कार का जन्म और मरण का चक्र अनादि काल से चालू है।

कामनाओं के आदि काल का निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि जीवित रहने की कामना शाश्वत है। कामनाओं का आदि-अन्त नहीं है। भौतिक जीवन के उपभोग का आग्रह (अभिनिवेश) प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। जीवित रहने की यह कामना शाश्वत है। इसी प्रकार अनुभव भी अनादि हैं। आप किसी ऐसे समय की कल्पना रहे कर सकते, जब कि अहं-वृत्ति आपके हृदय में न हो। अहं-भाव की यह वृत्ति दिस किसी अन्तराय के शाश्वत बनी रहती है। इससे हम इस बात का निर्णय सुगमता से कर सकते हैं कि इस जीवन से पूर्व भी हमारे कई जन्म थे।

जिस प्राणी को मृत्यु से होने वाले कष्ट का अनुभव नहीं है तथा उसने प्रथम वा ही जन्म लिया है, उसे कष्ट से बचाने के लिए भला मृत्यु का भय क्यों होगा? कारण कि ऐसा समझा जाता है कि किसी भी विषय से बचने की इच्छा केवल तभी जाग्रत होती है, जब कि उस विषय के संयोग से होने वाले दुःख के अनुभव की स्मृति हो। स्वाभाविक गुण वस्तुतः किसी भी कारण की अपेक्षा नहीं रखता। एक बालक उक माता की गोद में गिरने वाला होता है, तो यह सोच कर कि 'मैं गिर पडूंगा' - भय से काँपने लगता है और माता के वक्षःस्थल पर लटकते हुए हार को अपने हाथों से दृढ़ता के साथ पकड़े रखता है। भला उस बालक ने तो अपने जीवन में मृत्युजन्य दुःख का अभी अनुभव भी नहीं किया। फिर वह ऐसा क्यों करता है? मृत्यु के परिणाम स्वरूप होने वाले दुःखों की स्मृति ही मृत्यु से भयभीत होने का एकमात्र सम्भाव्य कारण है. तो फिर इतना नन्हाँ-सा बच्चा मृत्यु से कैसे भयभीत होता है, जैसा कि बच्चे के कम से प्रकट होता है।

अद्‌भुत मेधावी बालकों के बहुत से उदाहरण देखने में आते हैं। पाँच वर्ष का एक बालक कुशलतापूर्वक पियानो अथवा वायलिन बजा लेता है। ज्ञानदेव ने अपना चौदह वर्ष की अवस्था में गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' टीका लिखी। कितने ही बालब गणित-शास्त्र में निष्णात पाये जाते हैं। मद्रास में भागवतार नाम का एक बालक था। जब वह आठ वर्ष का था, तब वह कथा करता था। आप इस प्रकार की अद्‌भुत घटनाओं का कैसे स्पष्टीकरण करेंगे? यह प्रकृति की लीला मात्र नहीं है। एकमात्र पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही इन सबका स्पष्टीकरण कर सकता है। वर्तमान जीवन में जो एक व्यक्ति संगीत अथवा गणित का अभ्यास कर अपने मन में उनके गहरे विचार अंकित कर लेता है, तो वह इन संस्कारों को अपने साथ ही आगामी जीवन में भी ले जाता है और इस प्रकार जब वह एक बालक ही होता है, तभी वह इन शास्त्रों का धुरन्धर विद्वान् बन जाता है।

ईसाई धर्म की मान्यतानुसार धार्मिक जीवन का अन्तिम फल शाश्वत जीवन की प्राप्ति और पापमय जीवन का अन्तिम फल चिरन्तन अग्नि अथवा शाश्वत नरक वास है। भला ऐसा कैसे हो सकता है? क्योंकि पापी व्यक्ति को तो इसमें अपने आगामी जन्मों में पाप से मुक्त होने का कोई अवसर ही नहीं प्रदान किया जाता है।

पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों में सामान्य रीति से सर्वमान्य है। परन्तु पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त है क्या वस्तु ? पुनर्जन्म के सिद्धान्त का भाव यह है कि जीवात्मा इस जीवन में नये सर्जन के रूप में प्रवेश नहीं करता है। अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व उसे अनेक अस्तित्वों के लम्बे मार्ग से हो कर आना पड़ता है। बुद्धि में किस विशेष प्रकार की क्रिया के द्वारा इस प्रकार का विचार जाग्रत होता है कि 'मैं हूँ?' इस भाँति वास्तविक तत्त्व को बतलाने वाली क्रिया में जन्म से ले कर मृत्युपर्यन्त कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। शैशव काल से ले कर वृद्धावस्था तक बुद्धि के ज्ञान-तन्तुओं में आमूल परिवर्तन संघटित होता रहता है; परन्तु 'मैं हूँ' का विचार कभी भी दूर नहीं होता। यह अहंकार ही जीवात्मा है। इस जीवात्मा के कारण ही स्मृति सक्षम रहती है। यह जीवात्मा की अपनी निज की चेतना होती है, किसी अन्य की नहीं। अतः यह अद्वय तत्त्व स्वयं अपने-आपमें स्थित रहता है। शक्ति के संग्रह और संरक्षण का नियम भौतिक जगत् में जितना सत्य है, उतना ही आध्यात्मिक जगत् में भी। अतः जैसे कोई भी अणु न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट । तो फिर प्रश्न उठता है कि जिसे हम 'मृत्यु' की संज्ञा देते हैं, उसके अनन्तर इस जीवात्मा का क्या होता है? इसका एकमात्र यही उत्तर है कि विश्व की कोई भी शक्ति इसे कदापि नष्ट नहीं कर सकती।

पाप का मूलगत कारण क्या है? यह आज का बहुत ही विवादास्पद विषय है। एकमात्र पूर्व-जन्म का सिद्धान्त ही इसका पूर्ण समाधान करता है। 'अपने पूर्वजों के अपराध के कारण ही हम आनुवंशिक दुःख भोगते हैं' - इस बात को स्वीकार करना संसार में एक ऐसे महान् अन्याय को स्वीकार करना है जिसकी कि कहीं समता नहीं। अपने पापों के लिए मनचाहा उत्तरदायित्व ठहराना तो धर्माधिकारियों का काम चलाने का एक साधन है। अपने दुष्कृतों के लिए व्यक्ति स्वयं ही दोष का भागी है, न कि कोई अन्य। क्या संयुक्त राज्य के न्यायालय न्याय के सिद्धान्त पर आधारित नहीं हैं? यदि वहाँ का एक न्यायाधीश न्यायासन पर बैठ कर 'ब' की मृत्यु को-स्वेच्छा से किये हुए उसके आत्मघात को-एक अन्य व्यक्ति 'अ' के द्वारा की हुई किसी प्राणी की हत्या के उचित प्रतिकार के रूप में स्वीकार करे, तो क्या यह न्यायपूर्ण होगा ? और, यदि वह ऐसा करता है, तो क्या वहाँ का उच्चतर न्यायालय उस न्यायाधीश को जान-बूझ कर 'ब' को आत्महत्या के अपराध के लिए प्रोत्साहित करने का दोषी नहीं ठहरायेगा? ऐसा होने पर भी हमें यह विश्वास करने के लिए कहा जाता है कि एक व्यक्ति का पाप दूसरे व्यक्ति के कष्ट सहन करने पर धुल सकता है।

जब हम इस संसार में असमानता, अन्याय तथा दोष देखते और उन सबके सुलझाव का प्रयास करते हैं, तो पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त हमें विशेष सहायक सिद्ध होता है। क्यों एक व्यक्ति धनी उत्पन्न होता है और दूसरा निर्धन ? क्यों एक व्यकि मध्य अफ्रीका के नरभक्षी मनुष्यों के मध्य जन्म ग्रहण करता है और दूसरा भारत के शान्त, सात्त्विक वातावरण में? क्या कारण है कि राजा जार्ज ने एक ऐसे विशाल भूभाग पर शासन करने को जन्म लिया जिस पर कि सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता और क्यों आसाम के एक श्रमिक को एक अँगरेज के चाय के बगीचे में एक गुलाम की भाँति काम करना पड़ता है? इस प्रत्यक्ष अन्याय का कारण क्या है? जो लोग ईश्वर को इस विश्व के स्रष्टा के रूप में मानते हैं, उन्हें भी ईश्वर को ईर्ष्या आदि दोषों से मुक्त रखने के लिए पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त को अवश्यमेव मानना चाहिए।

न्यू टेस्टामेन्ट (बाइबिल का उत्तरार्ध) में पुनर्जन्म के पर्याप्त उदाहरण पाये जाते हैं। सन्त जान (प्रकरण ९-२) में ईसा के अनुयायियों ने उनसे एक प्रश्न किया कि 'यह बालक अन्धा पैदा हुआ; इनमें से किसने पाप किया था-इस बालक ने अथवा इसके माता-पिता ने?' यह प्रश्न उस युग में इस विषय में प्रचलित दो लोक-मान्यताओं की ओर निर्देश करता है। उनमें से एक मान्यता थी मूसा के आधार पर। मूसा का यह उपदेश था कि माता-पिता के किये हुए पाप उनके बाद आने वाली तीसरी या चौथी पीढ़ी में उत्पन्न होने वाली उनकी सन्तान में उतर आते हैं। दूसरी मान्यता थी-पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त। उस प्रश्न के उत्तर में ईसा ने केवल इतना हो कहा था कि उनके अन्धा पैदा होने का कारण न तो उस बालक का किया हुआ अपना पाप था और न उसके पिता का ही। उन्होंने उस बालक के पूर्व-अस्तित्व का निषेध नहीं किया। भगवान् ईसा यह मानते थे कि जान पुनः इलीजा के रूप में उत्पन्न हुए थे।

परन्तु यहाँ लोग कह सकते हैं कि यदि यह सिद्धान्त ठीक है, तो फिर मनुष्य को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति क्यों नहीं रहती? ऐसे लोगों से मेरा केवल यह प्रश्न है कि हम अपनी स्मरण-शक्ति का किस ढंग से प्रयोग करते हैं? यह बात तो निश्चित ही है कि जब तक हम इस शरीर में जीवित रहते हैं, तब तक हम अपने मस्तिष्क द्वारा ही इस स्मृति को प्रयोग में लाते हैं। परन्तु जीवात्मा जब एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। तब वह अपने साथ इस पूर्व-मस्तिष्क को इस नये शरीर में नहीं ले जाता। यही कारण है कि मनुष्य को अपने पूर्व-जीवन की स्मृति नहीं रहती। इसके अतिरिक्त भला क्या आप अपने इस वर्तमान जीवन में भी भूतकाल की अपनी सभी क्रियाओं को सदा स्मरण रखते हैं? क्या कोई भी व्यक्ति अपने शैशव-जीवन की-उस विचित्र अवस्था की-सभी बातों को स्मरण रख सकता है?

यदि आपको संयम (धारणा, ध्यान और समाधि के समन्वित अभ्यास) द्वारा संस्कारों को साक्षात् करने की राजयोग की कला का ज्ञान है, तो आप अपने पूर्वकालिक जीवनों को स्मरण कर सकते हैं। महर्षि पतंजलि के योग-दर्शन में आप देखेंगे-"संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्" (योगसूत्र : ३-१८) अर्थात् (संयम द्वारा) संस्कारों का साक्षात् कर लेने से पूर्व-जन्मों का ज्ञान हो जाता है। आपने अपने अनेक जन्मों में जो अनुभव प्राप्त किये हैं, वे सब के सब आपके अन्तःकरण में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उसी प्रकार रहते हैं जैसे कि ग्रामोफोन के रिकार्ड में ध्वनि सूक्ष्म रूप से रहती है। जब ये संस्कार वृत्ति का रूप धारण करते हैं, तभी आपमें भूतकालीन अनुभवों की स्मृति जाग पड़ती है। यदि कोई योगी अन्तःकरण में स्थित इन भूतकाल के अनुभवों पर संयम कर सकता है, तो वह अपने सभी पूर्व-जन्मों का पूर्ण विवरण प्राप्त कर सकता है।

३. पुनर्जन्म-एक नितान्त सत्य (क)

मनुष्य एक ही जन्म में पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। इसके लिए उसे अपने हृदय, बुद्धि तथा बाहुबल का विकास करना होता है। उसे अपने चरित्र का पूर्ण रीति से गठन करना होता है। दया, तितिक्षा, प्रेम, क्षमा, समदृष्टि, साहस आदि विभिन्न सद्‌गुणों का उसे विकास करना होता है। इस विशाल संसार-रूपी पाठशाला में उसे बहुत से पाठ सीखने होते हैं, बहुत से अनुभव प्राप्त करने होते हैं। अतः उसे इस पूर्णता की प्राप्ति के लिए कई जन्म ग्रहण करने पड़ते हैं। पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त नितान्त सत्य है। आपका यह लघु जीवन तो आपके सम्मुख तथा पृष्ठभाग में फैली हुई विशाल जीवन-रूपी श्रृंखला की एक कड़ी, एक अंश मात्र है। एक जीवन का तो कुछ भी महत्व नहीं। एक जीवन में तो मनुष्य को बहुत ही अल्प अनुभव प्राप्त होते हैं। उसका विकास भी बहुत ही कम हो पाता है। अपने जीवन-काल में मनुष्य अनेक दुष्कर्म करता है; सुकर्म तो वह कम ही करता है। भले मनुष्य के रूप में मरने वालों की संख्या बहुत ही कम होती है। ईसाई धर्म वाले मानते हैं कि मनुष्य का एक जीवन ही उसका पूर्ण निर्णायक तथा निर्धारक होता है। भला यह कैसे सम्भव है? मनुष्य के विशाल तथा असीम भविष्य को उसके एक लघु, अल्प तथा क्षुद्र जीवन पर निर्भर कैसे किया जा सकता है? मनुष्य यदि इस जीवन में ईसा पर विश्वास लाता है, तो उसे स्वर्ग में अनन्त सुख-शान्ति प्राप्त होती है; परन्तु यदि वह इस जीवन में ईसा पर विश्वास नहीं लाता, तो उसे अनन्त काल तक नरक भोगना पड़ता है। वह सदा के लिए अग्नि-कुण्ड अथवा भयंकर नरक में धकेल दिया जाता है। क्या यह सिद्धान्त अन्यायपूर्ण नहीं है। क्या मनुष्य को अपनी भूल सुधारने तथा उन्नति करने का अवसर नहीं मिलना चाहिए। पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस दृष्टि से बहुत ही न्याय-संगत है। यह सिद्धान्त मनुष्य को अपनी भूल सुधारने, उन्नति करने तथा क्रमिक विकास करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।

४. जीवात्मा का देहान्तर-गमन

अँगरेजी के ट्रांसमाइग्रेशन (Transmigration) शब्द का अर्थ है-एक जीवन से दूसरे जीवन में गति। चार्वाक तथा भौतिकवादियों के अपवाद के अतिरिक्त भारतीय दर्शन की प्रायः सभी शाखाओं का मुख्य तथा मौलिक सिद्धान्त है-आत्मा की अमरता में उनका विश्वास। पूर्णता की प्राप्ति के लिए जीव अनेक जन्मों से गुजरता है। इसी को विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों में 'जीवात्मा का देहान्तर-गमन' कहते हैं।

पुनर्जन्म अथवा जीव के आवागमन का यह सिद्धान्त आदि काल से ही चला आ रहा है। यह विश्वास उतना ही पुरातन है जितना कि आदिम मानव । जीवात्मा की अविनश्वरता तथा मृत्यु के अनन्तर भी प्रकारान्तर से उसकी विद्यमानता- यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो मृत्यु के रहस्य को सुलझाता है तथा मृत्यु-विषयक विचार को आश्वस्त करता है। भारत के प्राचीन आर्यों ने युग-युगान्तर-व्यापी मानव-दुःख की समस्या का इसमें समाधान पाया और उन्होंने इसे एक विशेष धार्मिक सिद्धान्त के रूप में वरण किया।

जीवात्मा के आवागमन का प्रयोजन न तो उसे पुरस्कृत करने के लिए है और न उसे दण्ड देने के लिए ही; वरन् यह तो उसकी भलाई और पूर्णता के लिए है। यह मानव-जाति को उसके अन्तिम लक्ष्य के साक्षात्कार के लिए तैयार करता है, जिससे कि मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। जीवन की विपुलता के अभाव में इस पूर्णता तथा पूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त करना मनुष्य के लिए सम्भव न हो पाता।

मनुष्य अपने विविध जन्मों में अपने संस्कारों एवं गुणों का विकास करता है। तथा अन्तिम एक जन्म में वह एक असाधारण मेधावी बनता है। बुद्ध अपने पूर्वगामी अनेक जन्मों में भिन्न-भिन्न अनुभव प्राप्त करते रहे थे। वे केवल अपने अन्तिम जन्म में - ही बुद्ध बने। सभी सद्‌गुणों का विकास एक ही जन्म में नहीं किया जा सकता। क्रमिक उन्नति के द्वारा ही मनुष्य सद्‌गुणों का विकास कर सकता है। मनुष्य का नन्हा बच्चा -स्तन-पान करता है और छोटा बत्तख जल में तैरता है। इसकी शिक्षा उन्हें किसने दी ? ये उनके पूर्व-जन्मों के संस्कार हैं।

शान्ति देवी आदि बच्चों के ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं, जिन्होंने अपने पूर्व-जीवन के सम्बन्धों में पूर्ण विवरण प्रस्तुत किये। उनकी बतलायी हुई बातों की पूर्ण रूप से पुष्टि भी हो चुकी है। इन बच्चों ने तो अपने उन घरों के ठीक-ठीक पते भी बतलाये, जिनमें कि वे पूर्व-जीवन में रह रहे थे।

आत्मा, प्रतीकार, पुनर्जन्म, दिव्यता आदि के सिद्धान्त महान् दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) को भी मान्य थे। पायथागोरस भी लोगों को पुनर्जन्म के सिद्धान्त की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने भी पुनर्जन्म की शिक्षा दी थी।

प्राचीन मिश्र देशवासी अपने मृत व्यक्ति के शव को मसाले लगाते और तत्पश्चात् उन्हें अपने सामर्थ्य के अनुसार सर्वोत्तम कब्र में दफन करते थे। उनकी मान्यता के अनुसार मृत व्यक्ति के दो आत्मा होते थे। उनमें से एक आत्मा तो, जब तक शव नष्ट न हो जाता तब तक, कब्र में ही रुका रहता था और दूसरा आत्मा अमर देवों से प्रवेश-पत्र प्राप्त करने के लिए अग्रसर होता था। एक अलौकिक न्यायाधीश इस आत्मा के विषय में आवश्यक सूचनाएँ देता था। उस आत्मा के गुण-दोष तथा प्रारब्ध के विषय में उस न्यायाधीश के विचार ही अन्तिम माने जाते थे। जो कुछ भी हो, मिश्र के पुरोहित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को किसी-न-किसी अप्रकट रूप में अंगीकार करते थे।

यह मानव शरीर तो अविनाशी आत्मा का एक परिधान मात्र अथवा उसका निवास-स्थान है। अपना विकास साधने तथा दैवी योजना एवं उद्देश्य के पूर्वापेक्षा अधिक सुचारुरूपेण साक्षात्कार करने के लिए निश्चय ही जीवात्मा दूसरे स्थान में का निवास कर सकता है अथवा नये वस्त्र धारण कर सकता है। विश्व-स्रष्टा ने ऐसी ही * योजना परिकल्पित की है। पतित एवं अधम मानव के आत्मा को नयी प्रकार की शिक्षा देने के लिए दूसरे शरीर में

डाला जाता है। सभी प्राणियों का विकास उनके भले है के लिए ही होता है। सामान्यतः प्रकृति का नियम एवं सिद्धान्त है उत्थान, न कि पतन; परन्तु इस सामान्य नियम के अपवाद भी पाये जाते हैं

अपने पूर्व-जीवन-काल में जीवात्मा ने जो थोड़े गुण एवं दिव्यता को प्राप्न किया है, उनसे सुसज्जित हो कर वह अपने इन गुणों की मूल पूँजी में वृद्धि करने, उन्हें विकसित करने तथा उनमें सुधार करने के लिए नये जीवन में प्रवेश करता है। आत्मा द्वारा नियन्त्रित इस देह में ईश्वर तथा सत्यता, पवित्रता आदि ईश्वरीय गुणों की ग्राहक-शक्ति अब कहीं अधिक होती है।

जो पापी जीव हैं, उन्हें अपने बाद के जन्मों में अपने को सुधारने का अवसर नहीं प्रदान किया जाता है तथा मनुष्य के सीमित पाप, यदि वे किसी प्रकार दूर न किये गये, तो मृत्यु होने पर उसे अनन्त दुःखों में धकेल देते हैं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यह बात विचार-संगत नहीं है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त पापी जीवों को भावी जन्मों में अपने को सुधारने तथा शिक्षित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है। वेदान्त कहता है कि अत्यन्त पापी के लिए भी मोक्ष की आशा है।

पापी जीव अपने दुष्कर्मों का फल एक निश्चित काल तक भोगते हैं। जब वे उन पापों से मुक्त हो जाते हैं, तब वे पुनः बुद्धिशील प्राणी के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं और इस भाँति उन्हें पुनः मुक्ति-साधन के लिए एक नया अवसर प्रदान किया जाता है, जिसमें उन्हें सन्मार्ग तथा कुमार्ग के मध्य चुनाव करने का इच्छा-स्वातन्त्र्य तथा भले-बुरे का अन्तर बतलाने वाला विवेक भी प्राप्त रहता है।

आप अपने सुख-दुःख के, अपने निजी कर्मों के कारण स्वयं ही उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र में विभेद का होना, भिन्न-भिन्न संस्कार जो बालकों के जन्म-समय में देखने में आते हैं तथा मानव जाति के अन्दर वर्तमान विषमता-इन सबके कारण का निर्देश तथा उनका स्पष्टीकरण एकमात्र कर्म के सिद्धान्त द्वारा ही किया जा सकता है। कर्म का सिद्धान्त मनुष्य को उसके पूर्ण विकास के लिए स्वतन्त्रता एवं छूट प्रदान करता है।

मनुष्य का प्रतिबिम्ब एक दर्पण में पड़ता है। मनुष्य की कोई अपनी वस्तु उसके शरीर से निकल कर इस प्रतिबिम्ब में नहीं जाती। यह प्रतिबिम्ब स्वयं वह मनुष्य तो नहीं है; परन्तु उससे यह भिन्न भी नहीं है। पुनर्जन्म भी ठीक इसी प्रकार घटित होता है। नया जन्म प्रतिबिम्ब के सदृश्य है और नये जन्म का हेतु जो कर्म है वह दर्पण के तुल्य है, इसके माध्यम से ही मनुष्य की छाया नये जन्म में प्रतिबिम्बित होती है।

योगियों तथा ऋषियों की ज्ञान-प्रज्ञा का, उनके जीवन तथा उपदेशों का नये जीवन में अधिक निखार होता है। ईश्वरीय ज्योति की खोज बढ़ जाती है तथा ईश्वर की ओर का आकर्षण अधिक दृढ़ हो जाता है। जीवन ईश्वर का साक्षात्कार करने तथा उसकी वाणी सुनने के लिए अधिक उपयुक्त बन जाता है। इस भाँति प्रगति एक सत्ता से दूसरी सत्ता की ओर आगे-आगे ही बढ़ती है। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि इसके लिए कितने जन्मों की आवश्यकता होती है; परन्तु जब तक पूर्णता की अन्तिम तथा निष्कलंक अवस्था की प्राप्ति नहीं होती तथा जब तक जीवात्मा का परमात्मा में विलय नहीं हो जाता, तब तक यह प्रगति सतत चालू रहती है।

मैं कहाँ से आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे प्रश्न करता है। ये जीवन-सम्बन्धी समस्याएँ हैं। आपका यह वर्तमान जन्म तो आपके असंख्य जन्मों में से एक है। हाँ, वे सभी जन्म मनुष्य-योनि में हुए हों, यह आवश्यक नहीं।

जीवात्मा का किसी देह-विशेष के साथ योग होना जन्म कहलाता है और उससे वियोग हो जाना ही मृत्यु कहलाती है। जब जीवात्मा अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर देता है, तब वह दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता

है। अपने गुणों के अनुसार उसे जो नया शरीर प्राप्त होता है, वह मनुष्य, पशु अथवा वनस्पति-वर्ग का हो सकता है। कठोपनिषद् बताती है- "हे नचिकेता! मृत्यु के अनन्तर जीवात्मा किस प्रकार रहता है, इस विषय का जो शाश्वत एवं दिव्य रहस्य है, उसे अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ। कितने ही जीवात्मा तो दूसरा शरीर धारण करते हैं और कितने ही जीवात्मा वनस्पति जैसी अधम योनियों में जा पड़ते हैं। इस विषय में उन जीवात्माओं के कर्म तथा भाव ही कारणभूत हैं" (कठोपनिषद् : २-२-६, ७) ।

जब तक जीव अपने सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो कर तथा योग द्वारा अविनाशी ब्रह्म का सच्चा तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष नहीं प्राप्त कर लेता है अथवा जब तक वह परब्रह्म से योग प्राप्त कर पूर्ण अचिरानन्द का उपभोग नहीं करता, तब तक जन्म-मरण का यह प्रवाह सतत गतिशील रहता है। भारतीय दर्शन के अनुसार इस स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर होता है।

यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के विनष्ट होने पर विनष्ट नहीं होता, वरन् वह अपने इहलौकिक पुण्य-कर्मों के फलोपभोग के लिए स्वर्ग को जाता है। जीव के मुक्त होने पर ही वह नष्ट होता है। संस्कार एवं वासनाएँ इस सूक्ष्म शरीर के साथ भी जाती हैं।

यहाँ वामदेव, ज्ञानदेव, दत्तात्रेय, अष्टावक्र, शंकराचार्य आदि जैसे कितने ही ऐसे भाग्यशाली आत्मा देखने में आते हैं, जिन्होंने इस संसार में प्रथम बार प्रवेश करते ही, मृत्यु से पूर्व अपने जीवन-काल में ही उच्च कोटि की पूर्णता प्राप्त कर ली थी। ३ सब जन्मजात सिद्ध थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवात्मा होते हैं जिन्हें अशेष पूर्णता की प्राप्ति करने तथा मोक्ष-लाभ करने के लिए कुछ और अधिक जन्म-ग्रहण करने की आवश्यकता रहती है।

भला जीवात्मा भले शरीर का निर्माण करता है और बुरा जीवात्मा बुरे शरीर का। जीवात्मा के ईश्वर की ओर प्रगति करने में शरीर उसका एक अपरिहार्य साधन है। जीव को प्रगति-पथ पर उन्नयन करने के लिए ही भगवान् ने इस शरीर की रचना की । पेट्रोल तथा वाष्प में महान् शक्ति है; परन्तु वे स्वयं अकेले एक निश्चित पथ से किसी निश्चित लक्ष्य तक नहीं जा सकते। इसके लिए उन्हें किसी यन्त्र, रेलगाड़ी अथवा जलपोत का आश्रय लेना पड़ता है। विमान-वाहक अथवा यन्त्र-चालक पेट्रोल अथवा वाष्प को अपने परिवहन में डालता है और तब उसे अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चलाता है। अतः जीवात्मा को भी अपने मार्ग को तय करने और अपने परमात्मा तक पहुँचने के लिए एक शरीर का रखना अनिवार्य है।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाने पर जीवात्मा का आवागमन नहीं रह जाता । प्रकृति माता का काम तब समाप्त हो जाता है। प्रकृति जीवात्मा को इस संसार के सभी अनुभव प्राप्त कराती है और जब तक जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता तथा जब तक वह परब्रह्म में लीन नहीं हो जाता, तब तक वह उसे अनेकानेक शरीरों द्वारा अधिकाधिक ऊँचाइयों की ओर ले जाती है।

आध्यात्मिक-संस्कार-सृजन तथा व्यावहारिक योग की अविराम साधना द्वारा अपने जीवन को श्रेष्ठतर बनाने का प्रयास प्रत्येक सम्भव उपाय से करते रहें। एकमात्र ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही आप इस जन्म-मरण के कष्ट से मुक्त हो सकते हैं।

५. पुनर्जन्मवाद

मनुष्य की तुलना एक पौधे से की जा सकती है। पौधे की तरह ही वह उत्पन्न होता तथा विकसित होता है और अन्त में मर जाता है; परन्तु वह पूर्णतः मरता नहीं। पौधा भी उगता और बढ़ता है तथा अन्त में मर जाता है।

वह पौधा अपने पीछे ऐसे बीज छोड़ जाता है जो कि नये पौधे उत्पन्न करते हैं। इसी भाँति मनुष्य भी जब मरता है, तब वह अपने भले-बुरे कर्मों को पीछे छोड़ जाता है। मनुष्य का स्थूल शरीर भले ही मृत्यु को प्राप्त होता और नष्ट हो जाता है; परन्तु उसके कर्मों के संस्कार नष्ट नहीं होते। इन कर्मों का फल भोगने के लिए उसे पुनः जन्म लेना पड़ता है। कोई भी जीवन प्रथमजात नहीं हो सकता; क्योंकि वह पूर्व-जन्म का परिणाम होता है। इसी प्रकार कोई जीवन अन्तिम भी नहीं हो सकता; क्योंकि उस जीवन के कर्मों का शोधन उससे आगामी जीवन में होता है। यह दृश्यमय अस्थिर जगत् आदि-अन्त-रहित है। परन्तु जो अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप में स्थित हैं, उन जीवन्मुक्तों के लिए इस संसार की कोई सत्ता नहीं है।

मनुष्य जब मरता है, तब वह अपने साथ अपनी चिरस्थायी लिंग-देह को ले जाता है। यह लिंग-शरीर पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार, परिवर्तनशील कर्माशय और जीवन के कर्म-इन सबसे बना हुआ होता है। यह सूक्ष्म शरीर ही आगामी नये शरीर का निर्माण करता है।

आलन्दी के भूतपूर्व सुप्रसिद्ध योगिराज ज्ञानदेव जी जब चौदह वर्ष की वय के थे, तब उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' नाम की टीका लिखी। वे जन्मजात सिद्ध योगी थे। यदि आप उचित रीति से सम्यक् प्रयास करें, तो आप भी उन्हीं की तरह सिद्ध पुरुष बन सकते हैं। जिस स्थिति को एक व्यक्ति ने प्राप्त किया हो, उस स्थिति को अन्य व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

एक नवजात शिशु, जिसने अपने इस जीवन में कोई भी अनिष्ट कर्म नहीं किया, यदि अत्यन्त कष्ट से पीड़ित हो रहा है, तो निश्चय ही यह उस बालक के पूर्व जन्म में किये हुए दुष्कर्म का परिणाम है। इस पर यदि आप यह प्रश्न करें कि वह व्यक्ति अपने गत जीवन में पाप कर्म करने के लिए कैसे प्रवृत्त हुआ, तो उसका उत्तर यह है कि यह उससे पूर्व के जन्म में किये हुए दुष्कर्मों का परिणाम है और इस भाँति यह कर्म निरन्तर आगे बढ़ता जाता है।

बहुत से बुद्धिशाली व्यक्तियों के मूर्ख पुत्र होते हुए पाये जाते हैं। पूर्व-जन्म में जब आप क्षुधा से मृतप्राय हो रहे हों, उस समय यदि भेड़ों के एक चरवाहे ने आपको अन्न-जल दिया हो, तो वह चरवाहा आपकी सम्पत्ति का उपभोग करने के लिए इस जीवन में अपनी अल्प बुद्धि के साथ ही आपके पुत्र के रूप में आपके यहाँ जन्म ग्रहण करेगा।

प्राणी जब जन्म लेता है, तब तुरन्त ही उसे अपनी माँ के स्तन-पान की इच्छा जाग्रत हो जाती है तथा उसमें भय का सहज ज्ञान भी दिखायी देता है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे अपने पूर्व-जन्म में अनुभव किये हुए कष्ट की तथा माँ के स्तन-पान करने की क्रिया का स्मरण होता है। इससे यह प्रकट होता है 'पुनर्जन्म है।'

एक नन्हें से बालक में भी हर्ष, शोक, भय, क्रोध, सुख, दुःख आदि वृत्तियाँ देखी जाती हैं। इसका कारण उसके वर्तमान जीवन के धर्म-अधर्म के संस्कार नहीं हो सकते। इससे हम सहज ही यह परिणाम निकाल सकते हैं कि जीव पूर्व-स्थान में विद्यमान था और यह भी कि वह अनादि है। यदि आप जीव को अनादि स्वीकार नहीं करते, तो उस अवस्था में दो दोष उपस्थित होंगे-एक तो कृतनाश-दोष और दूसरा अकृताभ्यागम-दोष । पूर्व-जन्म-कृत शुभ-अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप है जीव को सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वे कर्म यदि अपना फल दिये बिना ही समाप्त हो जायें, तो किये हुए कर्म (कृत) का नाश होगा। यह कृतनाश-दोष होगा। इसी भाँति जिन शुभ-अशुभ कर्मों को जीवात्मा ने पूर्व जन्म में किया ही नहीं, उनके फल-स्वरूप प्राप्त सुख-दुःख उसे भोगना पड़ेगा। यह अकृताभ्यागम-दोष है। इस दोनों से बचने के लिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जीव अनादि है।

योग के कितने ही साधक मुझसे यह प्रश्न करते हैं कि कुण्डलिनी जागरण के लिए योगी को कितने काल तक शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, कुम्भक, महामुद्रा आदि का अभ्यास करना चाहिए? योग के किसी भी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता। एक साधक अपने जीवन में साधना का प्रारम्भ वहाँ से करता है, जहाँ पर कि उसने अपने गत जीवन में उसे छोड़ा था। यही कारण है कि भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं- "हे कुरुनन्दन। उसका जन्म बुद्धिमान् योगियों के कुल में होता है। वहाँ वह अपने पूर्व-जन्म की बुद्धि के संस्कारों को प्राप्त करता है और उसके अनन्तर फिर योग-सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है" (गीता : ६-४२, ४३)। यह सब व्यक्ति की शुद्धि की मात्रा, विकास की दशा, नाड़ी-शुद्धि की मात्रा, प्राणायाम, वैराग्य की स्थिति तथा मोक्ष के लिए व्याकुलता पर निर्भर करता है।

कितने ही व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार के लिए आवश्यक शुद्धि तथा अन्य साधनों से सम्पन्न हो कर जन्म लेते हैं; क्योंकि उन्होंने अपने पूर्व-जीवन में ही आवश्यक अनुशासन का पालन किया होता है। वे जन्मजात सिद्ध होते हैं। गुरुनानक, अमालदी के ज्ञानदेव, बामदेव तथा अष्टावक्र ये जन्मजात सिद्ध होते हैं। होइल थे। गुरुनानक जी, जब एक बालक ही थे, तभी उन्होंने पाठशाला में अपने अध्यापक ॐ के महत्व के विषय में प्रश्न किया था। श्री वामदेव जी जब माँ के उदर में थे, तभी उन्होंने वेदान्त पर प्रवचन किया था।

मनुष्य फल-प्राप्ति की इच्छा से कर्म करता है और इस कारण वह नया जन्म लेता है, जिससे कि वह अपने कर्म के फल का उपभोग कर सके। उसके पश्चात् जन्म में वह कुछ और अधिक नये कर्म करता है और उसे उनके लिए पुनः दूसरा जन्म लेना पड़ता है। इस भाँति जन्म-मरण का यह संसार-चक्र अनादि काल से अनन्त काल तक चलता रहता है। जब मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाता है, तभी वह इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। कर्म अनादि है और इसी भाँति यह संसार भी अनादि है। मनुष्य जब कर्म-फल की आशा से मुक्त हो निष्काम भाव से कर्म करता है, तब उसके सभी कर्म-बन्धन शनैः शनैः ढीले पड़ जाते हैं।

जीने के लिए मर मिटिए। इस छोटे से अहं को विनष्ट कीजिए, इससे आप अमरत्व प्राप्त करेंगे। ब्रह्म में निवास कीजिए, इससे आप अजर-अमर बन जायेंगे। आत्मा को प्राप्त कीजिए, इससे आप शाश्वत जीवन प्राप्त करेंगे। आत्म-भाव को प्राप्त कीजिए, इससे आप संसार सागर का सन्तरण कर जायेंगे। अपने सच्चिदानन्द- स्वरूप में स्थित हों, इससे आपको चिरन्तन जीवन प्राप्त होगा।

एक जोंक घास के डण्ठल पर चलती है और उसके छोर पर जा पहुँचती है। अब यह पहले तो अपने शरीर के अगले भाग से दूसरे डण्ठल को पकड़ लेती है और - तब अपने पिछले अंग को खींच कर नये डण्ठल पर लाती है। ठीक इसी भाँति जीवात्मा भी मृत्यु के समय वर्तमान शरीर को त्याग कर अपनी भावनाओं द्वारा नये शरीर की रचना करता है और तब वह उसमें प्रवेश कर जाता है।

शुभ और अशुभ कर्म अपने शुभ-अशुभ फल तो अवश्य प्रदान करते हैं। महाभारत में आप देखेंगे, "जिस भाँति सहस्रों गायों के मध्य में बछड़ा अपनी माँ को ढूँढ़ लेता है, उसी भाँति पूर्व-जन्म-कृत कर्म अपने कर्ता का अनुसरण करते हैं।"

यादृशं क्रियते कर्म तादृशं भुज्यते फलम् ।
यादृशं वप्यते बीजं तादृशं प्राप्यते फलम् ।।

जिस प्रकार का बीज बोया जाता है, तदनुरूप ही फल प्राप्त होता है। इसी भाँति हमारे किये हुए कर्म का फल हमारे किये हुए कर्म के अनुरूप ही होता है। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। आम के वृक्ष का रोपण करने

वाला व्यक्ति कटहल के फल की आशा नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति ने आजीवन दुष्कर्म ही किया है, वह अपने अगले जीवन में सुख, शान्ति और समृद्धि की आशा नहीं रख सकता।

हमारे जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं, जब कि हम सब भूतकाल में कई बा इकट्ठे रहे और अलग हुए। भविष्य में भी ऐसे प्रसंग आते रहेंगे। जिस भाँति अन्न-राशि को एक अन्नागार से निकाल कर दूसरे अन्नागार में डालने पर उसका गठन और मिश्रण सदा नवीन रूप धारण करता है, ऐसी ही अवस्था इस जीव की संसार में है।

६. पुनर्जन्म-एक नितान्त सत्य (ख)

गीतामूर्ति के नाम से प्रसिद्ध सुश्री कमलेशकुमारी देवी ने अपने ढाई वर्ष की वय में गीता पर प्रवचन करना आरम्भ कर दिया था। सन् १९३९ के दिसम्बर मास की १२ तारीख को मंगलवार के दिन उसका जन्म हुआ था। जीवात्मा के आवागमन तथा जीव की अमरता का अभिलेख यद्यपि हमारे शास्त्रों में पाया जाता है, परन्तु वे हमारे व्यावहारिक जीवन में सुप्त एवं अव्यक्त से होते हैं।

वह अपने पिता की गोद में बैठ कर अपनी टूटी-फूटी तोतली भाषा में गीता के श्लोकों का उच्चारण करती थी। वह गीता की पुस्तक की ओर देखती भी रहती थी। जब वह ढाई वर्ष की हुई, तो एक दिन उसके पिता पण्डित देवीदत्त जी उसे अमृतसर के लोहगढ़ दरवाजे के बाहर स्थित एक बाग में ले गये। उन दिनों स्वामी कृष्णानन्द जी वहाँ पर गीता पर प्रवचन करते थे। स्वामी जी ने इलाहाबाद की एक अष्ट वर्षीया बालिका की कहानी सुनायी, जो गीता के श्लोकों का बहुत सुन्दर पाठ करती थी। इसे सुनते ही कमलेशकुमारी कुछ उत्साहित हुई और उसने स्वामी जी तथा श्रोताओं से गीता पर अपना प्रवचन सुनने का आग्रह किया। उसने उस दिन अपना प्रथम भाषण दिया, जिसका वहाँ पर उपस्थित जनता पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव पड़ा।

स्वामी कृष्णानन्द जी ने उसे हिन्दू-धर्म की कुछ पुस्तकें भेंट कीं। उसने उन पुस्तकों के कुछ अंश को धारावाहिक रूप से पढ़ कर स्वामी जी को आश्चर्य में डाल दिया। इस घटना के अनन्तर उस बालिका ने हरिद्वार, लुधियाना, जंडियाला, गुरु हरसहाय मण्डी, मुकेरियाँ, धर्मकोट, गुजराँवाला तथा अन्य स्थानों पर प्रवचन किया।

एक दूसरी बालिका महेन्द्रा कुमारी हुई। उसका एक दूसरा नाम चाँदरानी भी था। उसकी मृत्यु १५-१०-१९३९ को वर्मा के टाँगु शहर में हुई और मई १९४९ में उसने पुनः जन्म लिया। जब वह साढ़े तीन वर्ष की हुई, तब वह अपने इस जन्म की माता पर अपने पहले जीवन के माता-पिता के घर ले चलने के लिए जोर देने लगी। वह बार-बार अपनी माँ से आग्रह करती और उससे नित्य-प्रति ही अपने असली घर जाने और वास्तविक भाभी से मिलने के लिए अपने साथ चलने की याचना करती। यह ठीक ही कहा है कि हठ की विजय होती है और इस प्रसंग में तो यह पूर्ण रूप से सच सिद्ध हुआ । अन्त में माँ ने स्वीकार कर लिया। बालिका मार्ग दिखाते हुए आगे थी और माँ पीछे । दोनों एक अज्ञात स्थान की ओर चल पड़े। उस बालिका ने अपनी माँ को अमृतसर के मुश्की मुहल्ले से ले जा कर विभिन्न गलियों और अन्धकारपूर्ण मोड़ों से होते हुए कूचा बेरीवाला मुहल्ले के अन्त में एक घर के सामने खड़ा कर दिया और कहने लगी-"यही मेरा घर है।" दरवाजा खटखटाने की आवाज सुन कर जब उस बालिका के पूर्व-जन्म की भाभी साथ वाले घर से आ गयी, तब उस बालिका ने अपनी जहाई (भाभी) को पहचान लिया और उसका आलिंगन करते हुए उसके पैरों से चिपट गयी। उसने उसके बीस वर्षीय पुत्र शिव को, सगे-सम्बन्धियों को तथा घर की अन्य वस्तुओं को पहचान लिया। उसने अपने स्वर्ण-हार तथा मृत शरीर का फोटो भी पहचाना और बतलाया कि चित्र में वह ही सोयी हुई है। मृत्यु के समय उसके मन में अपने भाई सरदार सुन्दर सिंह तथा उनकी पत्नी से मिलने की तीव्र वासना थी। वे उस समय वहाँ उपस्थित न थे। वर्मा में शरीर त्याग करते समय

की इस दृढ़ वासना के कारण ही कदाचित् उस बालिका को अपने भाई और भाभी से मिलने के लिए अमृतसर में पुनः जन्म लेना पड़ा।

बड़ौदा का एक जैन बालक (स्टेट्समैन ५-९-३७) -बड़ौदा के एक छह वर्षीय जैन बालक ने अपने पूर्व-जीवन की कितनी ही घटनाओं को सुना कर अपनी माता को आश्चर्यचकित कर दिया। उसने बताया कि वह पूर्व-जन्म में अपने माता-पिता के पास पाटन में रहता था। उसके माता-पिता पाटन नगर के निवासी थे। उस समय उसका नाम केवलचन्द्र था और वह पूना में कपड़े की दुकान करता था। पाटन के कितने ही व्यापारियों के साथ उसका व्यावसायिक सम्बन्ध था। उसके छह पुत्र थे, जिनमें से एक का नाम रमणलाल था। जब वह बालक और उसकी माता पाटन गये, तब ये सभी बातें ठीक प्रमाणित हुई।

गुरुनानक देव ने गुरुग्रन्थसाहब में पुनर्जन्म के इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। यही नहीं, यूनान के दो प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता सुकरात और प्लेटो (अफलातून) भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करते थे। इनका जन्म आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व हुआ था।

"अपने जन्म लेने से पूर्व जो बातें हम सीखे होते हैं, उनकी स्मृति ही हमारा यह वर्तमान ज्ञान है" (प्लेटो का स्मृतिज्ञान का सिद्धान्त)।

"जब हम जन्म लेते हैं, उससे पूर्व ही हमें सम्पूर्ण विषयों का अपना ज्ञान प्रार हुआ होता है।" "मानवी आकृति में आने से पूर्व हमारी जीवात्माएँ हमारे इस शरीर से अलग अपना अस्तित्व रखती हैं। उनमें ज्ञान भी होता है" (सुकरात का दर्शन)।

यह शरीर जीवात्मा के अलग होने पर मर जाता है; परन्तु जीवात्मा स्वयं नहीं मरता। इस विषय में हमें यह ज्ञात है कि यदि एक व्यक्ति किसी काम को अधूरा है छोड़ कर सो जाता है और जब वह जागता है, तब वह स्मरण करता है कि अमुक काम को उसने अधूरा ही छोड़ दिया था। इसी भाँति हम यह भी देखते हैं कि प्राणी जबा जन्म लेता है, तब जन्म लेने के साथ ही उसे अपनी माँ के स्तन-पान की इच्छा जाग्रत होती है और उसमें भय की भावना भी पायी जाती है। इससे सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे पूर्व-जन्म में अनुभूत किये हुए कष्टों की तथा माँ के स्तन-पान करने की क्रिया की स्मृति होती है।

७. निम्न-योनियों में फिर से जन्म

ऐसा देखने में आया है कि अधिकांश जीवात्माओं को निम्न-योनियों में जन्म लेना साधारणतया रुचिकर नहीं। इसका मुख्य कारण यह है कि अपने गत मानव-जीवन में वे अपने शरीर से बहुत से शुभ कर्म किये होते हैं। कोई भी मानव शैतान का पूरा-पूरा अवतार नहीं होता। कुछ विशेष प्रकार के शुभ गुण तथा कर्म जो कि वास्तव में शुभ गुणों के परिणाम होते हैं, सारे दुर्गुणों और दुष्कर्मों से ऊपर उठ जाते हैं और इस भाँति मानव-प्राणी जीवात्मा के भावी विकास के लिए अपनी ही जाति में से किसी एक ऊँच अथवा नीच जीवन में प्रवेश करता है।

एक मानवजात आत्मा को गीदड़ अथवा शूकर जैसी निम्न-योनि में जन्म लेना पड़े, ऐसे उदाहरण बहुत ही कम देखने में आते हैं। इस स्थूल जगत् में ही हम देखते हैं कि एक मनुष्य की हत्या करने वाले खूनी व्यक्ति को फाँसी के तख्ते पर ले जाने तक की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में भी हम धर्म-शास्त्रों में लिखी हुई बातो

की सत्यता का निषेध नहीं कर सकते हैं, यद्यपि यह हो सकता है कि उनमें से कुठेक रूपक हों और उनके लिखने का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को बुरे कर्म से अच्छे कर्म वी ओर मोड़ना रहा हो।

प्रत्येक जीवात्मा का भावी जन्म उसके भूतकाल के कर्मों का ही परिणाम होता है और इसके निर्णय में कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण काम करते हैं। यह कार्य-कारण का नियम, घात-प्रति-घात का नियम कर्म के विषय में भी लागू होता है। सामान्य रीति से मनुष्य का विकास ऊपर की ओर होता है। प्राणी को उसकी विकास-कक्षा से अधिकाधिक ऊपर की ओर ले जाना विकास का स्वभाव ही है। यह प्राकृतिक जीव-शास्त्र का नियम है; परन्तु इसके कुछ अपवाद भी पाये जाते हैं। यदि एक व्यक्ति में आसुरी गुण हैं और वह बहुत ही क्रूर कर्म करता है, यदि वह कुत्ते, - गधे अथवा बन्दर जैसा बरताव करता है, तो वह अपने भावी जीवन में निश्चय ही मनुष्य-जन्म का अधिकारी नहीं होगा। वह पशु-योनियों में जन्म लेगा। परन्तु ऐसी बातें वास्तव में बहुत ही कम होती हैं।

यदि मनुष्य घोर पाप करता है, तो उसके इस मनुष्य-शरीर में रहते हुए ही उसे अधिक-से-अधिक दण्ड दिया जा सकता है। इसके लिए मनुष्य को पशु-योनि में जन्म लेना आवश्यक नहीं है। मनुष्य जब अपने मानव शरीर में रहता है, तब वह अपने किये हुए पापों के कारण जितना दुःख अनुभव करता है, उतना दुःख वह पशु-योनि में जन्म लेने से नहीं अनुभव करता है। कुष्ठ, क्षय, गरमी, सुजाक आदि रोगों से मनुष्य को जो पीड़ा होती है, वह वर्णनातीत है।

यह नियम कितनी कठोर रीति से काम करता है, इसे निम्नांकित घटना बहुत ही प्रभावकारी ढंग से उपस्थित करती है। यह घटना असामान्य होने के साथ-साथ बहुत रोचक भी है। बेंडा के कविराज (वैद्य) महेन्द्रनाथ सेन के यहाँ १८ अथवा १९ वर्ष के तारक नाम के एक कम्पाउण्डर थे। उनके इतना जोरों से उदर-शूल उठता था कि उससे वे अचेत हो जाते थे। एक दिन श्रीविद्या के परम्परागत उपासक एक ब्राह्मण ने करुणाभिभूत को तारक के भाल में सिन्दूर का टीका लगाया और मन्त्र पढ़ कर उसने काली माँ से प्रार्थना की तथा प्रश्न किया- "माँ, यह तारक इतना कष्ट क्यों भोग रहा है?"

तारक ने अचेतावस्था में ही गरज कर कहा- "मैं काली माँ का एक अंश हूँ। क्या मैं तारक को दण्ड न दूँ। इस तारक ने अपने पिछले जीवन में अपनी माता का अपमान किया था। इसकी माता ने भी तारक के पिता को, जो कि उसका अपना ही पति था, पैरों से ठुकराया था। इस भाँति माँ और पुत्र दोनों को सात जन्म तक दण्ड भोगना पड़ेगा, जिसमें तारक को तो भयंकर उदर-शूल का कष्ट होगा और उसकी माँ विवाह के चौदह दिन के पश्चात् विधवा हो जायेगी। ये दोनों अब तक चार जन्म का कष्ट भोग चुके हैं और तीन जन्मों का कष्ट भोगना अभी शेष है।"

दयालु ब्राह्मण ने प्रश्न किया-"माँ, उसके उद्धार का क्या कोई उपाय नहीं है?"
तारक ने अचेतावस्था में उत्तर दिया "तारक को अपनी माँ का पादोदक और उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना चाहिए। इस भाँति यदि इसकी माँ इसे औषधि प्रदान करे, तो यह इस जन्म में ही स्वस्थ हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।"

यह पूछने पर कि तारक की माँ कहाँ है, तारक ने अचेतावस्था में ही उत्तर दिया-"गोपाल सेन की विधवा पत्नी तारक की माँ है।"

इसके अनन्तर तारक को चेतना प्राप्त हुई। ब्राह्मण से सब बातें सुनीं और उसके आदेश का पालन किया। तारक की पूर्व-जन्म की माता ने उसे ताम्बूल का एक टुकड़ा दिया, जिसे तारक ने ताबीज में रख कर पहन लिया। इससे तारक तुरन्त ही ठीक हो गया।

दूसरे दिन वही रोग फिर वापस आ गया, परन्तु तारक की माँ ने जब उसके ऊपर अपना पादोदक छिड़का, तो वह ठीक हो गया। बाद में यह पता चला कि तारक ने किसी रजस्वला स्त्री के हाथ से जल ग्रहण किया था और उसके कारण ही उसके ताबीज की शक्ति जाती रही थी।

इस जगत् के कटु एवं कष्टप्रद अनुभवों से मनुष्य बहुत से पाठ सीख सकता है। मनुष्य कितना ही पापी, कठोर तथा पाशविक क्यों न हो; परन्तु वह दुःख, पीड़ा और शोक से, संकटों, कठिनाइयों और रोगों से, सम्पत्ति-नाश, निर्धनता तथा प्रियजनों की मृत्यु से अपने को सुधारता और प्रशिक्षित करता है।

परमेश्वर पापी को रहस्यपूर्ण ढंग से सुधारते और ढालते हैं। दुःख और पीड़ शिक्षा प्रदान करने वाली शक्ति के रूप में उपयोगी काम करते हैं। वे बुरे कर्म करने बालों की आँखें खोलने का काम करते हैं। वे उन्हें पतन से बचाते हैं और उन्नत करते हैं। इससे पापी लोग सत्कर्म करने में लग जाते हैं और सत्संग का आश्रय लेते हैं।

कितने ही लोगों की ऐसी मान्यता है कि मनुष्य की आत्मा पशु-योनि में फिर कभी भी अवतरित नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि मानव-योनि में प्रकट हुआ व्यक्तित्व पशु-शरीर में नहीं समा सकता। वह शरीर उसके लिए सर्वथा अपूर्ण एवं अशक्त होता है। पशु-योनि का शरीर अपेक्षाकृत कठोर, विषम तथा अपूर्ण होता है, अत: मनुष्य के उच्चतर सिद्धान्तों को न तो उसमें प्रश्रय मिल सकता है और न उनकी अभिव्यक्ति ही वहाँ हो सकती है। प्राणी का स्थूल शरीर उसके सूक्ष्म शरीर का एक प्रकार से कोश होता है, अत: उसके सूक्ष्म एवं कारण शरीरों के आकार और गठन उसके स्थूल शरीर के समान ही होते हैं। इस कारण मानव-आत्मा को सदा मानव शरीर में ही रहना चाहिए। मानव-जीवात्मा की आवश्यकता, माँग तथा आशा के अनुरूप ही उसके शरीर का निर्माण होना चाहिए। उसे विचार और ज्ञान के साधनों से सम्पन्न होना चाहिए जो कि मानव-जीवात्मा के लिए आवश्यक है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य का स्थूल शरीर उसके सूक्ष्म एवं कारण शरीर के साँचे में ढालना चाहिए, क्योंकि साधारणतया इनसे ही उसके स्थूल शरीर की रूपरेखा का निर्माण होता है। इससे यह प्रकट होता है कि मानव-आत्मा मानव शरीर में ही अवतरित हो सकती है, अन्य शरीर में नहीं। प्राचीन शास्त्रकारों के ये सब कथन रूपक मात्र हैं कि क्रूर मनुष्य दूसरे जन्म में भेड़िया होता है, लोभी मनुष्य विषैला नाग होता है, कामी पुरुष कुतिया बनता है, इत्यादि । शास्त्रकार जब ऐसा कहते हैं कि क्रूर मनुष्य भेड़िये के रूप में जन्म लेता है, तब उनके ऐसा कहने का तात्पर्य यह होता है कि वे भेड़िये की तरह क्रूर एवं हिंसक व्यक्ति बनेंगे। इसी भाँति दूसरे कथनों का भी यही तात्पर्य समझना चाहिए।

दूसरे लोगों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने को नीचे की ओर ले जाना चाहता है, इतना ही नहीं वरन् वह नीच पाशविक जीवन-यापन करने का भी यथासम्भव प्रयास करता है। वह अपने अन्तःकरण से सभी उच्चतर एवं श्रेष्ठ संस्कारों को निकाल फेंकने का प्रयत्न करता है और यदि वह वास्तव में अपने को बन्दर जैसा बनाने में सफल हो जाता है, यदि वह अपनी वासनाओं को पशुओं जैसी निम्न-वासनाओं का रूप देने में कृतकार्य हो जाता है, यदि वह अपने को पशु के समान बना डालता है, तो यह निश्चित है कि वह मनुष्य दूसरे जन्म में बन्दर की जाति में जन्म लेगा। परन्तु मनुष्य के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं, क्योंकि उसमें कुछ दूसरी शक्तियाँ भी होती हैं, जो उसे ऐसा करने से रोकती तथा पकड़े रखती हैं। मनुष्य की ये शक्तियाँ वे ही हैं जिन्हें हम शोक, संकट, कष्ट इत्यादि नाम से पुकारते हैं। मनुष्य को किसी भी प्रकार के पतन से बचाने में ये विश्वसनीय साधन हैं। इनके हाथों में

मानव-जाति की प्रगति निश्चित रहती है, क्योंकि वे उसे अधम योनियों में नहीं पड़ने देतीं। विकास साधक-जीवन की प्रगति है और इस प्रगति को बनाये ही रखना चाहिए

और इस भाँति निरन्तर संघर्ष एवं अविराम युद्ध मानव-जाति के लिए आवश्यक है। मानव-जन्म शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम है। जब शुभ कर्म अशुभ कर्मों से बढ़ जाते हैं, तब वह मनुष्य देव, यक्ष, गन्धर्व आदि श्रेष्ठ योनियों में जन्म लेता है और जब अशुभ कर्म शुभ कर्मों से बढ़ जाते हैं, तब वह पशु, राक्षस आदि नीच योनियों में जन्म लेता है, वह अधम योनि में पड़ जाता है। परन्तु जब उसके शुभ और अशुभ कर्म समान होते हैं। तब वह मानव-जाति में जन्म लेता है। मनुष्य पुण्य-कर्म द्वारा स्वर्गलोक को, पाप-कर्म द्वारा नरकलोक को और मिश्र-कर्म द्वारा मर्त्यलोक को प्राम करता है।

जिस शरीर में जीवात्मा निवास कर रहा होता है, चाहे वह शरीर मनुष्य का हो अथवा पशु का, वह उसी में आसक्त हो जाता है। यह प्रकृति का नियम है। एक चींटी को अपना शरीर उतना ही प्रिय होता है जितना कि हाथी को उसका हाथी का शरीर अथवा मनुष्य को उसका मनुष्य-शरीर प्रिय होता है। शरीर के प्रति इस प्रकार की अद्‌भुत आसक्ति ही जन्म-मरण के चक्र के प्रवाह को सतत बनाये रखती है। एक प्राणी अपने किसी जन्म-विशेष में जिस प्रकार का शरीर ग्रहण करता है, वह उसे ही सब जन्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है, मनुष्य को मानव-जीवन रुचिकर है। हाथी अपने हाथी-रूप में जन्म लेने से प्रसन्न है। यही दशा अन्य प्राणियों की भी है; परन्तु ऐसी अवस्था में भी प्रत्येक प्राणी अपने विकास-साधन की तथा विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति की आकांक्षा रखता है। सृष्टिजात सभी प्राणियों में यह नियम सामान्य रूप से पाया जाता है।

अन्य योनियों में जन्म लेने की अपेक्षा मानव जाति में जन्म लेना श्रेयस्कर है, क्योंकि इसमें प्राणी को बुद्धि तथा विवेक प्राप्त रहते हैं। वह अपने-आपको जानता है और साथ ही दूसरों को भी जानता है। इसके अतिरिक्त उसमें प्रेम, विश्वास, लज्जा, शील, अहिंसा आदि सद्‌गुण प्राप्त रहते हैं। पशु-योनि में बुद्धि, स्मृति और ज्ञान नहीं होते, अतः उसमें जन्म लेना वांछनीय नहीं।

विवेक, आत्मज्ञान, स्थूल शरीर और आत्मा के भेद का ज्ञान तथा अपने सहवासियों के प्रति प्रेम और विश्वास आदि उत्तम गुणों से जो व्यक्ति सम्पन्न नहीं है, उस मनुष्य का जीवन तो पशु-जीवन के ही समान है।

अज्ञानी मनुष्य के जब तक ज्ञान-चक्षु उन्मीलित नहीं हो जाते तथा जब तक वह उन्नत पथ पर ले जाने वाले किसी गुरु के सम्पर्क में नहीं आता, तब तक वह इस संसार-सागर में डूबता रहता है तथा उसे अनेक माताओं के उदर में जन्म लेना पड़ता है। अज्ञानी संसारी जीव कुत्ता, साँप, भेड़िया अथवा सिंह की योनि में जन्म लेता है।

इसके लिए कोई विशिष्ट नियम नहीं है। इस विषय में शास्त्रों के कथन सर्वथा सत्य हैं। शास्त्रों की इन उक्तियों को केवल रूपक अथवा अलंकारिक मानना बहुत बड़ी भूल है।

जिस आध्यात्मिक साधक ने दिव्य जीवन यापन प्रारम्भ कर दिया है, उसे निम्न-योनि में जन्म लेने का कोई भय नहीं रहता । एक योगी योगाभ्यास करते हुए यदि लक्ष्य से च्युत भी हो जाये, तो भी वह नष्ट नहीं होता। वह अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल वातावरण में जन्म लेता और अपने आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में आप देखेंगे- "हे पार्थ, उस (योग-भ्रष्ट व्यक्ति) का न तो इस लोक में और न ही परलोक में विनाश होता है। हे तात! शुभ कर्म करने वाला कोई भी व्यक्ति कभी भी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता। पुण्य-कर्म करने वाले जिन लोकों को जाते हैं, उन्हें योग-भ्रष्ट प्राप्त करता है और वहाँ अनन्त काल तक निवास करके या तो शुभ आचरण करने वाले धनी लोगों के घर जन्म लेता है अथवा उसका जन्म बुद्धिमान् योगियों के कुल में होता है" (गीता : ६-४०, ४१ और ४२) ।

भगवान् ऋषभदेव के पुत्र राजा जड़भरत ने अपने राज्य को तिलांजलि दे तपस्वी-जीवन वरण किया। एक दिन उन्होंने उस वन में एक मातृ-पितृ-हीन मृग-शावक को देखा। उन्हें उस निरीह प्राणी पर दया आयी। कालान्तर में तो वे उस मृग-शिशु से इतना उत्कट प्रेम करने लगे कि उनका सारा ध्यान उस मृग की ओर ही लगा रहता और परमात्म-विषयक उनकी वृत्ति शनैः-शनैः क्षीण हो चली। मरण-काल उपस्थित होने पर उन्हें इस नन्हें मृग का विचार बहुत ही उद्विग्न बनाता रहा और उसके परिणाम-स्वरूप उन्हें मृग की योनि में जन्म लेना पड़ा ।

राजा जड्भरत वेद, पुराण और सभी शास्त्रों में पारंगत थे। उन्होंने उग्र तपस्या की थी और भगवान् वासुदेव के चरणों का वे ध्यान भी करते रहे थे; परन्तु मृग- शावक में उनकी आसक्ति होने के कारण उन्हें मृग-योनि में जन्म लेना पड़ा। अब भरत की आँखें खुल गयीं और उन्हें अपनी भूल का पता चला। उस मृग-शरीर में उन्हें राजा भरत के रूप में अपने गत जीवन की सभी बातें स्मरण हो आयीं। वे मृग-रूप में रहते हुए भी भगवान् का निरन्तर ध्यान करने लगे। वे स्वल्प आहार लेते और अपनी जाति के दूसरे मृगों से बहुत ही कम मिलते-जुलते। वास्तव में तो वे उस निम्न योनि से मुक्ति पाने की आशा लगाये अपनी आयु के दिन गिन रहे थे। भरत ने अपने मृग-शरीर को त्याग कर पुनः एक ब्राह्मण के शरीर में जन्म लिया। जड़भरत अब यथेष्ट बुद्धिमान् हो चुके थे, अतः उन्होंने उस भूल को दोहराया नहीं। वे बचपन से ही संसार से अलग रहने लगे । उनका मन राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त था। इस भाँति वे माया के पंजों से बच निकले और मर्त्य शरीर का परित्याग कर परमात्मा में विलीन हो गये।

गजेन्द्र को यद्यपि हाथी की योनि में जन्म लेना पड़ा था; परन्तु उसने अपने वास्तविक स्वरूप को कभी भी विस्मृत नहीं होने दिया। वह भगवान् हरि का सदा ही ध्यान करता रहता था और इसके द्वारा उसने अपने उस हाथी के जीवन में ही मोक्ष प्राप्म कर लिया। हमारे शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरणों का उल्लेख है जिसमें कि पशु और पक्षियों की योनि में भी मुक्ति मिली थी। वृत्रासुर एक महान् राक्षस था। वह वासुदेव का परम भक्त हुआ। वह अपने पूर्व जीवन में चित्रकेतु नाम का राजा था। उमा देवी के शाप से उसे राक्षस बनना पड़ा।

पूर्वोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एक सच्चे एवं निष्कपट साधक के लिए पतन की आशंका नहीं रहती है। भागवत जन पूर्ण निर्भय एवं निष्काम होते हैं। वे ऐसी किसी भी योनि में जन्म ग्रहण करने को तैयार रहते हैं, जिसमें कि भगवान् का भजन हो सके।

भगवान् की परा भक्ति ही वास्तव में अभ्यर्थनीय है। इसकी प्राप्ति हो जाने पर, मनुष्य को कैसे भी जीवन में अथवा कैसी भी परिस्थिति में क्यों न रहना पड़े, वह सुखी रहता है। उसे ऐसी अवस्था में एक प्रकार के अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है, जिससे वह संसार के अति-व्यथाप्रद कष्टों को सहन कर सकता है।

पुरातन ऋषियों में दुष्टों को शापित करने और साधु जनों को आशीर्वाद देने की शक्ति होती थी। देवर्षि नारद के शाप से कुवेर-पुत्रों को यमलार्जुन वृक्ष बनना पड़ा था । ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को पाषण-शिला बनने का शाप दिया। शाप देने में उनका प्रयोजन न तो स्वार्थ-भावना होती है और न ही वे क्रोध के वशीभूत हो ऐसा करते हैं, वरन् वे तो श्री भगवान् के चरणारविन्द से विमुख हो कर भटक रहे प्राणियों पर दया कर उनके कल्याण-साधन के लिए ही ऐसा करते हैं। अतः सन्तों का सम्पर्क मनुष्य के भाग्य को पलटने में बहुत ही लाभकर है।

ऋषि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों के ज्ञाता-त्रिकालज्ञानी थे; अतः उन्हें कर्म की रहस्यमयी गति का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया था और उस आत्मज्ञान की शक्ति से अन्य सभी बातें भी उन्हें विदित थीं।

हमें किस प्रकार का शरीर प्राप्त है, इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है; परन्तु यह बात अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है कि हमारे विचार कैसे हैं। एक उच्च श्रेणी के व्यक्ति में भी पाशविक विचार हो सकते हैं। काम एवं क्रोध से अभिभूत होने पर तो मनुष्य मनुष्य न रह कर पशु से भी निकृष्टतर बन जाता है। जिनमें विवेक-शक्ति नहीं है, जो क्षुद्र विषय-भोगों में ही रत रहते हैं तथा जो साधारण-सी बातों में अपने मन का संयम खो बैठते हैं, ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा तो पशु-योनि में उत्पन्न एक गाय सहस्रगुना श्रेष्ठ है।

आप इस विषय की चिन्ता न करें कि भविष्य में आप कैसा जन्म ग्रहण करेंगे। वर्तमान जीवन का सदुपयोग कर अपने को जन्म-मरण से मुक्त बना लें। भगवद्भक्ति को विकसित करें, क्षुद्र एषणाओं का परित्याग करें। परोपकार के लिए सदा प्रयत्नशील रहें। दयालु बनें और सुकर्म करें।

भगवान् हरि त्रिलोकी के रक्षक हैं। सृष्टि के प्रत्येक प्राणी को अपने अमर धाम तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व उन भगवान् पर ही है। वे आपको जिस किसी भी पथ से ले जाना चाहें, उसी पथ से ले जाने दीजिए। मनुष्य, पशु अथवा राक्षस-जिस किसी भी योनि में वे आपको मुक्त करना चाहें, मुक्त करने दीजिए। अपने मन को सदा उन पर केन्द्रित रखिए और अपने भ्रमर-रूपी मन को उनके पाद-पद्मों में लीन कर दीजिए। उनके चरण-कमलों से निःसृत मकरन्द-सुधा का पान कीजिए। एक बालक की भाँति सरल भाव से उन्हें आत्मार्पण कीजिए।

जिसके कारण प्राणी को अनेकानेक योनियों में अगणित जन्म ग्रहण करने पड़ते हैं, ऐसे सतत गतिशील कर्म-चक्र से आप सब मुक्त बनें और इसी जीवन में अमरात्मा के सुख का उपभोग करें!

८. बालक की क्रमिक वृद्धि

छान्दोग्योपनिषद् की विद्या में पुण्यशाली जीवों की उत्क्रान्ति का विचार किया गया है। वहाँ यह बतलाया गया है कि जीवात्मा इस लोक से चन्द्रलोक को जाता है। वहाँ से वापस होते हुए वह पर्जन्यलोक को जाता है। वहाँ से वृष्टि द्वारा इस लोक में आता है। वृष्टि से वह जीवात्मा अन्न में और अन्न से पुरुष के वीर्य में जाता है। इसके बाद वह सिंचन-क्रिया द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। इस भाँति देवता गण जीवात्मा की इन पंचाग्नियों में आहुति देते हैं और तब वह पुरुष बनता है।

इस प्रकार चन्द्रलोक से प्रत्यावर्तन करता हुआ अनशयी जीव अभ्र के साथ मिल कर पृथ्वी पर आता है। वहाँ अन्नादि पदार्थों में उसे दीर्घ काल तक ठहरना पड़ता है।

वहाँ वह चार प्रकार का भोजन भक्ष्य, पेय, लेह्य तथा चोश्य बनता है। मनुष्य जब उसको खाता है, तब वह वीर्य बनता है और ऋतुकाल आने पर पुरुष कर स्त्री-योनि में वीर्य-सेचन करता है, तब वह स्त्री के उदर में आता है।

माता के उदर में शुक्र-शोणित के संयोग से वह गर्भ दिवस में 'कलल' का जाता है। पाँच रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह बुदबुद बनता है। सात रात्रि में वह पिण्ड (मांसपेशी) का आकार ग्रहण करता है। एक पक्ष के अनन्तर वह पिण्ड रक्तपूर्ण बन जाता है और पच्चीस रात्रि के पश्चात् वह अंकुरित होने लगता है। पहले मास में उसमें कण्ठ, शिर, स्कन्ध, मेरुदण्ड तथा पेट बनता है। ये पाँचों एक के बाद एक क्रमिक रूप से ही बनते हैं। दूसरे मास में क्रमशः हाथ, पैर, पार्श्व, कटि-देश, अ तथा घुटनों का निर्माण होता है। तीसरे मास में शरीर की सन्धियाँ बनती हैं। चौथे माम में धीरे-धीरे उँगलियाँ तैयार होती हैं। पाँचवें मास में मुख, नासिका, नेत्र और श्रोत्र की रचना होती है। दाँतों की पंक्ति, नख तथा गोपनीय अंग भी पाँचवें मास में ही बनते हैं। छठे मास में कर्णरन्ध्र बनता है और उसी मास में मानव जाति में पुरुष-स्त्री-सम्बन्धी जननेन्द्रिय, गुदा और नाभि भी बनते हैं। सातवें मास में शरीर और

शिर में रोम एवं केश निकल आते हैं। आठवें मास में शरीर के सभी अंग अलग-अलग हो जाते हैं। इस भाँति स्त्री के गर्भाशय में गर्भ बढ़ता है। गर्भाशय में स्थित जीव को पाँचवें मास में सभी प्रकार की सूझ-बूझ आ जाती है।

नाभि-नाल के एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा गर्भस्थ जीव अपनी माता के खाये आहार के सूक्ष्म भाग से अपना पोषण करता है। वह अपने कर्म के प्रभाव से गर्भाशय में जीवित रहता है।

गर्भाशय में स्थित जीव अपने पूर्व-जन्मों को और उनमें किये हुए शुभाशुभ कमी को स्मरण कर जठराग्नि की ज्वाला से विदग्ध हो अधोलिखित प्रकार से सोचता है :

"अब तक मैंने नाना प्रकार की योनियों में सहस्रों जन्म लिये और लाखों स्त्री, पुत्र और सम्बन्धियों के साथ रह कर आनन्द लूटा ।

"कुटुम्ब के भरण-पोषण में अनुरक्त रह कर मैंने शुभाशुभ साधनों से धनोपर्पाजन किया। मैं अभागा हूँ कि मैंने स्वप्न में भी विष्णु भगवान् का स्मरण नहीं किया।

"अब मैं उन कर्मों का फल इस गर्भाशय में असह्य पीड़ा के रूप में भोग रहा है। कामनाओं से सन्तप्त हो तथा शरीर को ही सत्य मान कर मैंने वह सब-कुछ किया जो कि मुझे न करना चाहिए था और जो कार्य मेरे लिए हितकर था, उसे करने में में चूक गया।

"इस भाँति मैं अपने ही कमाँ के द्वारा विविध प्रकार से कष्ट भोग चुका । अब मैं भला इस नरकतुल्य गर्भाशय से कब बाहर निकलूँगा। इसके पश्चात् मैं भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना नहीं करूँगा।"

इस प्रकार के अनेक विचार करता हुआ तथा अपनी माँ के आन्तरिक अंगों की चपेट से पीड़ित हुआ वह वैसे ही बड़े कष्ट के साथ गर्भ से बाहर आता है जैसे पापी जीव नरक से बाहर निकलता है। जैसे कि विष्ठा से कीट बाहर आता है, वैसे ही वह बाहर आता है।

इस जीवन में आने के उपरान्त भी वह बाल्य, यौवन और जरा अवस्थाओं के कष्ट तथा दूसरे कष्ट भी सहन करता है।

षष्ठ प्रकरण

विभिन्न लोक

१. प्रेतलोक

जिस मनुष्य का मन निम्न कामनाओं तथा इन्द्रिय-सुख की तीव्र वासनाओं में आपूरित होता है तथा जो इस लोक में रह कर इन्द्रिय के विषय-भोगों में मग्न रहता है, ऐसा विषयी मनुष्य अपनी मृत्यु के अनन्तर प्रेतलोक में प्रवेश करता है। मृत्यु के पश्चात् वह जीवात्मा कुछ काल तक अचेतावस्था में, निद्रा की-सी दशा में रहता है। जब वह उस निद्रा से जागता है, तब अपने को प्रेतलोक में पहुँचा हुआ पाता है।

इस लोक में जीवात्मा के जगने के साथ ही उसकी कामनाएँ, वासनाएँ और तृष्णाएँ उसे बहुत ही व्यथित करने लगती हैं। वह खाना-पीना और स्त्री के साथ प्रसंग करना चाहता है; परन्तु उस लोक में प्राप्त हुए शरीर से अपनी उन वासनाओं को वह तृप्त नहीं कर सकता। वहाँ वह कारागार में पड़े हुए बन्दी की भाँति रखा जाता है और अपनी भोग-वासनाओं को तृप्त न कर सकने के कारण बहुत ही दुःखित तथा पीड़ित रहता है। इस दशा में उसकी इन्द्रियाँ भी बहुत शक्तिशाली होती हैं; परन्तु उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उस लोक में उसके पास साधन कहाँ ? इस भाँति उसे अकथनीय दुःख होता है; क्योंकि वह अपनी कामनाओं, वासनाओं और तृष्णाओं को तृप्त नहीं कर सकता है। वहाँ उसकी दशा ठीक एक क्षुधार्त प्राणी की-सी होती है।

इन वासनाओं का मूल केन्द्र मन के अन्दर है-स्थूल शरीर में नहीं। यह स्मृत शरीर तो मन और इन्द्रिय का एक उपकरण मात्र है, जिसके माध्यम से उन्हें तृप्ति प्राप्त होती है।

श्राद्ध-क्रिया के द्वारा आप प्रेतलोक में पीडित जीवात्मा को सहायता प्रदान कर सकते हैं। श्राद्ध-क्रिया जीवात्मा को कष्ट से मुक्ति प्रदान करती है और उसे वहाँ है स्वर्गलोक जाने में सहायता प्रदान करती है। उस अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्र बहुत ही शक्तिशाली स्पन्दनों का सृजन करते हैं। ये स्पन्दन जीवात्मा को बद्ध बनाये रखने वाले शरीर से टकरा कर उसे ध्वस्त कर डालते हैं।

अब तो आपने श्राद्ध-क्रिया के महत्त्व को समझ लिया होगा। जिन लोगों अज्ञान, कुसंस्कारजन्य बुद्धि-विकार, कुसंग अथवा कुशिक्षा-इनमें से जिस किसी भी कारण से श्राद्ध करना छोड़ दिया है, उन्हें चाहिए कि कम-से-कम अभी से श्राद्ध-क्रिया करना आरम्भ कर दें। जिस भाँति दयालु माँ अपनी सन्तति की सँभाल रखती है, वैसे ही ऋषि और शास्त्र आपकी सँभाल रखते हैं।

यदि आप प्रेतलोक में प्रवेश करना और वहाँ के कष्ट सहन करना नहीं चाहते, तो बुद्धिमान् बनना सीखिए। इन्द्रियों का दमन कीजिए। नियमित तथा अनुशासित जीवन-यापन करना सीखिए । इन्द्रियों को उपद्रवी न बनने दीजिए। अति-आहार का परित्याग कीजिए। 'शरीर ही सर्वस्व है' - इस दर्शन को न अपनाइए। मृत्यु-काल में काम और तृष्णा आपको व्यथित करेंगे। यदि आप आत्म-संयम का अभ्यास करते हैं, तो आनन्द के राज्य में प्रवेश करेंगे।

२. प्रेतों के अनुभव

महर्षि वसिष्ठ 'योगवासिष्ठ' में बतलाते हैं :
"प्रेत छह प्रकार के होते हैं-साधारण पापी, मध्यम पापी, महापापी, सामान्य धर्मात्मा, मध्यम धर्मात्मा और उत्तम धर्मात्मा ।

"इन महापातकी प्रेतों में से कई तो एक वर्ष-पर्यन्त घन-पाषाण के तुल्य मृत्यु की मूर्च्छा की जड़ता का अनुभव करते रहते हैं। चेतना प्राप्त होने पर वे अपनी वासनाओं द्वारा प्राप्त अक्षय नारकीय दुःखों को चिरकाल तक भोगने के लिए बाध्य-सा अनुभव करते हैं; तब वे सैकड़ों योनियों के भोग तब तक भोगते रहते हैं, जब तक कि वे इस भ्रान्त जगत् से मुक्त हो कर अपने अन्तःकरण में शान्ति नहीं प्राप्त कर लेते।

"इसी श्रेणी में कुछ दूसरे प्रकार के पापी होते हैं जो कि मरण-मूर्च्छा के समाप्त होते ही अपने अन्तःकरण में वृक्षादि स्थावर योनियों की जड़ता का अकथनीय दुःख अनुभव करने लगते हैं और फिर चिरकाल तक नरक की यातना भोग कर अपनी-अपनी वासना के अनुरूप भूतल पर नाना योनियों में जन्म लेते हैं।

"जो मध्यम पापी होते हैं, वे मृत्युकालिक मूर्च्छा के अनन्तर कुछ काल तक पाषाण-तुल्य जड़ता का अनुभव करते हैं। उन्हें जब चेतना प्राप्त होती है, तब वे कुछ काल के पश्चात् अथवा उसी क्षण खग, मृग, सर्पादि तिर्यक् योनियों को भोग कर इस संसार में सामान्य मानव-जीवन को प्राप्त होते हैं।

"जो साधारण पापी होते हैं, वे प्रायः मृत्यु-मूर्च्छा के तुरन्त बाद ही अपनी पूर्व-वासना के अनुसार सांसारिक जीवन को चालू रखने के लिए मानव-शरीर धार करते हैं। मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही उनकी पूर्व-स्मृति उदित हो उठती है। उनकी पूर्व-वासनाएँ और कल्पनाएँ उनके अनुभव-जगत् में स्वप्न-राज्य की भाँति एक नये संसार की सृष्टि करती हैं।

"जो महान् धर्मात्मा होते हैं, वे मरण-मूर्च्छा के दूर होते ही देवलोकों के सुख का उपभोग करते हैं। स्वर्गलोक में देव-शरीर से अपने पुण्यफल-भोग के अनन्तर से इस मृत्युलोक में धनी सत्पुरुषों के कुटुम्ब में जन्म लेते हैं।

"जो मध्यम पुण्यात्मा होते हैं, वे मृत्युजनित मूच्र्छा के पश्चात् ऐसा अनुभव करते हैं कि वायु उनके सूक्ष्म शरीर को लिये जा रहा है और फिर वे वृक्ष और वनस्पति-वर्ग की योनि में डाल दिये गये हैं। कुछ काल तक इस

अवस्था में रहने के पश्चात् वे आहार के रूप में मानव शरीर में प्रवेश करते हैं और वहाँ वीर्य का रूप धारण कर माताओं के गर्भाशय में प्रवेश कर जाते हैं।"

३. पितृलोक

यह लोक चन्द्रलोक के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहीं पर पितृ गण निवास करते हैं। यह स्वर्गलोक भी कहलाता है। जो यज्ञ करते हैं तथा जनता के लिए कूप-वाप खुदवाते, धर्मशाला बनवाते और उद्यान लगवाते हैं; जो सकाम भाव से इष्टापूर्त कर करते हैं, वे इस लोक में प्रवेश करते हैं। उन जीवात्माओं के सुकृत फल जब वह समाप्त हो जाते हैं, तब वे इस मानवलोक में पुनः वापस आ जाते हैं। भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं: "धूम, रात्रि, कृष्ण पक्ष, दक्षिणायन के छह मास-इस समय चर की किरणों के द्वारा योगी चन्द्रलोक को जाता है और वहाँ से पुनरावर्तन करता। (गीता : ८-२५) । अर्थात् वे पुण्यशाली जीवात्माएँ शरीर-त्याग करती है तब प्रधा तो धूम द्वारा प्रयाण करती हैं और धूम से रात्रि में, रात्रि से कृष्ण पक्ष में और कृष्ण पा से दक्षिणायन काल में हो कर पितृलोक में जाती हैं। यह मार्ग पितृयान कहलाता है।

पितृ गण के वंशज जब उनके लिए श्राद्ध-तर्पण करते हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं और संवत्सरी के दिन जब उनके वंशज श्राद्ध-क्रिया करते हैं, तब वे अपने वंशजों को आशीर्वाद देते हैं।

जीव इस चन्द्रलोक में देव-तुल्य सुन्दर दिव्य शरीर प्राप्त करते हैं। वे यहाँ अपने पितरों के साथ निवास करते और देव बन कर चिरकाल तक यहाँ के स्वर्गीय सुख का आनन्द लूटते हैं। तत्पश्चात् वे आकाश तथा मेघ के मार्ग से नीचे आते हैं और वर्षा के जल-बिन्दुओं द्वारा इस लोक में पहुँचते हैं। यहाँ के अन्न में प्रवेश कर किसी एक ऐसे पुरुष का आहार बनते हैं जो उन्हें नव-शरीर निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री प्रदान कर सके। जिन जीवों के पूर्वकृत कर्म बहुत ही भले होते हैं, वे अच्छे परिवार में जन्म लेते हैं।

पितरों का यह स्वर्ग, जिसे पितृलोक अथवा चन्द्रलोक कहते हैं, शाश्वत सत्य का सर्वोत्तम धाम नहीं है। यह एक दृश्यमान् जगत् है। उस लोक के निवासी कर्म के नियम से, कार्य-कारण के नियम से, घात-प्रति-घात के नियम से बँधे रहते हैं। भले ही वे वहाँ सहस्रों वर्ष निवास करें; परन्तु वहाँ का निवास अस्थाई ही होता है।

पितरों को ब्रह्मविद्या अथवा अमरात्मा का ज्ञान नहीं होता है। वे कामनाओं से बद्ध रहते हैं। उन्हें स्वयं ब्रह्मविद्या का ज्ञान नहीं होता है, अत: वे दूसरों को भी इस विद्या में शिक्षित नहीं कर सकते।

भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं :

"वेदत्रयी के ज्ञाता, सोमपान करने वाले तथा निष्पाप लोग यज्ञों द्वारा मेरा पूजन कर स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं। वे पवित्र देवलोक को प्राप्त कर स्वर्ग में उत्तम दिव्य भोगों को भोगते हैं" (गीता : ९-२०) ।

"वे उस विशाल स्वर्ग के सुख को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं। इस प्रकार वेदों में कहे हुए कर्मों का अनुष्ठान करने वाले कामना-परायण लोग आवागमन को प्राप्त होते हैं" (गीता : ९-२१) ।

"देवताओं की उपासना करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितृ-पूजक व्यक्ति पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों की पूजा करने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे उपासक मुझे ही प्राप्त होते हैं" (गीता : ९-२५) ।

ब्रह्मलोक में निवास करने वाले जीव भी पुनर्जन्म तथा आवागमन के नियमानुवर्ती हैं। केवल वही व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होता है और दृश्य जगत् का अतिक्रमण कर जाता है जिसने कि परम सत्य का ज्ञान प्राप्त कर, परमात्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्म के साथ एकत्वभाव प्राप्त कर लिया है।

४. स्वर्ग

स्वर्ग के विषय में हिन्दुओं की मान्यता ईसाइयों और मुसलमानों की मान्यता से भिन्न है। हिन्दुओं के लिए स्वर्ग वह स्थान है जहाँ जीवात्मा अपने पुण्य-कर्मों के फल भोगने के लिए जाता है। जब तक उसके सुकृतों के फल समाप्त नहीं हो जाते, तब तक वह वहाँ निवास करता है और उसके पश्चात् वह इस मर्त्यलोक को वापस आ जाता है। पुण्यशाली जीवात्माएँ स्वर्ग में दिव्य भोगों को भोगती और स्वर्गीय विमानों में विचरण करती हैं। इन्द्र इस स्वर्गलोक का अधिपति है। इस लोक में अनेक देव गण निवास करते हैं। उर्वशी, रम्भा आदि अप्सराएँ यहाँ नृत्य करती हैं और गन्धर्व गण गायन करते हैं। यहाँ किसी प्रकार के रोग-व्याधि का कष्ट नहीं, क्षुधा-तृष्णा की पीड़ा। नहीं। यहाँ के निवासियों के तेजस् शरीर होते हैं। वे दिव्य वस्त्राभरणों से अलंकृत होते हैं। स्वर्ग एक मानसिक लोक है। जीवात्मा यहाँ जिस भोग की कामना करता है, वह भोग-पदार्थ उसे तुरन्त मिल जाता है। स्वर्गलोक भूलोक की अपेक्षा अधिक सुखद है।

ईसाई, मुसलमान तथा पारसी लोगों के अनुसार स्वर्ग इन्द्रियों के सभी प्रकार का भोगप्रदायक स्थान है। जीवात्मा को 'अलसीरात' नामक सेतु पार करना पड़ता है। श्रद्धालु जीवात्माएँ, जिन्होंने सुकृत किया होता है, आकाश-स्थित स्वर्गलोक को प्राप्त होती हैं। मुसलमानों की मान्यता में स्वर्ग एक रमणीय उद्यान है और उसमें जल-स्रोत, निर्झर और सरिताएँ प्रवाहित हो रही हैं। इनमें जल, दूध, मधु तथा स्निग्ध हिना सदा बहता रहता है। यहाँ सुस्वादु फल उत्पन्न करने वाले सोने के वृक्ष होते हैं। यहाँ विशाल श्याम नेत्रों वाली मनोहर कुमारियाँ रहती हैं जिन्हें हरुल अयूँ कहते हैं। यहूदी और पारसियों की भी स्वर्ग के विषय में ऐसी ही धारणा है।

पारसी लोगों के स्वर्ग के नाम 'बहिस्त' और 'मिनू' हैं। अपने इहलौकिक जीवन में जिन्होंने पुण्यार्जन किया होता है, वे लोग देवदूत जामियत के रक्षण में यहाँ रहने वाली 'हूराने बहिस्त' के नाम से प्रसिद्ध स्वर्गिक अप्सराओं के साथ भोग-विलास करते हैं। उनके स्वर्ग का नाम गरोडेमन (फारसी-गरोत्मन) है, जिसका अर्थ है-सूक्तों का धाम। जिस भाँति हिन्दुओं के स्वर्ग में गन्धर्व गण गान करते हैं, उसी भाँति यहाँ देवदूत स्तोत्र-गान करते हैं।

यहूदी और पारसी लोग सात आसमान (स्वर्ग) को मानते हैं। एडेन का स्वर्ग मूल्यवान् हीरों से जटित है। एडेन के उद्यान और पारसियों के स्वर्ग के मध्य बहुत-कुछ समता है। एडेन के दो वृक्ष ज्ञान-तरु और जीवन-तरु श्वेत रोमा को उत्पन्न करने वाले गाओ-करेना और दुःख-रहित (अशोक) वृक्ष के अनुरूप हैं।

पारसी, ईसाई और मुसलमान मानते हैं कि स्वर्ग शाश्वत एवं नित्य है तथा वहाँ के निवासियों को सभी प्रकार के भोग-साधन बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा अथवा कष्ट के सदा उपलब्ध रहते हैं।

स्वर्ग भी ऐन्द्रिक सुख-भोग का एक स्थान है। हाँ, यह सच है कि स्वर्ग के भोग अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील, सूक्ष्म और संस्कृत होते हैं, फिर भी वे चिरस्थायी शान्ति अथवा सच्चा सुख प्रदान नहीं कर सकते हैं। वे इन्द्रियों की शक्ति को क्षीण करते हैं। विवेक-वैराग्य से सम्पन्न प्रबुद्ध जन तो स्वर्ग-सुख की कदापि आकांक्षा नहीं रखते। वे स्वर्ग में निवास करने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं करते। स्वर्ग में भी ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि पाये जाते हैं तथा देवताओं और असुरों का संग्राम तो छिड़ा ही रहता है। अतः सच्चे साधकों को स्वर्ग के प्रति सर्वदा उदासीन रह कर एकमात्र मोक्ष की ही उत्कट अभिलाषा करनी चाहिए।

अपनी व्यक्तिगत वासनाओं और कल्पनाओं के अनुरूप ही प्रत्येक मानव निज के स्वर्ग की रचना करता है। सुख भोग की यह कल्पना भी प्रत्येक व्यक्ति की अपनी ही होती है। ये सुख-भोग नित्य ही परिवर्तित होते रहते हैं। एक मद्यपी ऐसे स्वर्ग के स्वप्न देखता है जिसमें सुरावाही सरिताएँ हों; परन्तु एक संयमी शुद्धाचारी व्यक्ति के लिए ऐसा सुरा-प्लावित स्वर्ग बहुत ही हेय होगा। एक तरुण स्त्रैण व्यक्ति के स्वप्निल स्वर्ग में देवांगनाओं की, दिव्य विमान तथा ललित नृत्य एवं संगीत के आयोजन की परिकल्पना रहती है; परन्तु वही तरुण व्यक्ति जब वृद्ध हो जाता है, तब उसे स्त्री की इच्छा नहीं होती है। आपकी आवश्यकताएँ और वासनाएँ ही आपके स्वर्ग का सृजन करती हैं।

आत्मा में उपलब्ध सच्चे शाश्वत आनन्द का आपको कुछ भी पता नहीं है; क्योंकि आपका मन इन्द्रिय के विषय-भोगों में उलझ गया है और यही कारण है कि आप स्वर्ग की विचार-तरंगों से आलोड़ित रहते हैं। आत्मा के वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कीजिए, तदनन्तर आपको स्वर्ग-सुख-भोग की लालसा नहीं रह जायेगी। आत्मा तो आनन्द का सागर है। यह आनन्द-सागर, यह आनन्द-निर्झर आपके अन्तरतम में ही है। इन्द्रियों को अन्दर की ओर समेट लीजिए, अन्दर की ओर देखिए और अपने मन को आत्मा में लगाइए। इससे आपकी सभी प्रकार है। इन्द्रिय-वासनाएँ विगलित हो जायेंगी और आप आनन्द-सागर में निमग्न हो जायेंगे।

आप स्वर्ग में कितने काल तक निवास करेंगे-यह आपके किये हा पुण्य-कर्मी की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि आप चाहें तो आप स्वर्गाधिपति इर बन सकते हैं। इन्द्र एक पदवी है। पहले वाले इन्द्र वर्तमान कालीन इन्द्र नहीं है। असंख्य इन्द्र आये और चले गये।

क्लेश, शोक, निराशा, विफलता, सम्पत्तिनाश, रोग, प्रियजनों की मृत्यु इत्यादि सांसारिक परिस्थितियाँ मनुष्य को चारों ओर से घेर लेती हैं और उनसे मनुष्य जब क्लान्त-सा हो जाता है, तब वह एक ऐसे स्थान में जाने की सोचता है जहाँ पर दुःख और क्लेश का लेशमात्र भी न हो, जहाँ पर सदा सब प्रकार का सुख-ही-सुख विद्यमान हो, जहाँ वह अपने पितरों के साथ अविकल शरीर के साथ रह सके। इस भाँति वह मनुष्य स्वर्ग की रचना करता है। परन्तु देशकालावच्छिन्न इस सीमित जगत् में शाश्वत आनन्द भला कहाँ? इस शाश्वत आनन्द और अमरता को आप केवल अपनी अन्तरात्मा में ही पा सकते हैं।

आप यहाँ पर जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, स्वर्ग का जीवन भी बहुत कुछ वैसा ही है; हाँ, अन्तर केवल इतना ही है कि स्वर्ग में सुख की मात्रा किंचित् अधिक होती है। आपकी वहाँ की जिन्दगी भले ही अधिक सुख-सुविधामय हो; परन्तु वह शाश्वत आनन्दमय अविनाशी जीवन तो नहीं है। इसके अतिरिक्त आपके पुण्य-कमाँ के फल जब समाप्त हो जायेंगे, तब आपको पुनः इस लोक में आना ही पड़ेगा। स्वा शाश्वत धाम नहीं है। नाम-रूप-विशिष्ट सभी पदार्थों का विनाश अवश्यम्भावी है। आत्मा ही अमर एवं शाश्वत है और यही कारण है कि ऋषि और सत्यान्वेषी साधन स्वर्ग-सुख की कामना नहीं रखते।

वेदांत का सिद्धान्त स्वर्ग को कोई विशेष महत्त्व नहीं देता है। वेदान्त हमें शिक्षा देता है कि स्वर्ग दृश्य-मात्र एवं क्षण-भंगुर है। कल्पना कीजिए कि एक पुण्यशाली जीव स्वर्ग में लाखों वर्ष तक निवास करता है; परन्तु वे लाखों वर्ष अनन काल के समक्ष कुछ भी मूल्य नहीं रखते।

प्रभु ईसा मसीह ने कहा था- "स्वर्ग का साम्राज्य आपके अन्दर है।" वेदाना भी यही बात कहता है। अपनी अमर आत्मा के साक्षात्कार से सत्य एवं शाश्व आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। शाश्वत सुख आपके अन्दर है। आपकी अन्तरात्म में ही अनवच्छिन्न आनन्द है। विषय-पदार्थों से जो आनन्द आपको प्राप्त होता है, वह उस आत्मानन्द का आभास-मात्र है, आत्मा के सत्य-सनातन आनन्द का एक अंश है।

मनुष्य भगवान् का साक्षात् दर्शन करता है। वह भगवान् में रहता है। उसके और भगवान् के मध्य कोई अन्तराय, कोई विभेद नहीं रहता है। वह भगवान् के साथ परम पूर्ण एकता-भाव से निवास करता है। वह सदा आनन्दमय रहता है। यही स्वर्ग है।

पारमार्थिक दृष्टि न तो स्वर्ग है और न नरकं । वे मन की सृष्टि-मात्र हैं। आपका मन यदि सत्त्वगुण से सम्पन्न है तो आप स्वर्ग में ही हैं और यदि आपका मन तमोगुण और रजोगुण से अभिभूत है तो आप नरक में ही रह रहे हैं।

पुण्यशाली व्यक्ति प्राणोत्सर्ग करने के अनन्तर देवता बन कर स्वर्ग में निवास करता है और वहाँ नाना प्रकार के सुख भोगता है। स्वर्ग के अपने उस आवास-काल में वह वहाँ कोई नये कर्म नहीं करता है। स्वर्ग का निवास तो उसके पूर्वकृत पुण्य-कर्मों का पारितोषिक है। देव-शरीर में वह जीवात्मा किसी भी नये प्रकार के कर्म नहीं करता है।

स्वर्ग की कल्पना को छोड़िए। स्वर्ग में शाश्वत सुख प्राप्त करने का विचार तो निरर्थक स्वप्न-सा है। यह तो बालकों की-सी भोली बातें हैं। निदिध्यासन के द्वारा अपनी आत्मा में ही शाश्वत आनन्द को ढूंढ़िए। आप स्वयं नित्य-मुक्त अमर आत्मा है। आप स्वयं नित्य-शुद्ध, नित्य-आनन्द रूप हैं। अपने इस जन्म-सिद्ध अधिकार की माँग कीजिए। अपने मुक्त स्वरूप की घोषणा कीजिए। आपका प्रकृत रूप नित्य-शुद्ध और नित्य-आनन्द है; वही आप बने रहें। देश, काल और कारण विशिष्ट सभी पदार्थ सीमित होते हैं। आत्मा सभी देश, काल और कारण से परे है। हे तात्! तुम वही (आत्मा) हो- 'तत्त्वमसि'। इसका अनुभव प्राप्त कर सदा के लिए सुखी बनिए।

भगवान् बुद्ध कहते हैं-"यहाँ पर करोड़ों लोक हैं और इन सबसे आगे सुखवती नाम का एक आनन्दलोक आता है। यह लोक क्रमशः अर्गला, प्राचीर और झूमते हुए वृक्षों की सात-सात पंक्तियों से आवृत है। अर्हतों के इस लोक में तथागत शासन करते हैं और बोधिसत्त्व यहाँ के निवासी हैं। इसमें सात सरोवर हैं जिनमें स्फटिक के समान निर्मल जल सदा प्रवाहित होता रहता है। इन सबके जल में सात प्रकार के द्रव्य एवं गुण हैं; परन्तु प्रत्येक में अपना एक विशेष गुण भी होता है। है सारिपुत्र ! यह देवचान है। इस लोक में अवस्थित उदम्बर वृक्ष का पुष्प सम्पूर्ण जगत् में छाया हुआ है। वह उन सबको सुगन्धि प्रदान करता है जो कि उसके पास तक पहुँचते हैं।"

५. नरक

वेद-वेदान्त में नरक का कोई उल्लेख नहीं है। केवल पुराण ही नरक की-यातना-लोक की-चर्चा करते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से तो न स्वर्ग है और नरक । यह सब केवल मन की कल्पना है; परन्तु सापेक्षिक दृष्टि से तो नरक उतना है सत्य है जितना की यह भौतिक जगत् । विवेकी व्यक्ति के लिए तो यह संसार भी नरक ही है।

ईसाई और मुसलमान शाश्वत नरक की बातें करते हैं; परन्तु अनन्त कालीन यातना के दण्ड का विधान सम्भव नहीं है। शाश्वत जीवन की तुलना में तो एक दुराचारी व्यक्ति के इहलौकिक जीवन की कोई गणना ही नहीं। 'पापी को अनन्त कालीन नरकाग्नि की ज्वाला की यातना सहनी पड़ती है' - ऐसा यदि हम स्वीकार को तो सीमित कारण से असीम फल की प्रतिपत्ति होगी; परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है।

नरक की विविध यातनाएँ, नरक और कथित सात विभाग, स्वर्ग और नरक को विभाजित करने वाला अल-हिरात आदि मुसलमानों की ये मान्यताएँ यहूदियों की नकल-सी प्रतीत होती है।

स्वर्ग और नरक के विषय में हिन्दू पौराणिकों के विचार बहुत ही स्पष्ट है। याज्ञवल्क्य, विष्णु आदि स्मृतियों के स्मृतिकारों ने विविध नरकों का तथा स्वर्ग के विविध सुख-भोगों का बहुत ही गम्भीर विवेचन किया है। याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, तामिस, अन्धतामिस इत्यादि इक्कीस नरकों के नाम दिये हैं। विष्णु-स्मृतिकार ने भी इन्हीं की चर्चा की है। नरकलोक में तीक्ष्ण, उग्र तया अन्य यातनाएँ हैं। यहाँ पापी जन एक निश्चित अवधि तक कष्ट भोगते हैं। इस भाँति यहाँ रह कर दुष्कर्मी के फल भोगे जाते हैं और तत्पश्चात् पापी जन भूलोक में पुन आते हैं। उन्हें पुनः एक नया अवसर प्राप्त होता है।

नरक के शासक यमराज है। चित्रगुप्त इनके सहायक है। नरक एक स्थान अलग कर रखा है। पापियों को यहाँ पर दण्ड-भोग के समय यातना-देह' प्राप्त होती है। जीवात्मा जब पुनः भूलोक में जन्म लेता है, तब उसे नरक-यातना की स्मृति नही रहती है। यह नरक की यातना जीवात्मा को सुधारने तथा उसे शिक्षा देने के लिए होती है। इसका शिक्षणात्मक प्रभाव अन्तःकरण में स्थायी रूप से बना रहता है। पाप-कर्म करते समय कितने ही व्यक्तियों के अन्दर जो एक भय-सा उत्पन्न होता है उसका कारण उनकी उत्कृष्ट चेतना है जो नरकाग्नि-कुण्ड में तप्त हो कर विकसित है होती है। जीवात्मा को इससे यही चिरस्थायी लाभ प्राप्त होता है। नरकाप्ति में परिशुद्ध होने के अनन्तर जीवात्मा पूर्वपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील चेतना के साथ जन्म लेता है। वह अपनी योग्यताओं का अब अपने आगामी जीवन में अधिक सदुपयोग कर सकेगा।

स्वर्ग अथवा नरक में भविष्य जीवन के विषय में यहूदियों की मान्यता सम्पूर्ण रीति से वैसी ही है जैसे कि हम जेंदअवेस्ता में पाते हैं। यह वहीं से अपनायी गयी है। यहूदियों और पारसियों के नरक और उसके सात उप-विभागों के विवरण में समानता है। अनन्त कालीन उपहार अथवा अनन्त दण्ड के सिद्धान्त के विषय में यहूदियों की मान्यता भी जेंदअवेस्ता से ही अपनायी गयी है। उष्टवैती की गाथा कहती है-"पुण्यशाली पुरुष की जीवात्मा अमरत्व प्राप्त करती है; परन्तु पापी पुरुष की जीवात्मा दण्ड भोगती है।" आहुरमज्द का ऐसा ही नियम है। ये सभी प्राणी उसी के हैं।

यदि मन रजोगुण और तमोगुण से आपूरित है, तो यह नरक ही है। यह स्थूल शरीर कारागार अथवा नरक है। जप और ध्यान के अभ्यास बिना इस मांस-पिंजर में निवास करना नरक है।

शोकार्त हृदय से अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करना सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। पश्चात्ताप से पाप के कुप्रभाव जाते रहते हैं। उपवास, दान, तप, जप, ध्यान और कीर्तन-ये सभी पापों को विनष्ट कर डालते हैं। इस भाँति मनुष्य नरक के दुःख से परित्राण पा सकता है।

भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं: "आत्मा के नाश (पतन) करने वाले काम, क्रोध और लोभ-ये नरक की प्राप्ति के तीन द्वार हैं। अतः इन तीनों को छोड़ देना चाहिए" (गीता : १६-२१)।

काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत हो आप अनेक बुरे कर्म कर बैठते हैं। यदि आप इन तीनों बुरी वृत्तियों का दमन कर लें तो आप शाश्वत शान्ति का उपभोग करेंगे। इनकी विरोधी वृत्तियों का-शुचिता, क्षमा और उदारता का अर्जन कीजिए। इससे ये बुरी वृत्तियाँ स्वयं ही समाप्त हो जायेंगी।

६. कर्म और नरक

अविद्या तथा काम के वशीभूत हो कर जीव जो निषिद्ध कर्म करता है, उनके परिणामों को भोगने के लिए अनेकों तरह के नरक हैं। श्रीमद्भागवत में अट्ठाईस प्रकार के नरकों का वर्णन है, जिन्हें जीव अपने कर्मों की गति के अनुसार प्राप्त करता है।

इनमें एक तामिस्र नामक नरक है। जो पुरुष दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का अपहरण करता है, वह इस नरक में पड़ता है। काल-पाश से बाँध कर बलात्। अन्धकारमय नरक में गिरा दिये जाने से जीव को यहाँ असह्य वेदना होती है। यहाँ उसे अन्न-जल नहीं मिलता है। उस पर डण्डों की मार पड़ती है और भय दिखाया जाता है। इससे अत्यन्त दुःखी होने के कारण वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ता है।

दूसरे नरक को अन्ध-तामिस्र कहते हैं। जो पुरुष दूसरे को धोखा दे कर उसकी स्त्री तथा अन्य सम्पत्ति को भोगता है, वह यातनाओं को भोगने के लिए इस नरक में डाला जाता है। यहाँ अतीव पीड़ा के कारण जीव अपनी चेतना और सूझ-बूझ को खो बैठता है और जड़ से कटे वृक्ष की भाँति दुःखी होता है।

जो पुरुष 'यह शरीर मैं हूँ और संसार की सम्पत्ति मेरी सम्पत्ति है' -ऐसा सोचते हैं, वे रौरव नरक में पड़ते हैं। जो इस लोक में प्राणियों को कष्ट पहुँचाते हैं, वे इस भयावह रौरवलोक में रुरु नामक विषैले जीव से पीड़ित होते हैं।

महारौरव नरक भी तो ऐसा ही है। जो लोग विषय-भोग में लीन रहते हैं, उन्हें यहाँ मांसाहारी हिंसक पशु खाते हैं।।

जो क्रूर और निर्दयी पुरुष जीवित पशु अथवा पक्षियों को पकाता और खाता है, उसे भयंकर यमदूत कुम्भीपाक नरक में ले जा कर खौलते हुए तेल में उबालते हैं।

जो मनुष्य धर्मात्मा, ब्राह्मण और माता-पिता की अवज्ञा करता है, वह कालसूत्र नरक में डाला जाता है। वह एक ऐसे तप्त ताँबे के तवे के ऊपर रखा जाता है, जिसका घेरा चालीस हजार मील है और जो ऊपर से सूर्य और नीचे अग्नि के दाह से झुलसता रहता है। यहाँ भूख-प्यास से व्याकुल हो वह अकथनीय कष्ट झेलता है।

असिपत्र-वन नाम का एक नरक है। इस वन के वृक्षों की पत्तियाँ तलवार के समान पैनी होती हैं। जीव को इस वन में भगाया जाता है और वह पशु की तरह आहत होता है। जो अपने वैदिक धर्म को छोड़ कर पाखण्डपूर्ण धर्मो का आश्रय लेता है, उसे इस नरक में डाला जाता है। कितनी दयनीय अवस्था है! वह इधर-उधर भागता है, जिससे उसके अंग तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों से है - वह होने लगते हैं। जीव चिल्लाता है, 'हाय, मैं मरा' और वेदना से मूच्छित हो कर गिर पड़ता है।

जो राजा किसी निरपराध मनुष्य को दण्ड देता है अथवा ब्राह्मण को शरीर-दण्ड देता है, वह सूकरमुख नरक में गिरता है। वहाँ उस पापी के अंगों को कोल्हू में पेरे जाते हुए गन्ने के समान कुचलते हैं। वह आर्त स्वर में चिल्लाता है; किन्तु कोई उसकी सहायता नहीं करता है।

जो पुरुष समाज में सम्मान्य पद पा कर दूसरे व्यक्तियों को उत्पीड़ित करता है, वह अन्धकूप नरक में पड़ता है। वहाँ अनेक प्रकार के भयंकर पशु, सर्प आदि उस जीव को अन्धकार में चारों ओर से काटते हैं। यहाँ उसे भविष्य में ऐसे कुत्सित कर्म न करने की शिक्षा मिल जाती है।

जो द्विजाति पंचमहायज्ञ का नित्य अनुष्ठान नहीं करता, जो-कुछ मिले उसे बिना दूसरों को दिये स्वयं ही उपभोग करता है, उसे कौआ ही कहना चाहिए। वह कृमिभोजन नामक नरक में गिरता है जहाँ वह कीड़ों को खाता है। वह कीड़ों के एक बहुत बड़े विस्तृत कुण्ड में गिरता है और वे कीड़े जीव को चारों ओर से तंग करते हैं।

जो पुरुष किसी ब्राह्मण अथवा निर्धन का धन आदि अपहरण करता है और इस भाँति अकारण ही उसे कष्ट पहुँचाता है, वह सन्दंश नरक में पड़ता है। वहाँ उसे तपायी हुई सैंड़सी से नोचते हैं और धधकते हुए लोहे के गोलों से उसे मारते हैं।

जो पुरुष अथवा स्त्री अपने आश्रित निरपराध सेवकों और श्रमिकों की दयनीय अवस्था पर दया नहीं करता है और न उनकी सहायता करता है, बार-बार उन्हें गाली देता है, वह तप्तसूर्मि नामक नरक में पड़ता है। वहाँ वह बड़ी ही क्रूरता से पीटा जाता है तथा उसे पुरुष अथवा स्त्री की तपायी हुई प्रतिमा से आलिंगन कराते हैं। जो पराये पुरुष अथवा स्त्री से व्यभिचार करता है, उसे भी यही दण्ड मिलता है।

जो पुरुष काम के वश हो कर पशु आदि सभी प्राणियों के साथ व्यभिचार करता है, उसे वज्रकण्टक शाल्मली नरक में डाला जाता है। उसे उस नरक-प्रदेश में घसीटते हैं।

जो राजा या राजपुरुष धर्म की मर्यादा का अतिक्रमण करता है, वह मरने पर वैतरणी नदी में पड़ता है। वहाँ गिरने पर जल के जीव उसे काटते हैं, किन्तु इससे उसका शरीर नहीं छूटता। पाप कर्म के कारण प्राण उसे वहन किये रहते हैं। यह नदी मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस और मज्जा आदि से भरी हुई है।

जो पुरुष श्रेष्ठ कुल में जन्म ले कर शूद्रा स्त्री के साथ सम्बन्ध कर, लज्जा को तिलांजलि दे पशुवत जीवन व्यतीत करता है, वह मरने के पश्चात् पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ से भरे हुए पूयोद नामक नरक में पड़ता है और उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को ही खाता है।

जो ब्राह्मण और अन्य वर्ग के लोग कुत्ते या गधे पालते हैं और शास्त्र की मांग का उच्छेद कर पशुओं का आखेट करने में आमोद मानते हैं, वे मरने के बाद प्राणोद नरक में पड़ते हैं। यमदूत उन्हें अपने बाणों का लक्ष्य बना कर बींधते हैं।

जो पुरुष क्रूरता से पशुओं का बध करते हैं, वे विशसन नरक में पशु बन का जन्म लेते हैं। वहाँ उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है।

जो द्विज कामातुर हो कर अपनी सवर्णा पत्नी को वीर्यपान कराता है, उस प्राणी को लालाभक्ष नामक वीर्य की नदी में डाल कर वीर्य पिलाया जाता है।

जो कोई व्यक्ति, राजा अथवा राजपुरुष किसी के घर में आग लगाता है, किसी को विष देता है अथवा गाँव या व्यापारियों की टोलियों को लूटता है, मरने के पश्चात् वह सारमेयादन नरक में पड़ता है। वहाँ भयंकर दाँत वाले सात सौ बीस कुत्ते उसे वेग से काटते हैं।

जो पुरुष किसी की गवाही देने में अथवा दान के समय झूठ बोलता है, वह अवीचिमान नरक में पड़ता है। वहाँ खड़े होने के लिए कोई आधार नहीं है। वहाँ जीव को चार सौ मील ऊँचे पर्वत-शिखर से शिर के बल धकेला जाता है। इस नरक में कठोर पत्थर की भूमि भी जल के समान जान पड़ती है। इस भाँति जीव और भी अधिक भ्रम

में पड़ता है। यद्यपि उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, फिर भी प्राण नहीं निकलते। उसे बार-बार ऊपर ले जा कर पटका जाता है।

जो ब्राह्मण मद्यपान करता है अथवा अविहित भोजन करता है, उसे अब पान नरक में गलाया हुआ लोहा पान करना पड़ता है। जो वर्णाश्रम-धर्म का उल्लंघन करता है, उसे यहाँ उचित दण्ड मिलता है।

जो पुरुष निम्न श्रेणी का हो कर भी अपने को बड़ा मानता है; किन्त जन्म आश्रम अथवा विद्या में अपने से जो वास्तव में बड़े हैं, उसका आदर-सत्कार नहीं करता, वह जीते ही मरे के समान है। उसे मरने पर अनन्त पीडाएँ भोगने के लिए र क्षारकर्दम नामक नरक में नीचे शिर करके गिराया जाता है।

जो पुरुष नरमेध के द्वारा देवताओं का यजन करते हैं. वे रक्षोगण भोजन नामक नरक में डाले जाते हैं। वहाँ उन्हें राक्षस गण टुकड़े-टकडे करके काटते और खाते !! फिर भी वे मरते नहीं, यातनाएँ ही भोगते रहते हैं।

जो दृष्ट पुरुष अपने शरणागतों को, उनकी शरण में पड़े रहने के कारण तरह-तरह की पीड़ाएँ देते हैं, वे मरने पर शूलप्रेत नामक नरक में पड़ते हैं। वहाँ वे भूख-प्यास से पीड़ित होते हैं। चारों ओर से तीखे अस्त्रों से बींधे जाते हैं, जिससे उन्हें अपने किये हुए सारे पाप याद आ जाते हैं।

जो लोग सर्पों के समान उग्र स्वभाव वाले होते हैं और दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरने पर दन्दशूक नाम के नरक में पड़ते हैं। वहाँ पाँच-पाँच और सात-सात फण वाले सर्प उन पर आक्रमण करते हैं और भय से उन्हें मृतप्राय बना देते हैं, फिर भी वे मरते नहीं।

जो पुरुष दूसरे प्राणियों को अँधेरी कोठरियों और गुफाओं में डाल देते हैं, वे मरने पर आग और धुएँ से भरे हुए वैसे ही अन्धकारपूर्ण अवट-निरोधन नरक = में जाते हैं।

जो गृहस्थ अपने अतिथि-अभ्यागतों की ओर क्रोध-भरी ऐसी कुटिल दृष्टि से देखते हैं मानो उन्हें भस्म कर देंगे, मरने के बाद पर्यावर्तन नरक में वज्र के समान चोंचों बाले गृद्ध उनके नेत्रों को निकाल लेते हैं।

जो धनवान् हो कर भी सभी पर चोर होने का सन्देह रखता है और जो सदा चिंतित मन से यक्ष के समान धन की रक्षा करता है, वह मरने पर अन्धकार और विष्ठा से पूर्ण, जल-रहित सूचीमुख नाम के नरक में गिरता है।

यमलोक में इसी प्रकार के सैकड़ों-हजारों नरक हैं, जिनका वर्णन यहाँ सुगमता से नहीं किया जा सकता। जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है, वे तो अधर्म-परायण जीवों की यातनाओं के कुछ नमूने हैं।

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों का संयम करता है, जो निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता है, जो भगवद् ध्यान में लीन रहता है, जो सदाचारी, दयालु और उदार है, जो विषय-जगत् की रंचमात्र भी इच्छा नहीं करता, जो मोक्ष-साधन में तत्पर है, वह फिर जन्म नहीं लेता। धर्मात्मा पुरुष स्वर्गलोक को जाते हैं और अन्य लोग, यदि इस लोक में जन्म नहीं लेते तो इन नरकों में से किसी एक में पड़ते हैं।

७. असूर्य-लोक

नरक एक ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य भगवान् से परम वियोग का अनुभव करता है, जिसमें वह भगवान् के प्रेम, पवित्रता और सत्यता की ज्योति का अनुभव नहीं कर पाता है। यह असूर्य, सूर्य-रहित लोक है।

मनुष्य जान-बूझ कर, दौर्मनस्य तथा पश्चात्ताप की भावना से रहित हो कर जो पाप करता है, उसकी प्रतिक्रिया तथा प्रतिकार-स्वरूप वह यहाँ पूर्ण अव्यवस्था, अन्धकार तथा दुःख को प्राप्त करता है।

पापियों के लिए अनन्तकालीन दण्ड अथवा अनन्तकालीन अग्नि जैसी कोई वस्तु नहीं है। ऐसा कदापि नहीं हो सकता है। इस सिद्धान्त का बहुत पहले ही भण्डाफोड़ हो चुका है। अनन्तकालीन दण्ड एक अनीश्वरीय सिद्धान्त है। यह युग-युगान्तरों से लोगों के लिए भयजनक तथा दुःस्वप्न-सा बना रहा है। मनुष्य को पाप-कर्म से उपरत करने के लिए ही नरक का इतना भयावह चित्रण किया गया है। नरक एक भयानक शब्द है।

ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस हेतु से नहीं की कि वह निरन्तर नरकाग्नि का ईंधन बना रहे। निश्चय ही इस सृष्टि के रचने में भगवान् का ऐसा कोई प्रयोजन नहीं है। यदि भगवान् ऐसा हो, तो भला कौन उसे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करे ? भला तब कौन व्यक्ति बच सकता है? इस संसार में निष्कलंक व्यक्ति कितने हैं? ऐसा कौन निर्दोष चरित्र का व्यक्ति है, जिसे स्वर्ग में सीधे प्रवेश करने का पार-पत्रक मिल सके?

यदि यह सत्य है तो सभी पण्डित, शास्त्री, आचार्य, पुरोहित, धर्मोपदेशक, पोप, पादरी-यहाँ तक कि सारे संसार के सभी मनुष्यों को नरकाग्नि में झुलसना पड़ेगा।

८. यमलोक का मार्ग

सबसे नीच एवं अधम कोटि के पापियों के सम्मुख विकराल रूप धारण किये हुए यम के दो दूत आ धमकते हैं और पापी जीवात्मा को यम-पाश में बाँध लेते हैं। उनके भय से त्रस्त हो कर उसका मूत्र निकल पड़ता है। यम-मार्ग का कष्ट भोगने के लिए, उसे एक विशेष शरीर (यातना-देह) मिलता है। यमदूत रस्सियों से जकड़ का उसे बाँध लेते हैं और सुदूर पथ से बलपूर्वक घसीटते हुए उसे संयमनी नगर की ओर ले चलते हैं।

इस मार्ग में वृक्ष की छाया नहीं होती है। न तो यहाँ आहार है और न जल ही। यहाँ पर नित्य द्वादश सूर्य तपते रहते हैं। पापी जीव जब इस मार्ग से चलता है, तो कहीं पर उसका शरीर शीत-वायु से विद्ध होता है और कहीं पर पथ के कण्टकों से विदीर्ण होता है। एक स्थान में वह अत्यन्त विषैले सपों और बिच्छुओं से दुशित होता है और किसी एक अन्य स्थान में वह अग्नि से जलता है।

भग्न-हृदय वह जीवात्मा मार्ग में क्रर यमदूत की धमकियों से कम्पायमान होता है। निर्दयी कुत्ते उसे काट खाते हैं। उसे भूतकाल में किये हुए अपने पाप-कर्मों की स्मृति होती है। वह तृषा तथा क्षुधा से व्यथित होता और प्रचण्ड सूर्य से तपायमान के होता है। उसे तप्त अरुण बालुका में चलना पड़ता है। पीठ पर कठोरता से आघात किये जाने पर जब वह अर्धमूर्च्छित-सा हो गिरने लगता है, तब यमदूत उसे पुनः उठने के लिए विवश करते हैं और उसे यमराज के धाम की ओर घसीट ले जाते हैं। वहाँ उसे चिरकाल तक कष्ट-भोग का दण्ड मिलता है। इसके अनन्तर वह जीव क्षुद्रतम योनियों में जाता है और उनमें विकास-क्रम के अनुसार उन्नत होता हुआ सूअर, कुत्ता आदि योनियों में आता है। इस भाँति इन योनियों के कष्ट-ताप क्रिया में वह क्रमिक रूप से शनैः शनैः शुद्ध हो कर अन्ततः मानव-योनि को प्राप्त होता है।

इस नरक में पापी जीव कहीं अन्धकूप में गिरता है, तो कहीं पर्वत के उच्च शिखर से नीचे आ पड़ता है। कहीं पर वह तलवार की तीक्ष्ण धार पर अथवा शूल की पैनी नोक पर चलता है। किसी स्थान में वह घोर अन्धकार में लड़खड़ा कर जल में जा • गिरता है। कहीं पर वह जोंकों से भरे हुए कीचड़ में, कहीं पर तप्त करेली मिट्टी में, कहीं पर पिघले हुए शीशे के तप्त

रेत में और कहीं पर धधकते हुए अंगारों में चलता है। कहीं उस पर अंगारे बरसते हैं तो कहीं पर शिला, वज्र, अस्त्र-शस्त्र अथवा खौलते हुए जल की उसके ऊपर वृष्टि होती है। मार्ग में रुधिर तथा पूय से परिपूर्ण अति-भयावह वैतरणी नदी पड़ती है। इसे पार करना बहुत ही दुष्कर है।

यमदूत पापी जन पर हथौड़ों से प्रहार करते हैं और यम-पाश में बाँध कर उसे घसीटते हैं। उसके पुत्र प्रति मास जो पिण्ड दान करते हैं, वही उसे खाने को मिलता है। उसका पुत्र यदि गौ-दान करता है, तो उसे वैतरणी नदी पार करने के लिए नौका मिल जाती है।

एक वर्ष के अन्त में वह यम के धाम में पहुँच जाता है। यमराज चित्रगुप्त से उसके पाप के विषय में पूछते हैं और चित्रगुप्त ब्रह्मा के पुत्र श्रवणों से उसके पाप के विषय में पता करते हैं; क्योंकि इन श्रवणों को सभी पुरुषों के कर्म का ज्ञान होता है। श्रवणों की पत्नियों को स्त्रियों के पाप-कर्मों का ठीक-ठीक पता होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण, यम, दिवा-रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, धर्म, सूर्य और चन्द्रमा-ये मनुष्य के कर्मों को जानते हैं।

धर्मराज यम पापियों को समुचित दण्ड निर्धारित करते हैं और तब यम के दूत उन्हें तदनुरूप नरक में ले जा कर यातना देते हैं। यहाँ यम के दूत इन पापियों पर बारम्बार अपने शूल, गदा, मूसल आदि अस्त्रों से प्रहार करते हैं।

अपने जीवन-काल में जो व्यक्ति पुण्यार्जन करते हैं, वे पुण्यात्मा जन दिव्य विमान में बैठ कर स्वर्ग के उद्यान में जा पहुँचते हैं; परन्तु पापियों को उनके पापों के दण्ड-स्वरूप कण्टक, शूल तथा झाड़-झंकाड़ से आकीर्ण पथ द्वारा जाना होता है और वे हिम-शिलाओं तथा भू-विवरों को प्राप्त होते हैं ।

जिनके पाप और पुण्य प्रायः समान होते हैं, ऐसे मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के यमपुरी जाने का मार्ग स्वच्छ तथा सुन्दर होता है। इस पथ में कोमल घास बिछी होती और मार्ग के दोनों ओर शीतल लता-कुंज और जल-प्रपात बने होते हैं।

जब जीव यमपुरी में पहुँच जाता है, तब उसे अपने अन्दर ही ऐसा प्रतीत होता है कि 'मैं अब यमराज के पास आ गया हूँ और मेरे समक्ष वह मृत्युदेव यमराज विराजमान हैं। ये दूसरे हमारे कर्मों के निर्णायक चित्रगुप्त हैं। इन्होंने मेरे प्रति यह न्याय किया है।'

यहाँ यमराज की सभा है, जहाँ जीव का न्याय होता है, जिससे कि जीव अपने कर्मों का फल भोग सके। इस न्याय के आधार पर वह जीवात्मा अपना पुण्य भोगने के लिए ऊपर आनन्दमय स्वर्ग को प्रयाण करता है अथवा पाप भोगने के लिए नीचे नरक में पतित होता है।

स्वर्ग के सुख अथवा नरक की यातनाएँ भोग लेने के पश्चात् वह जीवात्मा अपने कर्मों के परिणाम-स्वरूप इस भूलोक में पुनः आता है और अनेक जन्म लेता है। मनुष्य की मृत्यु के अनन्तर एक वर्ष तक उसके निमित्त जो समय-समय पर श्राद्ध-क्रियाएँ की जाती हैं, उनका यही रहस्य है।

९. धर्म (न्याय) की नगरी

भगवान् यमराज धर्म (न्याय) के राजा माने जाते हैं। उनका नगर हीरे तथा मोतियों से जटित है। यह नगर प्रभामय तथा अभेद्य है, राजप्रासादों एवं अट्टालिकाओं से पूर्ण है। चारों दिशाओं में इस नगर के चार द्वार हैं और

यह ऊँचे प्राचीरों से चतुर्दिक आवृत है। इस नगर का विस्तार एक सहस्र योजन तक है। सभी मनुष्यों के भाग्य का लेखा रखने वाले चित्रगुप्त भी इसी धर्म की नगरी में निवास करते हैं। वे मनुष्य के पुण्य-पाप का लेखा रखते हैं। स्वयं विश्व-स्रष्टा ने अपने यज्ञ के प्रभाव से इस नगरी की रचना की थी। यहाँ एक दिव्य सभागृह भी है जहाँ पर एकत्रित होने वाले सभी लोग शास्त्र-मर्मज्ञ तथा धर्मप्रिय होते हैं। राजर्षि गण भी यहीं निवास करते हैं।

पापी जन इस नगर में दक्षिण पार्श्व से प्रवेश करते हैं। उन्हें यह धर्म-सभा दृष्टिगोचर नहीं होती है। जो पुण्यशाली जीव होते हैं, वे इस धर्म-सभा में पूर्व आदि अन्य तीन द्वारों से प्रवेश करते हैं।

इस नगर का पूर्वीय पथ पारिजात वृक्ष की कोपलों से आच्छादित है और इसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। पूतात्मा ब्राह्मण, मुनि, राजर्षि, शिव के भक्त, धर्मशालाएँ निर्माण कराने वाले, चातुर्मास्य में तपस्वियों को आश्रय प्रदान करने वाले, क्रोध और लोभ से मुक्त जन, धर्मानुरागी तथा सत्यप्रिय, गुरुभक्तिपरायण, भूदान, गृहदान तथा गोदान करने वाले, शास्त्रों के श्रोता-वक्ता-ये सभी पुण्यशाली जन इस मार्ग के पथिक हैं। वे धर्म-सभा में प्रवेश करते हैं।

इस नगर का दूसरा-उत्तर दिशा का - पथ पीतवर्ण के चन्दन के वृक्षों से निर्मित है। यहाँ पर अमृतरस से पूर्ण रमणीय सरोवर हैं। जो वेद के पारगामी हैं, जो अतिथिसेवी हैं, जो दुर्गा तथा सूर्य के उपासक हैं, जो ब्राह्मणों के हेतु, स्वामिकार्य अथवा प्राणियों के रक्षार्थ अपने प्राण उत्सर्ग करते हैं, जो दानशील हैं; वे सब उत्तर के द्वार से प्रवेश कर धर्म की नगरी में पहुँचते हैं।

इस नगर का तीसरा-पश्चिम दिशा का-पथ रत्न-जड़ित भवनों से सुशोभित है। जो भगवान् विष्णु और लक्ष्मी के भक्त हैं, जो गायत्री-मन्त्र का जप करते हैं, जो गार्हपत्य अग्नि का सेवन करते हैं, जो वेदपाठी हैं, जो वैराग्यवान् हैं, जो पंचमहायज्ञों को करते हैं, जो पितरों का श्राद्ध करते हैं, जो यथोचित समय पर सन्ध्या करते हैं, जो ब्रह्मचर्य और अहिंसा-व्रत का पालन करते हैं, जो अपनी पत्नियों के विश्वास-भाजन होते हैं, जो सभी प्राणियों के हित में सदा रत रहते हैं—ये सभी पुण्यात्मा जन उत्तम विमानों पर सवार होते हैं, अमृत-पान करते हैं और इस धर्म की नगरी में पश्चिम द्वार से प्रवेश करते हैं।

भगवान् यम इन पुण्यशाली जीवों का स्वागत करते तथा चन्दनादि से उनका आदर-सत्कार करते हैं। यहाँ वे कुछ काल निवास कर दिव्य भोगों को भोगते हैं। कालान्तर में जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब वे इस भूलोक में पुनः पवित्र मानव-जन्म धारण करते हैं।

१०. यम-सभा

विवस्वान् के पुत्र यमराज के सभा-भवन का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था। इस भव्य सभा भवन का विस्तार एक सौ योजन है। यह सूर्य के समान प्रकाशमान है । मनुष्य इससे चाहे जिस वस्तु की कामना करे, वह वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है। दर स्थान न तो अधिक उष्ण है और न अधिक शीत ही। यह हृदय को आह्लादकारक है।

यहाँ पर न शोक है न जरा, न क्षुधा है न तृषा, न अरोचकता है और न दुख आदि ही हैं। इस सभा में किसी प्रकार का क्लेश नहीं है। यहाँ दिव्य अथवा लौकिक, सभी प्रकार के काम्य पदार्थ तथा मधुर, रसीले, रुचिकर, स्वादिष्ट पदार्थ तथा खाद्य, लेह्य, चोष्य, पेय इत्यादि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ पर धारण किये जाने वाले पुष्प-हारों में बहुत ही भीनी सुगन्ध होती है। यहाँ के वृक्ष सभी प्रकार के ऐच्छिक फल उत्पन्न करते हैं।

यहाँ पर शीत और उष्ण-दोनों प्रकार का जल है जो कि मधुर और अनुकूल है। इस सभा में पवित्र राजर्षि गण और निष्पाप ब्रह्मर्षि गण रहते हैं। त्रसदस्यु, कृतवीर्य, श्रुतश्रवा, ध्रुव इत्यादि राजर्षि गण यहाँ होते हैं। इनके अतिरिक्त मार्त्य वंश के एक सौ, नेप वंश के सौ, हुय वंश के सौ, धृतराष्ट्र नाम के सौ, जनमेजय नाम के अस्सी, ब्रह्मदत्त नाम के सौ, इरी और अरी नाम के सौ, भीष्म नाम के दो सौ, भीम नाम के सौ, प्रतिबिन्द नाम के सौ, नाग नाम के सौ और हय नाम के सौ राजा रहते हैं। ये सभी प्रसन्न मुद्रा से यमराज की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

ये राजर्षि गण सभी सिद्धियों में तथा शास्त्रों में निपुण होते हैं और यमराज की सभा में विद्यमान रहते हैं। अगस्त्य, मंगल, काल, यज्ञयागादि क्रिया करने वाले, साध्य, योगी, जीवन्त पितर गण, काल-चक्र, यज्ञाहुति-वाहक अग्नि इत्यादि वहाँ होते हैं। इनके अतिरिक्त पापी जन, दक्षिणायन में मरने वाले सभी प्राणी, सभी प्राणियों की निश्चित आयु की गणना रखने वाले यमराज के कर्मचारी, कश और कुश वृक्ष तथा सभी वृक्ष और वनस्पति अपने दिव्य रूप में यमराज की सभा में रहते हैं। ऊपर बतलाये हुए ये सब लोग तथा और भी कई अन्य लोग यमराज की सभा में रहते हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं हो सकता है। यह सभा अपनी इच्छा से कहीं भी जा सकती है। यह बहुत ही विशाल और सुन्दर है। दीर्घ काल तक तपश्चर्या करने के पश्चात् विश्वकर्मा ने इसकी रचना की थी। वह अपनी आभा से स्वयं प्रकाशमान है। उग्र तपस्या करने वाले तपस्वी, उत्तम व्रती, सत्यवादी, पवित्र तथा शान्त मन वाले तथा पवित्र कर्म-सम्पादन द्वारा शुद्ध-हृदय वाले व्यक्ति यहाँ पर रहते हैं। इन सबके शरीर देदीप्यमान होते हैं। निर्मल वेशभूषा धारण करते तथा भुजबन्द एवं रत्नहार से सुसज्जित होते हैं। उनके पुण्य-कर्म उनके साथ होते हैं तथा वे अपनी श्रेणी को प्रकट करने वाले चिह्न धारण करते हैं।

अनेक प्रख्यात गन्धर्वों तथा अप्सराओं के नृत्य, वाद्य, संगीत तथा हास-परिहास से सभा का कोना-कोना झंकृत रहता है। दिव्य सुगन्ध, मधुर शब्द तथा दिव्य पुष्प-मालाओं की यहाँ पर प्रचुरता है। यहाँ पर सृष्टिजात सभी प्राणियों के आराध्यदेव यमराज के पास दिव्य सौन्दर्य और महान् प्रतिभासम्पन्न सहस्रों पुण्यशाली व्यक्ति उपस्थित रह कर उनका पूजन करते रहते हैं।

११. इन्द्रलोक

शुक्र की दिव्य सभा प्रकाशमान है। यह इन्द्र को उनके पुण्य-कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुई है। इस सभा को स्वयं इन्द्र ने सूर्य के समान प्रकाशमान बनाया है। इसकी लम्बाई डेढ़ सौ योजन, चौड़ाई एक सौ योजन और ऊँचाई पाँच =योजन है। यह इच्छानुसार कहीं भी जा सकती है।

यहाँ से जरा, शोक, भय और क्लेश दूर रहते हैं। यह सुखकर तथा शुभकर है। इसमें विशाल खण्ड और आसन बने हुए हैं। यह दिव्य वृक्षों से सुशोभित है और बहुत ही रमणीय प्रतीत होती है। इस सभा में एक उच्चासन पर देवराज इन्द्र सौन्दर्य और लक्ष्मी-रूपा अपनी पत्नी शची के साथ विराजते हैं। उनका रूप अवर्णनीय तथा अद्‌भुत है। उनके शिर पर मुकुट और बाँहों में भुजबन्ध हैं। वे शरीर पर शुद्ध शुभ्र वस्त्र धारण करते हैं। इन्द्र के वाम पार्श्व में सौन्दर्य, कीर्ति और विनय की मूर्ति शची देवी विराजती हैं।

शतक्रतु इन्द्र की सेवा में मरुत गण, सिद्ध, देवर्षि, साध्य तथा देव रहते हैं। सुन्दर रूप वाले ये मरुत गण सोने का हार धारण करते हैं। ये तथा इनके अनुचर दिव्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित हो शत्रु-पीड़क देवराज इन्द्र की नित्य-प्रति सेवा-पूजा करते हैं।

शुद्धात्मा देवर्षि गण, जो अग्नि के समान तेजस्वी हैं, जिनके सभी पाप पूर्णतः पुल चुके हैं, जो ओज-शक्ति से पूर्ण हैं, जो शोक तथा भय से मुक्त हैं, जो सोमयज्ञ करते हैं ये सभी तथा पराशर, पर्वत, सावर्णि, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, उद्दालक इत्यादि ऋषि इन्द्र की स्तुति करते हैं। इनमें से कई एक तो माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं और कई एक स्त्री के गर्भ से न उत्पन्न हो कर मानस-पुत्र हैं। इनमें से कुछेक वायु के ऊपर और कुछेक तैजस् पदार्थ के ऊपर जीवन निर्वाह करते हैं। ये ऋषि बज्रायुधधारी लोकपाल इन्द्र की स्तुति करते रहते हैं। सहदेव, सुनीथ, शमिक, हिरण्यगर्भ, गर्ग इत्यादि मुनि गण दिव्य जल तथा वनस्पति, श्रद्धा, धी, सरस्वती आदि देवियां पां अर्थ तथा काम, विद्युत्, मेघ, पवन, घनघोष, प्राची दिशा, हव्यवाहक सताईर अधियाँ, अनल, सोम, इन्द्राग्नि, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, ग्रह, नक्षत्र और तागा गण, यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र-ये सभी इन्द्र की सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं।

बहुत-सी रमणीय अप्सराएँ तथा गन्धर्व गण अपने-अपने विविध प्रकार के नृत्य-गान, कण्ठ तथा वाद्य के संगीत तथा अन्य अनेक प्रकार के कला-कौशल प्रदर्शित कर स्वर्गाधिपति इन्द्र को प्रसन्न रखते हैं। राजर्षि, ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगण विविध प्रकार के दिव्य वाहनों पर आसीन हो तथा पुष्पमालाओं और अलंकारों से सुसज्जित हो इन्द्र-सभा में आते-जाते रहते हैं।

बृहस्पति तथा शुक्राचार्य भी यहाँ सभी अवसरों पर उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक दृढ़व्रती महर्षि गण तथा ब्रह्म के समान तेजस्वी भृगु और सप्तर्षि गण सोम-रथ के समान अलौकिक विमानों में बैठ कर इन्द्र की सभा में आते-जाते रहते हैं। इस सभा का नाम पुष्करमालिनी है।

१२. वरुणलोक

वरुण की दिव्य सभा अद्वितीय है। यम-सभा के बराबर ही इस सभा का विस्तार है। यह स्फटिक की धवल दीवालों और वृत्तखण्डों से सुशोभित है। विश्वकर्मा ने इस नगर की रचना जल के अन्दर की है। इसके चतुर्दिक् हीरे और मणियों के दिव्य वृक्ष लगे हुए हैं जिनमें बहुत ही सुन्दर फल-फूल उत्पन्न होते हैं। नीले, पीत, श्याम, श्वेत तथा अरुण पुष्प वाले पौधों के परस्पर मिलने से कुंज बन गये हैं जिनमें सैकड़ों और सहस्रों जाति के रंग-विरंगे पक्षी मधुर कलरव करते रहते हैं।

यह सभा बहुत ही आह्लादकारी है। यहाँ पर न तो शीत है और न उष्णता हो। इसका शासन वरुणदेव करते हैं। इस सभा में कई खण्ड हैं जिनमें सुन्दर आसनों की व्यवस्था की गयी है। यहाँ पर वरुणदेव अपनी रानी (वारुणी) के साथ दिल्ल वस्त्रालंकारों से सुसज्जित हो विराजते हैं। आदित्य गण वरुण की सेवा में उपस्थित रहो हैं। उनके शरीर पर दिव्य सुगन्धित द्रव्य और चन्दन का लेप लगा रहता है।

वासुकी, तक्षक, जनमेजय इत्यादि नाग धैर्यपूर्वक वरुणदेव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये नाग सुन्दर चिह्न धारण करते हैं और इनके मण्डल और विशाल फण भली प्रकार शोभायमान होते हैं। विरोचन के पुत्र बलि, संग्रोध, कलकपंच नाम वाले दानव, सुहनु, पितर, दशग्रीव इत्यादि पाशधारी वरुणदेव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये सब कानों में कुण्डल, गले में पुष्पहार, शिर पर मुकुट और शरीर पर दिव्य वस्त्र धारण किये होते हैं। इन्हें वर प्राप्त हुआ होता है। इनमें महान् शौर्य तथा अमरत्व होता है। ये सब शुद्धाचारी, धर्मात्मा तथा सुव्रती होते हैं। चारों महासागर, भागीरथी, कालिन्दी, विदिशा, वेणु, वेदवती, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, इरावती, सिन्धु, गोदावरी, कावेरी, वैतरणी, सोन, सरयू, अरुणवर्णा महानदी, गोमती तथा अन्य सरिताएँ, तीर्थ, सरोवर, कूप, वापी, प्रपात- ये सभी जलाशय मूर्त रूप से वहाँ विद्यमान होते हैं। स्वर्ग की दिशाएँ, पृथ्वी, पर्वत तथा सभी प्रकार के जलचर वरुणदेव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। वाद्य और गीतकलानिपुण अप्सरा और गन्धर्व वरुणदेव की स्तुति करते

हुए उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। रत्न तथा हीरों से सम्पन्न सभी पर्वत वहाँ उपस्थित हो कर सुन्दर वार्तालाप में संलग्न रहते हैं। वरुण का मन्त्री सुनव अपने पुत्र-पौत्रों के साथ तथा गो नाम के प्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ के साथ वरुणदेव की सेवा में उपस्थित रहते हैं। ये सब दिव्य रूप धारण कर वरुणदेव की पूजा करते हैं।

१३. कुवेरलोक

वैश्रवण (कुवेर) के दिव्य सभा-मण्डप की लम्बाई एक सौ योजन और चौड़ाई सत्तर योजन है। अपने तप के प्रभाव से कुवेर ने स्वयं इस सभा की रचना की थी। वह कुवेरलोक कैलास के शिखर-सा प्रतीत होता है। यह चन्द्रमा से भी बढ़ कर प्रकाशमान है। गुह्यक लोग इसे इस प्रकार धारण किये हुए हैं, मानो यह आकाश में लटक रहा है। इसमें स्वर्ण-निर्मित अनेक दिव्य विशाल राजभवन हैं जिनसे यह अत्यन्त सुन्दर लगता है।

यह कुवेर-सभा बहुत ही रमणीक है। यह दिव्य सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित तथा अनेक बहुमूल्य मणियों से सुशोभित है। श्वेताभ्र-खण्डशिखर के समान यह सभा गगन-मण्डल में हिलोरें-सी लेती हुई प्रतीत होती है। दिव्य स्वर्णिम रंगों से रंजित यह ऐसी दृष्टिगोचर होती है मानो तड़ित्-रेखाओं से इसका श्रृंगार किया गया है। यहाँ पर सूर्य के समान देदीप्यमान एक भव्य सिंहासन है जिस पर दिव्य चादरें बिछी हुई हैं और उसके नीचे सुन्दर पाद-पीठ रखे हुए हैं। सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित तथा कानों में चमकते हुए कुण्डल धारण किये हुए परम सौन्दर्यशाली राजा कुबेर अपनी एक सहस्र पत्नियों के साथ इस आसन पर विराजते हैं।

मन्दार-वृक्ष के सघन उपवनों से बहता हुआ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु मल्लिका की क्यारियों से अलका नदी के क्रोड़ में उत्पन्न नीरज पुष्पों से तथा नन्दन वन के पारिजात-कलिकाओं से सुगन्ध ला कर कुवेर भगवान् की अर्चना करता है।

देवता गण यहाँ पर अनेक प्रकार की अप्सराओं से परिवृत गन्धवों के साथ दिव्य मधुर राग अलापते हैं। मिश्रकेशी, रम्भा, उर्वशी, लता तथा नृत्य-गान में कुशल अन्य सहस्रों अप्सराएँ, धनपति कुबेर की सेवा में उपस्थित रहती हैं। वाद्य-संगीत की मधुर राग-रागिनी तथा अनेक गन्धवों और अप्सराओं के नृत्य से यह सभा बहुत ही मनोरम तथा सुहावनी लगती है।

सहस्रों की संख्या में गन्धर्व, किन्नर तथा यक्ष और हंसचूड़ एवं वृक्षवस्य कुळो की सेवा में नित्यप्रति उपस्थित रहते हैं। श्री लक्ष्मी देवी तथा नल कुवेर भी इस सभा में उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से लोग भी यहाँ प्रायः आते-जाते रहते हैं। अनेक राजर्षि और महर्षि भी यहाँ आते हैं। कई राक्षस और गन्धर्व कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। सर्वभूतेश्वर त्रिनेत्रधारी भगवान् महादेव सदा प्रसन्न मुद्रा और अखिन्न भाव से अपनी पत्नी उमादेवी के साथ वहाँ पर अपने सखा कुबेर के पास निवास करते हैं। इनके साथ असंख्य भूत-प्रेत रहते हैं। उनमें से कितने ही बौने होते हैं और कितनों के नेत्र शोणित वर्ण के होते हैं। इनमें से कई एक मांसाहारी होते हैं। है सब-के-सब नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं। इनकी गति वायु के समान तीव्र होती है।

सैकड़ों गन्धर्व-नायक अपने-अपने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो प्रसन्न हृदय में कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। विद्याधरों के प्रमुख नायक चक्रघमन अपने अनुचरों के साथ कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं। बहुत से किन्नर अपने प्रधान, भगदत्त के नेतृत्व में अनेक राजा, किम्पुरुषों के प्रधान द्रुम तथा राक्षसों के प्रधान महेन्द्र भी कुबेर की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

धर्मात्मा विविशन अपने अग्रज कुवेर की सेवा में वहाँ उपस्थित रहते हैं। हिमालय, पारिपात्र, विन्ध्य, कैलास, सुनव इत्यादि पर्वत पुरुष-रूप धारण कर अपने प्रधान मेरु के साथ कुवेर के पास उपस्थित रहते हैं।

प्रसिद्ध नन्दीश्वर, महाकाल, गम्भीर नाद करने वाला भगवान् शिव का वाहन वृषभ, शेर के समान तीक्ष्ण कान तथा नुकीले मुख वाले भूत-प्रेत तथा अनेक राम और पिशाच कुवेर के पास उपस्थित रहते हैं। पूर्वकाल में कुबेर का पुत्र अपने पिता की आज्ञा प्राप्त कर अपने अनुचरों के साथ त्रिलोकीनाथ भगवान् शिव की हो नत-मस्तक हो नित्य पूजा करता था। उदारात्मा भव ने एक दिन कुवेर से मैत्री कर ली और तब से वे कुबेर की सभा में सदा उपस्थित रहते हैं।

कुबेर की यह सभा आकाश में संचरण करने की क्षमता रखती है।

१४. गोलोक

गाय सभी प्राणियों का आधार है। गाय सब प्राणियों का निवास है। गाय धर्म की मूर्ति है। गाय पवित्र है और सबको पवित्र बनाती है। उसके रूप और गुण सर्वोत्तम हैं।

गाय में महान् शक्ति है। गोदान की महिमा कही गयी है- "मान-मुक्त हो जो सज्जन गोदान करते हैं, वे पुण्यशाली तथा सभी वस्तुओं का दान करने वाले माने जाते हैं। ऐसे पुण्यात्मा-जन परम पावन गोलोक के धाम को प्राप्त होते हैं।"

गोलोक के वृक्ष मधुर फल प्रदान करते हैं। ये सदैव सुन्दर पुष्पों तथा फलों से सुशोभित रहते हैं। उनके पुष्पों में दिव्य सुगन्ध होती है।

इस गोलोक की सम्पूर्ण भूमि मणियों से बनी हुई है, इसकी रेती सोने की है। वहाँ की जलवायु में सभी ऋतुओं की सौम्यता होती है। वहाँ न तो कीचड़ है और न धूल। निःसन्देह यह बहुत ही पावन धाम है। यहाँ की सरिताओं के वक्षःस्थल पर अरुणाभ पद्म-पुष्प विकसित रहते हैं और उनके कूल-प्रदेश में हीरे, मणि और स्वर्ण पाये जाते हैं जिनके कारण ये सरिताएँ प्रातःकालीन अंशुमाली की दिव्य छटा की भाँति जगमगाती रहती है।

यहाँ पर बहुत से सरोवर भी हैं जिनमें बहुत से कमल खिले हुए हैं। इन पुष्पों की पंखुड़ियाँ रत्नों से बनी हुई हैं और इनके पराग केशर स्वर्ण रंग के हैं। इन सरोवरों के तट पर कुसुमित वृक्षों से लताएँ लिपटी हुई हैं। यहाँ पर सन्तानक वृक्ष के वन भी हैं। ये वृक्ष फूलों से लदे हुए हैं।

यहाँ पर बहुत-सी ऐसी नदियाँ हैं जिनके तट अनेक प्रकार के सुन्दर मोती, चमकीले हीरे और सोने के द्वारा चित्र-विचित्र से बने हुए हैं।

यह प्रदेश भाँति-भाँति के हीरे-मोतियों से सजे हुए सुन्दर वृक्षों से आच्छादित है। इनमें से कितने ही वृक्ष तो अनि के समान प्रकाशमान हैं।

इस गोलोक में अनेक पर्वत स्वर्ण के बने हुए हैं और अनेक पहाड़ियाँ रत्न और मणियों से बनी हुई हैं। इनके उच्च शिखर अनेक प्रकार के रत्नों से जटित होने के कारण सौन्दर्य से चमकते हैं।

इस प्रदेश में उगे हुए वृक्ष सभी ऋतुओं में फूलते-फलते रहते हैं और सदेव सघन पत्रावलियों से आच्छादित रहते हैं। ये सदा ही दिव्य सुगन्ध विकीर्ण करते हैं। इन वृक्षों में लगे फल अति-मधुर होते हैं।

पुण्यशाली जन इस प्रदेश में सुख से विहार करते हैं। ये लोक दुःख और शोक से मुक्त होते हैं, उनकी प्रत्येक कामनाएँ वहाँ परिपूर्ण होती हैं; अतः वे वहाँ सन्तोष से समय व्यतीत करते हैं।

परम सुखदायी सुन्दर विमानों में बैठ कर ये पुण्यशाली तथा तेजस्वी लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं और खूब आनन्द-क्रीड़ा करते हैं।

अप्सराओं की मण्डलियाँ इन पुण्यशाली लोगों को सदा अपने नृत्य-गान से प्रमुदित करती रहती हैं। मनुष्य निश्चय ही अपने गोदान के पुण्य के फल-स्वरूप इस प्रदेश में प्रवेश पाता है।

जो प्रदेश परम शौर्यशाली पूषण और मरुत गणों के अधिकार में है, उस प्रदेश को गोदान करने वाला पा लेता है। समृद्धिशालियों में वरुणदेव सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गाय का दान करने वाले को वरुणदेव के समान समृद्धि प्राप्त होती है।

जो पुण्यशाली मानव आदर भाव से गाय की सेवा करते हैं और जो विनीत भाव से उनका आश्रय ग्रहण करते हैं, गोमाता उन पर प्रसन्न होती है और वे उससे अनेक अमूल्य वरदान प्राप्त करते हैं।

मनुष्य को हृदय से भी गाय को आघात नहीं पहुँचाना चाहिए। उन्हें सदा मुब पहुँचाना चाहिए। मनुष्य को गाय का आदर-सत्कार करना चाहिए और नतमस्तक हो उनकी पूजा करनी चाहिए।

१५. वैकुण्ठलोक

वैकुण्ठलोक के सभी निवासियों का स्वरूप विष्णु भगवान् की तरह होता है। वे सब निष्काम धर्माचरण द्वारा विष्णु भगवान् की उपासना करते हैं।

इस लोक में वेदज्ञेय महामहिम परमाद्य पुरुष विराजते हैं। वे रजोगुण में असंस्पृष्ट अपने शुद्ध सत्वगुण विग्रह में स्थित हो हम भक्तों को प्रमुदित करने के लिए अपने शुभाशीर्वाद की वर्षा हम पर करते हैं।

इस लोक में परमानन्द-धाम के नाम से प्रसिद्ध एक उपवन है जो काम्य फल प्रदान करने वाले वृक्षों से भरा पड़ा है। यह मोक्ष-धाम की तरह शोभायमान है।

इस वैकुण्ठलोक में मुक्त पुरुष अपनी प्रेयसी अप्सराओं के साथ विमान में बैठ कर विहार करते हैं। वे वहाँ की सुरभित वायु से सर्वथा उदासीन रहते हैं। जल के मध्य में मधु टपकाते हुए माधुरी लता के कुसुमों की सुगन्ध से चलायमान चित्त वाले ये मुक्त जन संसार के मल को विदूरित करने वाली भगवान् हरि की लीलाओं का सदा गान करते हैं।

इस वैकुण्ठलोक में भगवान् हरि की लीलाओं का गान-सा करता हुआ भ्रमरराज गुंजार करने लगता है तब कपोत, कोकिला, क्रौंच, सारस, कलहंस, चातक, शुक, तीतर तथा मयूर का कलरव एक क्षण के लिए शान्त हो जाता है।

इस वैकुण्ठलोक के उद्यान में मन्दार, कुन्द, कुरवक, उत्पल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग, बकुल, अम्बुज तथा पारिजात वृक्ष हैं। उनके पुष्प सुगन्ध से पूर्ण हैं। ये पुष्प तुलसी की तपश्चर्या को बहुत ही आदरणीय समझते हैं; क्योंकि उसकी सुगन्धि की प्रशंसा कर तथा मूल्यवान् समझ कर श्रीहरि ने तुलसी की माला को आभूषण के रूप में अपने कण्ठ में धारण कर रखा है।

यह वैकुण्ठलोक वैदूर्य, मरकत तथा स्वर्ण के विमानों से भरा हुआ है। जिनके मस्तक भगवान् के चरणों में नत रहते हैं, वे ही इन विमानों को देख सकते हैं। स्थूल नितम्ब तथा स्मित मुख वाली अप्सराएँ अपने मनोन्मत्तकारी मन्द हास्यों तथा अन्य काम-कलाओं से मुक्त पुरुषों को मोहित करती हैं; परन्तु जिन्होंने अपना हृदय भगवान् श्री कृष्ण को अर्पित कर दिया है ऐसे मुक्त पुरुषों में काम-भाव जाग्रत नहीं होता।

जिनकी कृपा-कोर की ब्रह्मादि सभी प्राणी याचना करते हैं, वे ही निष्कलंक लक्षणों वाली महालक्ष्मी देवी श्रीहरि के इस धाम में अपने सौम्य रूप में विराजती हैं। उनके हाथ स्वाभाविक रूप से लटक रहे हैं। उनके चरण-कमलों के नूपुर झंकृत होते रहते हैं। सोने के चौखट से मण्डित स्फटिक की दीवालों पर पड़ते हुए उनके प्रतिबिम्ब से ऐसा प्रतीत होता है मानो वे गृह-परिष्कार के कार्यों में संलग्न हैं।

यहाँ पर लक्ष्मी जी का अपना उद्यान है। उस उद्यान में विद्रुम की दीवालों से निर्मित एक वापी है जिसका जल अमृत के सदृश है। यहाँ पर तुलसी-पुष्प से भगवान् विष्णु की पूजा करते समय अपने सुन्दर चितवन और उन्नत नासिकायुक्त मुख का प्रतिबिम्ब भगवान् विष्णु के मुख के प्रतिबिम्ब के साथ इस वापी के जल में पड़ा देख कर लक्ष्मी जी को ऐसा लगता है कि भगवान् ने उनके मुख का चुम्बन किया है।

मन को विकृत बनाने वाली कथाओं के जो रसिक हैं, वे पापी जन इस विष्णुलोक में नहीं जाते हैं; क्योंकि उन कथाओं में भक्तों के पापनाशक भगवान् हरि की लीलाओं की चर्चा नहीं होती है। इन लौकिक कथाओं को सुनने से उन अभा मनुष्यों के सभी गुण विलीन हो जाते हैं और वे ऐसे घोर अन्धकारपूर्ण नरक में जा पड़ने हैं जहाँ किसी प्रकार की सहायता पहुँचना सम्भव नहीं होता।

जिसमें जन्म लेने से श्रेष्ठ धर्माचरण के द्वारा प्राणी सनातन सत्य का साक्षात्कार कर सकता है ऐसे देव-याचित मानवपन को पा कर भी कितने ही प्राणी ऐसे हैं जो सर्वव्यापी माया के भ्रम-जाल में पड़ कर परम कारुणिक भगवान् विष्णु का भजन-पूजन नहीं करते हैं।

जिनके गुण और आचार स्पृहणीय हैं, जो हम साधारण मानवों से बहुत ऊपर उठ चुके हैं, जिनके पास यमराज भी नहीं फटकते (अथवा जो यम-नियमों का अतिक्रमण कर चुके हैं) तथा भगवान् की सुखद महिमा की परस्पर चर्चा करते समय जिनके शरीर में रोमांच हो उठता है, जिनके नेत्रों से अश्रु-जल प्रवाहित होने लगता है तथा जिनके हृदय और मन में भगवान् का प्रगाढ़ प्रेम उमड़ पड़ता है, वे ही पुण्यशाली जीव यहाँ पर जाते हैं।

वैकुण्ठलोक सभी लोकों में विशेष प्रशंसनीय है। देवताओं और ज्ञानी जनों की परम सुन्दर और अलौकिक अट्टालिकाओं के कारण यह भव्य रूप से जगमगाता रहता है। संक्षेप में कहें तो यह एक दिव्य लोक है। यहाँ पर त्रिलोकीपति विष्णु भगवान् निवास करते हैं।

वैकुण्ठ में प्रवेश करने के लिए सात प्रवेश-द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर एक ही वब और रूप के दो पार्षद खड़े रहते हैं। उनके करों में गदा होती है। वे बहुमूल्य केयूर, कुण्डल और किरीट से सुशोभित होते हैं। वे अपनी चारों भुजाओं और कण्ठ में वनमाला धारण करते हैं। इन वनमालाओं पर प्रफुल्ल भ्रमर मँडराते रहते हैं। इनके मुख श्याम, भृकुटी कुटिल, नासिका मोटी और नेत्र अरुण होते हैं जिससे वे भयंकर प्रतीत होते हैं।

१६. सप्त-लोक

लोक सात है: भूलोक, भवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक । में मिट्टी के तेल से जलने, वाली लालटेन, सरसों के तेल से जलने वाला दीपक, गैप्स है जलने वाला पेट्रोमेक्स, मोमबत्ती, बिजली आदि विभिन्न प्रकार के प्रकाश-साधनों को एक ही समय में जलायें तो ये भिन्न-भिन्न प्रकाश कमरे में परस्पर अन्तस्थित होते हैं। ठीक इसी भाँति ऊपर के ये सातों लोक एक-दूसरे में अन्तर्व्याप्त हैं। प्रत्येक लोक के अपने विशेष द्रव्य (तत्त्व) होते हैं। इन द्रव्यों की घनता या स्थूलता का स्तर उन लोकों के उपयुक्त होता है। ये द्रव्य अपने से निम्नतर लोक के द्रव्यों में अन्तस्थित होते हैं।

भुवर्लोक भूलोक में अन्तर्व्याप्त है और इससे कुछ दूर आगे तक फैला हुआ है। इसी भाँति स्वर्गलोक भुवोंक में अन्तस्थित है और अन्तरिक्ष में उससे आगे तक फैला हुआ है। भुवर्लोक के स्पन्दन भूलोक के स्पन्दन से अधिक वेगवान् तथा चपल होते हैं। इसी भाँति सत्यलोक के स्पन्दन स्वर्गलोक के स्पन्दन की अपेक्षा अधिक वेगवान् तथा चपल होते हैं। प्रत्येक लोक में जीवात्मा नवीन तथा उच्चतर चेतना का अधिकाधिक विकास करता है।

जब आप एक लोक से दूसरे लोक में जाते हैं, तब आपको आकाश में चलना नहीं होता है। आप केवल अपनी चेतना को परिवर्तित करते हैं। आप केवल अपनी चेतना के लक्ष्य को बदलते हैं। जिस भाँति भिन्न-भिन्न शक्ति वाले भिन्न-भिन्न शीशों के प्रयोग से अथवा दूरवीक्षण तथा अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्य देख सकते हैं, उसी प्रकार आपके अन्दर इन भिन्न-भिन्न लोकों के अनुरूप भिन्न-भिन्न शरीर हैं जो इन लोकों में कार्यकर होते हैं।

जब आप स्वप्नावस्था में होते हैं, तब आपका सूक्ष्म-शरीर कार्य करता है और जब आप सुषुप्ति-अवस्था में होते हैं, तब आपका कारण शरीर काम करता है; इसी भाँति भुवर्लोक में आपका प्राणमय-शरीर काम करता है, स्वर्गलोक में आपका मनोमय-शरीर काम करता है और ब्रह्मलोक में आपका कारण-शरीर काम करता है। ये लोक विभिन्न श्रेणी की घनता वाले पदार्थों से बने हैं। स्वर्गलोक के तत्त्व भुवर्लोक के तत्त्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मतर हैं। ब्रह्मलोक के द्रव्य स्वर्गलोक के द्रव्यों से अधिक सूक्ष्म हैं। सभी लोक आकाश में एक ही स्थान में स्थित हैं। इस भाँति स्वर्ग भी यहीं है और ब्रह्मलोक भी यहीं है। प्रत्येक लोक के लिए भिन्न प्रकार का सूक्ष्मतर शरीर और भिन्न प्रकार के सूक्ष्मतर नेत्र चाहिए। यदि आप इन्हें प्राप्त कर लें, तो आप किसी भी लोक में रह सकते हैं।

इस भूलोक में मनुष्य नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों से पदाथों का ज्ञान प्राप्त करता है; परन्तु स्वर्ग में पृथक् पृथक् रहने वाली इन सीमित ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वह न देखता है, न सुनता है और न अनुभव ही करता है।

वहाँ उसे दिव्य चक्षु प्राप्त होते हैं जिनमें असाधारण क्रिया-शक्ति होती है। वह इस नवीन मानसिक दिव्य दृष्टि के द्वारा एक ही समय में सभी पदार्थों को देख और सुन सकता है तथा उनके विषय में कुछ जान भी सकता है। उसे सभी पदार्थों का ठीक तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। किसी भी बाह्य रूप से उसे भ्रान्ति अथवा पथ-विभ्रम नहीं होता। उस व्यक्ति में किसी प्रकार की भ्रान्त धारणा नहीं होती है।

अपने मन के अन्दर सभी ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति केन्द्रित है। मन ही सभी ज्ञानेन्द्रियों का मिश्रण अथवा योग है। इस भाँति मन देख सकता है, सुन सकता है, चल सकता है, सूंघ सकता है तथा स्पर्शानुभव कर सकता है।

यहाँ मानव अपने संकल्प अथवा इच्छा मात्र से सब-कुछ पा सकता है। यदि वह दिव्य विमान का विचार करता है, तो वह विमान तुरन्त उसके सामने आ उपस्थित होता है। यदि वह किसी स्थान का विचार करता है, वह तुरन्त उस स्थान में जा पहुँचता है। यदि वह किसी व्यक्ति का विचार करता है, तो वह व्यक्ति अविलम्ब ही उसके सामने आ खड़ा होता है। उसके लिए कोई दूरी नहीं है। उसे किसी प्रकार के वियोग का अनुभव नहीं होता। वह दूसरों के विचारों को पढ़ लेता है; अतः स्वर्गलोक में प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नहीं रहती है। विचारों का आदान-प्रदान यहाँ बहुत शीघ्र होता है।

यहाँ के प्राणियों को भूत तथा भविष्य का भी ज्ञान नहीं होता है। उनमें दूर-दृष्टि और दूर-श्रवण की क्षमता होती है। वे एक ही समय में अनेक रूप धारण कर सकते हैं।

स्वर्ग आनन्द-भोग के लिए एक लोक है। भूलोक में किये पुण्य-कर्मों के फल भोगने के लिए यह स्वर्गलोक एक स्थान है। यहाँ कोई नये कर्म नहीं कर सकता है। ग्रहाँ से कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। मोक्ष-साधन के लिए प्राणी को वहाँ से मर्त्यलोक में पुनः आना पड़ता है।

इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि-देव हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ पर कुछ कर्म-देव भी रहते हैं जिन्होंने इस भूलोक पर शुभ कर्म सम्पादन द्वारा देवत्व-पद प्राप्त किया है। देवों के तेजस् शरीर होते हैं। उनके शरीर में अग्नि-तत्त्व की प्रधानता होती है। देवताओं ने जो प्रगति की होती है, उस प्रगति की कक्षा के अनुरूप ही उनकी प्रतिभा तथा ज्योति भी भिन्न-भिन्न कक्षा की होती है।

देवताओं तथा स्वर्ग के अधिवासियों के लिए न दिन है और न रात्रि । वे न तो सोते हैं और न जागते ही हैं। जब वे स्वर्ग में प्रवेश करते हैं, तब वे अमित सुख अनुभव करते हैं; यही उनकी जाग्रतावस्था है। जब स्वर्ग के जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है, तब वे अचेत अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

ब्रह्मलोक ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ का लोक है। यह सत्यलोक के नाम से भी प्रसिद्ध है। जो लोग देवयान मार्ग से प्रयाण करते हैं, वे इस सत्यलोक को प्राप्त होते हैं। जो निष्काम भाव से पुण्य-कार्य करते हैं, जो शुद्ध सदाचारमय जीवन व्यतीत करते हैं, जो हिरण्यगर्भ की उपासना करते हैं, वे तथा साक्षात्कार-प्राप्त भक्त जन इस लोक को प्राप्त करते हैं।

वे लोग क्रम-मुक्ति को प्राप्त करते हैं। भगवान् के सभी दिव्य ऐश्वर्यों को ये - लोग भोगते हैं और प्रलय काल आने पर ब्रह्मा के साथ परब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।

जो भगवान् हरि के भक्त हैं, उन्हें ब्रह्मलोक वैकुण्ठलोक-सा प्रतीत होता है; उसी भाँति जो भगवान् सदाशिव जी के भक्त हैं, उन्हें यह ब्रह्मलोक कैलास अथवा शिवलोक-सा प्रतीत होता है। अतः भाव ही मुख्य है।

१७. अपार्थिव लोकों में निवास

मृत्यु तथा पुनर्जन्म के बीच का समय

लोग ठीक-ठीक यह जानना चाहते हैं कि शरीर छोड़ने के अनन्तर दूसरा शरीर धारण करने में कितना समय लग जाता है? क्या यह जीवात्मा एक वर्ष में नया शरीर धारण करता है? क्या नया शरीर धारण करने में उसे दश वर्ष लग जाते हैं? इस पृथ्वीलोक में पुनः आ कर स्थूल शरीर धारण से पूर्व, ऊपर के सूक्ष्म लोकों में जीवात्मा कितना समय लगाता है? ये उनमें से कुछेक प्रश्न हैं। अस्तु, इस विषय में कोई निश्चित अवधि नहीं है। इस विषय के निर्णय करने में दो बातें देखनी होती है-एक तो है व्यक्ति के किये हुए कर्म का स्वरूप और दूसरा है मरण-काल में उस व्यक्ति की अन्तिम भावना। यह अवधि सहस्रों वर्ष तक के दीर्घ काल से ले कर कुछ महीनों के अल्प काल तक हो सकती है। जो लोग अपने इहलौकिक कर्म के फल ऊपर के सूक्ष्म लोकों में भोगते हैं, वे इस भूलोक पर जन्म लेने से पूर्व सुदीर्घ काल लगा देते हैं। यह बीच का समय बहुत ही लम्बा होता है। इसका कारण यह है कि इस जगत् का एक वर्ष देवलोक के एक दिन के बराबर होता है।

इस विषय में एक गाथा उधृत की जाती है। एक बार प्राचीन अवशेष के दर्शनार्थ कुछ विदेशी पक्की पधारे उदे जब उस ध्वंसावशेष को देख कर आश्चर्य व्यक्त कर रहे थे और उसकी खूब प्रशंसा कर रहे थे, तब पास ही बैठे हुए एक सन्त पुरुष बतलाया कि अभी जो लोग इस अवशेष को देख कर आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं, उनमें से ही कुछ लोगों ने शताब्दियों पूर्व इस अवशेष-रूप में दृश्यमान् भवनों की रचना की थी और अब वे अपने ही हाथ की कलाओं को देख कर आश्चर्यचकित हो रहे हैं।

प्रबल वासना वाले इन्द्रिय-लोलुप व्यक्ति तथा अत्यन्त आसक्ति वाले व्यक्ि कभी-कभी बहुत शीघ्र ही जन्म ले लेते हैं। इनके अतिरिक्त जिनका जीवन-सूर अपमृत्यु अथवा किसी अप्रत्यासित आकस्मिक दुर्घटना के कारण भंग हो जाता है, वे जीव भी अपने उस भंग जीवन-सूत्र को पुनः तत्काल ही पकड़ लेते हैं। इस प्रकार की घटना अमृतसर की बालिका महेन्द्रा कुमारी के साथ हुई। सन् १९३९ के अक्तूबर माम में मृत्यु होने के पश्चात् सात महीने में ही उस बालिका ने दूसरा जन्म धारण किया। मृत्यु के समय उसकी अपने भाई से मिलने की इच्छा बहुत ही प्रबल थी। मृत्यु के अनन्तर शीघ्र ही पुनर्जन्म की जब ऐसी घटनाएँ होती हैं, तब ही जीव को प्रायः अपने पूर्व-जीवन के बहुत से प्रसंगों की स्मृति बनी रहती है। वह अपने पूर्व-जन्म के सम्बन्धियों तथा मित्रों को पहचानता है तथा पुराने घर एवं परिचित वस्तुओं को भी बतलाता है। इससे कभी-कभी बहुत ही विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कुछ उदाहरण ऐसे पाये गये हैं जब कि हत्या किये हुए व्यक्ति ने पुनः जन्म लेने पर बतलाया कि भूतकाल में वह किस प्रकार मारा गया था और साथ ही उसने उस हत्यारे की पहचान भी बतलायी।

उदाहरण-स्वरूप दिनांक २३-३-१९३६ के 'धर्म राज्य' में इस प्रकार की एक घटना प्रकाशित हुई थी। ग्वालियर के एक ग्राम में उस ग्राम के पटवारी (लेखपाल) ने उसी ग्राम के ठाकुर छोटेलाल जी के हित-विरोधी कुछ विवरण ग्राम के सरकारी कागजों में लिखे । पटवारी के इस व्यवहार से ठाकुर बहुत ही क्रोधित हुए और उससे इस अन्याय का प्रतिशोध लेने के लिए वे उसकी घात में छिपे रहे। उन्होंने पटवारी की छाती में गोली मारी और उसके दाहिने हाथ की उँगलियाँ काट डालीं। इस हत्याकाण्ड के कुछ काल पश्चात् यहाँ से लगभग १४ मील की दूरी पर एक व्यक्ति के यहाँ एक बालक उत्पन्न हुआ । उस बालक की छाती में बन्दूक की गोली के आघात का विड था तथा उसके दायें हाथ की अँगलियाँ नहीं थीं। जब वह बालक बोलने लगा, तब उसके पिता ने उससे एक दिन पूछा- "क्या भगवान् उँगलियाँ बनाना भूल गया था?" बालक ने तुरन्त ही उत्तर दिया- नहीं, छोटेलाल ठाकुर ने उसकी छाती में गोली मारी थी तथा उसकी उँगलियाँ काट डाली थीं।" उस बालक ने उस घटना का का विवरण बतलाया जो कि जाँच करने पर ठीक निकला ।

कितनी ही बार ऐसा पाया गया है कि पुनर्जन्म धारण करने वाले जीव अपने पहले छिपाये हुए धन के पास ठीक-ठीक जा कर उसे निकाल लाये हैं। परन्तु के अधिकांश जीवात्माओं में यह स्मृति नहीं रहती है। ऐसी स्मृति का न होना सर्वज्ञ परमात्मा का वरदान ही है। ऐसी स्मृति हमारे वर्तमान जीवन में बहुत-सी उलझनें ला देंगी। जब तक भूतकाल की स्मृति आपके लिए भली तथा लाभदायक नहीं, तभी तक वह आपसे ओझल रहती है। जब आप

पूर्णता प्राप्त कर लेंगे, जब आप जन्म-मरण के चक्र का अन्त पा लेंगे, तब आप इन सभी जीवनों को पुष्पमाला की भाँति एक ही व्यक्तित्व-सूत्र में गुँथे हुए पायेंगे।

मृत्यु के पश्चात् तुरन्त जन्म लेने की ऐसी घटनाएँ सामान्य नहीं हैं। एक मध्यम श्रेणी की जीवात्मा की मृत्यु के पश्चात् उसे पुनः जन्म लेने में इस मर्त्यलोक की काल-गणना के अनुसार साधारणतया बहुत ही अधिक समय लग जाता है। जिन लोगों ने प्रचुर मात्रा में पुण्य-कर्म किये होते हैं; वे इस भूलोक में पुनः जन्म ग्रहण करने के पूर्व सुदीर्घ काल तक देवलोक में निवास करते हैं। महान् आत्माएँ, आध्यात्मिक भूमिका में उन्नत जीव पुनर्जन्म के पूर्व चिरकाल तक प्रतीक्षा करते हैं।

मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच के समय में जीव-विशेषकर वे जीव जो मानसिक एवं आध्यात्मिक विषय में उन्नत हैं- आवश्यकतानुसार समय-समय पर भूलोक में मूर्त रूप धारण कर सकते हैं। वे मनुष्य का आकार धारण कर बातचीत करते हैं तथा शरीर के साथ स्पर्श करते हैं। इस प्रकार प्रकट किये हुए उनके उस रूप का फोटो भी लिया जा सकता है।

सूक्ष्म शरीर से उनका यह मूर्त रूप भिन्न प्रकार का होता है। सूक्ष्म शरीर सामान्य नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होता है। यह स्थूल शरीर का ठीक प्रतिरूप-उसका एक सूक्ष्म द्वित्व है। मृत्यु के अनन्तर जीवात्मा इस आतिवाहिक शरीर में ही प्रयाण करता है।

अस्तु, इतना तो निश्चित ही है कि यह प्राणमय चेतना आपको जन्म-मरण के की चक्र से मुक्त कराने का निश्चित आश्वासन नहीं दे सकती है। तन्त्र-ज्ञान और प्रेतात्म-विद्या आपको मोक्ष प्रदान नहीं कर सकते हैं और न जीवन के उस पार का पूर्ण रहस्योद्‌घाटन ही कर सकते हैं। आत्म-साक्षात्कार तथा आत्मज्ञान ही जीवन सदा मृत्यु की तथा मृत्यूपरान्त जीवन की गूढ़ पहेली को सुलझा सकते हैं।

सप्तम प्रकरण

प्रेतात्म-विद्याल

प्रेतात्म-विद्या

प्रकृति में होने वाली घटनाओं में मृत्यु यद्यपि एक अत्यन्त सामान्य दृश्य है। तथापि इसका रहस्य अभी तक बहुत ही कम समझा गया है। यह दर्शनशास्त्र के अत्यन्त कठिन प्रश्नों में से एक है; क्योंकि मृत्यु के समय तथा मृत्यूपरान्त वास्तव में होता क्या है? इस विषय का कोई अनुभूत प्रमाण प्रायः नहीं है।

योगी पुरुष योगाभ्यास द्वारा प्राप्त अपने दिव्य चक्षु से मृत्यु की घटना को भी भली प्रकार देख सकते हैं। महर्षि वसिष्ठ का यह दृढ़तापूर्वक कथन है कि उन्होंने सभी वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से ही प्राप्त किया था और उन्होंने मृत्यु के विषय में जो-कुछ कहा है, उसे अपनी अपरोक्षानुभूति के आधार पर ही कहा है।

साम्प्रतिक काल में मृत्यु-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयास पाश्चात्य जगत् में वहाँ की 'दी साइकिकल रिसर्च सोसायटी' नाम की संस्था का रहे है। यहाँ पर संग्रहीत तथ्यों के आधार पर कितने ही विचारकों को अब यह विश्वास है चला है कि मृत्यु मनुष्य के व्यक्तित्व का अन्त नहीं करती है।

सर ओलीवर लॉज ने इस विषय में बहुत से वैज्ञानिक प्रयोग किये। इससे उसे अब यह निश्चय हो गया है कि मृत्यु के अनन्तर भी जीवन बना रहता है। वे कहते हैं।

"मैं अभी जो कहने जा रहा हूँ, बहुत सम्भव है कि उससे यहाँ उपस्थित श्रोताओं की भावनाओं को आघात पहुँचे और वे मुझसे क्षुब्ध हो उठें। इस आशंका के होने पर भी मैं अपने साथियों तथा अपने प्रति न्याय करते हुए अपने इस विश्वास का लिपिबद्ध प्रमाण छोड़ जाता हूँ कि जिन चमत्कारी घटनाओं को अभी तक हम रहस्यमयी समझते रहे हैं, उनकी अब वैज्ञानिक पद्धति से सावधानी तथा दृढ़तापूर्वक प्रयोग से छानबीन की जा सकती है तथा उन्हें क्रमबद्ध भी बनाया जा सकता है से सावधानी तथा है। इ ही नहीं, इससे आगे बढ़ कर बहुत संक्षेप में मैं इस विषय में यह भी कहता है कि दिशा में की गयी अब तक की खोजों ने मुझे यह निश्चय दिला दिया है कि स्मृति आ प्रेम जिन तत्वों के सम्पर्क में आने पर ही यहाँ इस समय अपने को अभिव्यक्त कर सकते हैं, वे उन्हीं तक सीमित नहीं हैं और मेरा निश्चय यह भी है कि शारीरिक मृत्यु के पश्चात भी व्यक्ति का जीवन बना रहता है। मेरा मन इस तथ्य को स्वीकार करता रहता है कि असंग बुद्धि किन्हीं निश्चित संयोगों में हमारे साथ भौतिक क्षेत्र में कार्य कर सकती है और इस भाँति गौण रूप से यह विषय विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है।"

प्रेतात्मा के साथ बातचीत, मेज का झुकना, प्रेतों का खटखटाना, प्रेतात्मा का प्रकाश, प्रेतों के लेख, स्लेट के लेख, मूर्त रूप धारण करने वाला हाथ, ताश का उठाना, टिन का बजाना, प्लानचिट लेख (पहियेदार लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा होता है जिसमें पेन्सिल लगी रहती है और नीचे कागज रखा रहता है। इस पर हाथ रखने से मन की सोची हुई बात कागज पर लिख जाती है), ओझा संघ की हस्तकला तथा माध्यम के द्वारा बातचीत -इन सबका संसार में आविर्भाव होने के पश्चात् आधुनिक मनुष्य की प्रवृत्ति मृत्यूपरान्त जीवन के विषय में अधिकाधिक सोचने लग गयी है। प्राच्य तथा पाश्चात्य-दोनों ही देशों में इस विषय में बहुत से लेख स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो रहे हैं। पश्चिमी देशों में मन और आत्मा के विषय पर शोध करने के लिए बहुत-सी संस्थाएँ स्थापित हैं। इन सब शोधों का

शुभ परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के लोगों को अब यह दृढ़ विश्वास हो चुका है कि मृत्यु के उपरान्त भी आत्मा सजीव बनी रहती है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक आज आध्यात्मिक प्रगति में जहाँ तक पहुँच चुके हैं तथा प्रत्येक दृश्य पदार्थ को वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग कर खोज निकालने की उनकी जो जिज्ञासा है, उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे प्रमाण और प्रयोग की जो रीति प्रस्तुत करते हैं, उनसे वे आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान तथा उसकी खोज पा लेंगे। पवित्र भारतीय शास्त्रों के वातावरण में उत्पन्न तथा पले हुए प्राच्य दर्शन के एक जिज्ञासु के लिए तो जीवात्मा का अस्तित्व तथा उसका आवागमन उसके दर्शन के अभ्यास का प्रथम पाठ है; परन्तु पाश्चात्य विचारकों के लिए तो यह सिद्धान्त उनकी आज तक की सभी गवेषणाओं के प्रायः अन्तिम परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ है।

अध्यात्मवाद की विचारधारा के अनुसार मृत्यु के अनन्तर हमें जहाँ जाना है, उस परलोक में बहुत से प्रदेश हैं। हमारी विभिन्न आध्यात्मिक भूमिका के अनुरूप इन प्रदेशों के प्रकाश तथा सुख में सूक्ष्म भेद होता है। परलोक के उन प्रदेशों में विशेष रूप से इस लोक के ही दृश्यों तथा सुख-सुविधाओं का नव-निर्माण किया गया है। वहाँ के समाज की रचना भी सामान्यतः यहाँ की ही तरह है। देवदूतों की उपस्थिति से मृत्यु सरल हो जाती है। ये देवदूत परलोक के नवागन्तुकों को उनके धाम तक पहुँचाते हैं।

जो जीवन्मुक्त तथा महान् ऋषि परब्रह्म में विलीन हो गये हैं, उनकी आत्माएं प्रार्थना, प्रेतावाहन अथवा माध्यम आदि की किसी भी क्रिया द्वारा पुनः बुलायी नहीं जा सकती हैं।

मृत व्यक्ति की जीवात्मा अपने पहले के सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम रख सकती है। यह इस लोक में पीछे छूटे हुए अपने कुटुम्बी से से बातचीत कर सकती है।

कितने ही मरणासन्न व्यक्तियों की अपने बालकों के लिए अत्यन्त प्रगाढ़ आसक्ति होती है। यदि घर में उनके बालकों की सँभाल करने वाला व्यक्ति न हो तो मृत्यु के पश्चात् वे प्राणमय-शरीर धारण कर अपने सम्बन्धियों के सम्मुख प्रकट होते हैं और उन्हें सन्देश देते हैं। इस प्रकार के बहुत से लेख पाये जाते हैं।

जिनकी आसक्ति अपने कुटुम्बी जनों में रह जाती है, ऐसी कितनी ही प्रेतात्माएं इस लोक की वासना से बंध जाती हैं। वे आत्माएँ उन कुटुम्बी जनों के आस-पास मँडराया करती हैं। वे उनके निकट सम्पर्क में रह कर उनकी सहायता करने का प्रयत्न करती रहती हैं। वे अपने कुटुम्बी जन की प्रेम-पात्र बने रहने के लिए भी प्रयत्नशील रहती हैं। उन्हें अपने व्यक्तित्व की चेतना रहती है। उन लोगों को यह पता नहीं होता कि वे मर चुके हैं।

एक मनुष्य अपने कमरे में बैठा हुआ किसी गूढ़ प्रश्न के विषय में सोच रहा था। वह कमरे में अकेला था और कमरा बन्द था। उसने अपने छाया रूप 'डबल' को देखा। यह उसके ही रूप और आकार के समान था। यह छाया रूप उसके शरीर में बाहर निकल कर मेज के पास गया, हाथ में कागज-पेन्सिल ली और उस प्रश्न को हल करके उसका उत्तर कागज पर लिख दिया। यह छाया रूप उस व्यक्ति का प्राण रूप था। यह स्थूल पार्थिव शरीर से स्वतन्त्र रह सकता है। यूरोप और अमेरिका को साइकिकल रिसर्च सोसायटी में इस विषय के अनेक लेख हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आत्मा है और उसका अस्तित्व स्थूल शरीर से सर्वथा पृथक् है।

मरणोपरान्त जीव अपनी सभी कामनाओं को अपने साथ ही ले जाता है वह केवल संकल्प मात्र से अपने भोग-पदार्थों को रचता है। यदि वह नारंगी का विचार करता है, तो नारंगी वहाँ आ उपस्थित होती है और वह उसे खाता है। यदि वह चाय का विचार मन में लाता है, तो चाय आ पहुँचती है और वह उसे पीता है।

जो व्यक्ति स्वर्ग में सुरापान करना, स्वादिष्ट फल खाना, दिव्यांगनाओं के साथ विहार करना तथा विमान में विचरण करना चाहता है, वह एक ऐसे चेतना-जगत् में प्रवेश करता है जहाँ वह अपने इन विचारों की कल्पना करेगा और इस भाँति अपना स्वर्ग बनायेगा।

प्रेतात्म-विद्या के आधुनिक जानकारों ने उन देह-वियुक्त प्रेतात्माओं के अस्तित्व के विषय में बहुत ही अद्‌भुत प्रयोग प्रदर्शित किये हैं जो कि अपने स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवित रहती हैं। इसने पश्चिम के कोरे भौतिकवादियों तथा नास्तिकों की आँखें खोल दी हैं।

कितनी ही भली प्रेतात्माओं को भविष्यवाणी, दूर-दर्शन तथा दूर-श्रवण की सिद्धियाँ होती हैं। उन्हें अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से प्रेम तथा मोह होता है और वे उनकी सहायता करने का प्रयत्न करती हैं। वे उन्हें आसन्न संकट से बचाने के लिए चेतावनी भी देती हैं।

मृत्यु के पश्चात् देह-वियुक्त जीवात्मा कुछ काल तक इस भूलोक की वासनाओं से बंधा रहता है। वह इसके लिए अपने सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों से सहायता की आशा करता है। प्रेतात्माओं को भूलोक के बन्धन से मुक्त होने तथा प्रगति कर अपने शुभ कर्मों के फल भोगने के लिए पितृलोक में प्रवेश पाने में उनके कुटुम्बियों तथा मित्रों द्वारा उनके निमित्त की हुई प्रार्थना, कीर्तन, श्राद्ध, दान तथा सद्विचार विशेष सहायक होते हैं।

इन प्रेतात्माओं को पारमार्थिक सत्य का ज्ञान नहीं होता है। वे आत्म- साक्षात्कार के विषय में दूसरे लोगों की कोई सहायता नहीं कर सकती हैं। इनमें से कितनी ही प्रेतात्माएँ तो मूर्ख, ठग तथा अज्ञानी होती हैं। ये भूलोक से बँधी हुई आत्माएँ माध्यम को अपने अधिकार में रखती हैं तथा परलोक के विषय में पूर्व ज्ञान रखने का दम्भ करती हैं। वे असत्य भाषण करती हैं। वे दूसरी प्रेतात्माओं का रूप धारण कर जनता को ठगती हैं। वे बेचारे भोले माध्यम अपनी धूर्त प्रेतात्माओं के छल को नहीं जानते हैं। प्रेतात्म-विद्या के जानकार इन प्रेतात्माओं की कृपा प्राप्त करने तथा उनके द्वारा पारलौकिक ज्ञान प्राप्त करने की आशा में अपने समय, शक्ति और धन को व्यर्थ ही नष्ट करते हैं।

प्रेतात्म-विद्या के इन जानकारों को मरण के समय प्रेतात्मा का ही विचार आता है। उन्हें ईश्वर-सम्बन्धी श्रेष्ठ विचार नहीं आते हैं। अतः मरणोपरान्त प्रेतात्म-विद्या के जानकार प्रेतलोक में ही प्रवेश करेंगे। इन प्रेतात्माओं के साथ बातचीत आदि का व्यवहार रखने से ऊपर के आनन्दमय प्रदेशों की ओर उनकी प्रगति में अवरोध आ जाता है और वे पृथ्वीलोक की वासना में बंध जाती हैं। अतः प्रेतात्माओं के साथ प्रेतलोक के विषय में बातचीत करने के अपने व्यर्थ के कौतूहल को त्याग दीजिए। इससे आपको कोई स्थायी तथा ठोस लाभ नहीं होगा। आप उनकी शान्ति को भंग करेंगे।

किसी भी व्यक्ति को अपने को माध्यम नहीं बनने देना चाहिए। माध्यम बनने वाले व्यक्ति अपनी आत्म-संयम-शक्ति खो बैठते हैं। इन माध्यमों की प्राण-शक्ति, जीवन-शक्ति तथा बौद्धिक शक्ति का उपयोग वे प्रेतात्माएँ करती हैं जिनके वश में वे माध्यम होते हैं। इन माध्यम-व्यक्तियों को कुछ भी उच्चतर ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। प्रेतात्म-विद्या के जानकारों का यह कथन है कि 'ये प्रेतात्माएँ देवदूत हैं।' ये तो पृथ्वीलोक से बँधी हुई आत्माएँ हैं।

ये प्रेतात्माएँ चित्रकला तथा टाइप का काम करती हैं। प्रेतात्माएँ आध्यात्मिक मण्डलियों में मूर्त रूप धारण करती हैं। वे श्वेत कुहासे जैसे पदार्थ में रूपान्तरित हो अदृश्य हो जाती हैं। स्लेट पर स्वयं-लेखन की क्रिया के समय आप पेन्सिल की आवाज सुन सकते हैं। जब प्रेतात्मा स्लेट पर लिखती रहती है, उस समय आप कोमल आघात का अनुभव करेंगे। प्रेतात्माएँ अपना हाथ आपके शरीर के ऊपर रख सकती हैं तथा आपकी कमीज, टाई इत्यादि को पकड़ सकती हैं।

आप अपने विचारों एवं कार्यों के द्वारा अपने प्रारब्ध, चरित्र तथा भविष्य का निर्माण करते हैं। यहाँ और इसके पश्चात् भी आपके अनुभवों का अन्त नहीं होगा। आपका जीवन चालू रहेगा। आपको इस जगत् में पुनः आना और जन्म लेना पड़ेगा। पूर्णता की प्राप्ति का प्रयत्न कीजिए, और उस उत्तम पद को प्राप्त कीजिए जहाँ पर न जन्म है और न मृत्यु, और न ही वहाँ शोक, सन्ताप तथा दुःख हैं। अपने हृदय-गुहा-वासी शाश्वत आत्मा का ध्यान कीजिए। अपने को यह पंचभौतिक विनश्वर शरीर न समझिए । आत्म-साक्षात्कार कीजिए और मुक्त बनिए । अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर पूर्ण शान्ति, शाश्वत सुख, अनन्त आनन्द तथा अमरत्व को प्राप्त कीजिए ।

अष्टम प्रकरण

मृतकों के लिए श्राद्ध तथा प्रार्थना

१. श्राद्ध-क्रिया का महत्त्व

हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ वेद के कर्मकाण्ड में मनुष्य के लिए उसके वर्ण और आश्रम के अनुसार विविध प्रकार के कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं। मनुस्मृति नामक ग्रन्थ में इन सभी विधानों का समावेश है। यह मनुस्मृति हिन्दुओं के शासन और आचार का ग्रन्थ है। अपने राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्राचीन काल

के राजा-महाराजा तथा शासक वर्ग इस ग्रन्थ में निर्देशित नियमों का अनुसरण करते थे। मनुस्मृति में मानव-समाज को चार भागों में विभाजित किया गया -है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसके अतिरिक्त उसने वैयक्तिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भी चार विभाग किये हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । ब्रह्मचर्य विद्यार्थी-जीवन है, गृहस्थ विवाह कर सन्तति-प्रजनन तथा परिवार-पालन का जीवन है, वानप्रस्थ वन में रह कर धार्मिक नियमों के पालन का समय है और सबसे अन्त का संन्यास-जीवन सभी सांसारिक प्रवृत्तियों को त्याग कर तपस्वी का जीवन व्यतीत करना है। ये ही जीवन के चार आश्रम हैं।

आधुनिक सभ्यता तथा मानव जीवन में अध्यात्म-भावना की अवनति होने के कारण समाज की उपर्युक्त वर्णाश्रम-व्यवस्था का धीरे-धीरे ह्रास हो चला। रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न भौतिकता की आसुरी शक्तियों ने सत्त्वगुण की शक्तियों को अभिभूत कर लिया है और इससे अब जीवन में धर्म को गौण स्थान दिया जाने लगा है। इतना ही नहीं, धार्मिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को आजकल तिरस्कार की दृष्टि से भी देखा जाता है। आज के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले आधुनिक नवयुवकों को शिखाधारी साधक अथवा भक्त जन भले नहीं लगते हैं।

धर्मग्रन्थों का पाठ, धार्मिक व्रतों का पालन, मध्यम स्तर का आध्यात्मिक जीवन तथा सदाचारमय सच्ची संस्कृति को अनावश्यक तथा पुरातन बतला कर इनका प्रतिवाद किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप ये आज अपना महत्त्व खो बैठे हैं। आज जीवन की समस्या बहुत ही गम्भीर हो चली है। वर्तमान युग में जीवन को बनाये रखने के लिए घोर संग्राम करना पड़ता है। भोजन तथा भोग-विलास के साधनों के प्रश्न ने आज धर्म का स्थान ले लिया है।

शास्त्रों ने गृहस्थ के लिए पाँच महायज्ञ अनिवार्य बतलाये हैं। इन यज्ञों के न करने से गृहस्थ को प्रायश्चित्त करना पड़ता है। वे पाँच महायज्ञ ये हैं—१. देव-यज्ञ, २. ऋषि-यज्ञ, ३. पितृ-यज्ञ, ४. भूत-यज्ञ, तथा ५. अतिथि-यज्ञ ।

इनमें श्राद्ध-क्रिया पितृ-यज्ञ के अन्तर्गत आती है। यह प्रत्येक गृहस्थ का एक पवित्र धर्म है। प्रत्येक गृहस्थ को अपने पितरों की श्राद्ध-क्रिया करनी चाहिए। पितृ गण हमारे पूर्वज हैं जो पितृलोक में निवास करते हैं। उन पितृ गणों के पास दूर-श्रवण तथा दूर-दर्शन की अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। जब श्राद्ध के मन्त्र पढ़े जाते हैं, तब वे मन्त्र अपने स्पन्दनों द्वारा पितरों पर बहुत ही गम्भीर प्रभाव डालते हैं। दूर-श्रवण की शक्ति द्वारा ये पितर गण मन्त्र-ध्वनि को सुनते हैं और प्रसन्न होते हैं। जो उन्हें श्राद्ध-तर्पण देता है, उसे वे आशीर्वाद देते हैं। श्राद्ध में जो पिण्ड दान दिया जाता है, उसका सार भाग सूर्य की किरणों से ऊपर सूर्यलोक में पहुँचता है और पितर गण इससे प्रसन्न होते हैं। जर्मनी तथा दूसरे पाश्चात्य देशों में भी श्राद्ध और तर्पण की क्रियाएँ वहाँ के बहुत से व्यक्ति करते हैं। उन्होंने इस प्रकार के दान के लाभप्रद प्रभाव का वैज्ञानिक ढंग से अनुसन्धान किया है। ऋषियों और पितरों को प्रसन्न करने के लिए श्राद्ध और तर्पण की इन क्रियाओं को करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य कर्तव्य है। गीता और उपनिषद् इस बात को स्पष्ट रूप से पुष्ट करते हैं कि श्राद्ध-क्रिया परम आवश्यक है। उलटी बुद्धि वाले भ्रान्त जीव ही इसका गलत अर्थ लगाते हैं तथा धार्मिक कृत्यों के करने में टाल-मटोल करते हैं और उसके परिणाम-स्वरूप दुःख भोगते हैं। झूठे वाद-विवाद तथा तर्क के आधार पर वे पथ-भ्रष्ट हो चले हैं। आसुरी शक्तियाँ बड़ी सुगमता से उन पर अपना प्रभाव डाल लेती हैं। इस प्रकार के काम करने का मूल कारण उनका अज्ञान ही है।

यह श्राद्ध-क्रिया वर्ष में एक बार की जाती है। कारण यह है कि मानव- काल-गणना का एक वर्ष पितरों के एक दिन के बराबर होता है। प्रति वर्ष एक बार श्राद्ध-क्रिया करने का यही कारण है कि यदि हम प्रति वर्ष एक बार श्राद्ध-क्रिया करें, तो वह पितरों के लिए दैनिक क्रिया के समान होगी। इस भाँति उन पितरों की काल- गणना के अनुसार उनकी सन्तानें बहुत थोड़े ही दिन इस संसार में जीवित रहती हैं, क्योंकि मनुष्य की अधिक-से-अधिक आयु सौ वर्ष की होती है और ये सौ वर्ष पितरों के लिए तो केवल सौ दिन ही हैं।

कितने ही व्यक्ति इस प्रकार की शंका करते हैं कि 'जब जीव परिवर्तन पाता है और इस स्थूल देह का परित्याग कर दूसरा जन्म लेता है, तब क्या हमें उसके लिए आदि-तर्पण करना आवश्यक है? क्योंकि वह जीव स्वर्ग में तो रहता नहीं है, तो फिर यह श्राद्ध-दान किसको प्राप्त होगा ?' गीता के नवें अध्याय में भगवान् श्री कृष्ण ने इस बात को स्पष्ट रीति से बतलाया है कि 'स्वर्ग की प्राप्ति के लिए जो पुण्यशाली लोग यज्ञ-याग आदि क्रिया करते हैं, वे अपने पुण्य भोगने वाले लोकों को प्राप्त होते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं। इस भाँति वेदत्रय विहित कर्म के अनुष्ठान में तत्पर कामना-परायण लोग आवागमन को प्राप्त होते हैं' (गीता : ९-२१) ।

मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा पुण्य-कर्म के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में पुनः जन्म लेना होता है-इस बात को गीता की यह वाणी सिद्ध करती है। श्राद्ध की क्रिया करने से स्वर्ग के भोगों में तथा आत्मा की शान्ति में वृद्धि होती है। स्वर्गलोक के अतिरिक्त अन्य लोकों में जीव को अपने कर्मानुसार जो कष्ट भोगने पड़ते हैं, वे उनके पुत्रों द्वारा श्राद्ध-कर्म करने से कम हो जाते हैं। इस भाँति श्राद्ध की क्रिया दोनों ही रूपों में बहुत ही सहायक होती है। पितर गण पितृलोक अथवा चन्द्रलोक में दीर्घ काल तक निवास करते हैं।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार यदि यह भी मान लिया जाये कि जीवात्मा को मृत्यु के अनन्तर तुरन्त ही दूसरा जन्म लेना पड़ता है, तो भी श्राद्ध-क्रिया उसके नवीन जन्म में सुख की वृद्धि करती है। अतः अपने पितरों के लिए श्राद्ध-क्रिया करना प्रत्येक गृहस्थ का अति-आवश्यक कर्तव्य है। आपको आजीवन परम श्रद्धापूर्वक श्राद्ध-क्रिया करनी चाहिए। श्रद्धा ही धर्म का मुख्य आधार है। प्राचीन काल में तो श्राद्ध की क्रिया करनी चाहिए अथवा नहीं', यह प्रश्न ही नहीं उठता था। उस समय मनुष्यों में पूरी-पूरी श्रद्धा थी तथा वे शास्त्रों का सम्मान करते थे। आज के दिन जब कि श्रद्धा शून्य-सी हो चली है तथा जब कि श्राद्ध न करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है, तब दूसरे लोगों की भी श्रद्धा चलायमान हो जाती है और वे ऐसी शंका करने लगते हैं कि श्राद्ध-क्रिया करना आवश्यक है अथवा नहीं तथा यह कि श्राद्ध-क्रिया से क्या कोई शुभ फल होगा? शास्त्रों में हमारी श्रद्धा के अभाव के कारण ही हम अपनी वर्तमान शोचनीय अवस्था तक पतित हुए हैं। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्"- श्रद्धावान् को ज्ञान प्राप्त होता है और उससे अमरता और शान्ति प्राप्त होती है। यह गीता की घोषणा है।

कुछ लोग तर्क करते हैं और कहते हैं कि यदि किसी व्यक्ति ने गया तथा अन्य प्रसिद्ध तीर्थों में जा कर अपने पितरों के लिए एक बार श्राद्ध-क्रिया कर दी हो, तो फिर उसे प्रति वर्ष श्राद्ध की क्रिया करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। यह कोई सामान्य नियम नहीं है और न यह सब पर लागू ही होता है। यह किन्हीं विशेष अपवाद-स्वरूप अवस्थाओं में ही लागू होता है। यदि मनुष्य इस अपवाद का आश्रय ले और गया में एक बार पिण्डदान आदि करके श्राद्ध-क्रिया करना बन्द कर दें तो यह केवल उसका अज्ञान ही है। ये लोग श्राद्ध-क्रिया को केवल भार-रूप मानते हैं और उससे बचना चाहते हैं। उन्होंने अपने कर्तव्य का समुचित परिपालन नहीं किया।

शास्त्रीय ग्रन्थों ने मानव-जाति के ऊपर जो भिन्न-भिन्न धार्मिक क्रियाएँ थोपी हैं, वे अज्ञानी जनों को शुद्ध करने के लिए ही हैं। कर्म-फल का लक्ष्य अन्तःकरण को शुद्ध बनाना है। श्राद्ध-क्रिया भी शास्त्र के विधानानुसार एक अनिवार्य कर्तव्य है और अन्तःकरण को पवित्र बनाती है। इसके अतिरिक्त पितर गण भी प्रसन्न होते हैं और उनकी शुभकामनाएँ तथा उनके आशीर्वाद हमारी भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं।

जो मनुष्य पुत्र के बिना मरते हैं, उन्हें परलोक में दुःख भोगना पड़ता है; परन्तु यह बात नित्य ब्रह्मचारी और आध्यात्मिक साधकों पर लागू नहीं होती जो कि सभी स्वार्थमयी कामनाओं और लौकिक प्रवृत्तियों को त्याग कर अध्यात्म-पथ का अनुगमन करते हैं। यही कारण है कि लोग मरने से पूर्व दत्तक पुत्र लेते हैं जिससे कि बह उनके मरण के अनन्तर उनकी विधिवत् श्राद्ध-क्रिया करता रहे। गीता भी इस मत का पोषण करती है : "**पतन्ति**

पितरो ह्यषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः "उनके पितर पिण्डदान तथा तर्पण का लोप हो जाने से अधोगति को प्राप्त होते हैं।

परन्तु यदि एक मनुष्य धार्मिक मनोवृत्ति वाला है और उसमें विवेक तथा वैराग्य है, यदि उसकी वेदों तथा शाखों में श्रद्धा है, यदि वह अपने जीवन के अन्तिम समय तक धार्मिक जीवन व्यतीत करता रहा है तथा यदि वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों को जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि में बिताता रहा है, तो यदि उसके पुत्र न हो तो भी उस व्यक्ति का पतन नहीं होता। वह अवश्य ही पूर्ण शान्ति का उपभोग करेगा। उसे अज्ञान के प्रगाढ़ अन्धकार का अनुभव नहीं करना पड़ेगा। संसार के निम्न आकर्षणों से वह मुक्त रहेगा। ईश्वर उसकी प्रगति की सँभाल रखता है। उसमें आत्म-समर्पण की भावना होती है, अतः उसके पतन का भय नहीं रहता है। उसे मानसिक शुद्धता प्राप्त हुई रहती है। सभी धार्मिक क्रियाओं का उद्देश्य चित्त-शुद्धि ही है। इस चित की शुद्धि को मनुष्य अपने पिछले संस्कारों तथा पूर्व-जन्म के धर्मपरायण जीवन के प्रताप से प्राप्त करता है।

भारत में किसी-किसी जाति के लोग श्राद्ध-क्रिया के पीछे केवल दिखावे के लिए विपुल धनराशि अन्धाधुन्ध व्यय करते हैं। यह अपव्यय है। विलासिता के लिए धन नष्ट नहीं करना चाहिए। यह सोचना भूल है कि अधिक धन व्यय करने से पितरों को अधिक शान्ति प्राप्त होगी। पितरों की शान्ति में धन कोई महत्त्व नहीं रखता है। जिस भाव से श्राद्ध किया जाता है, उसकी गम्भीरता ही इस विषय में मूल्यवान् है।

श्राद्ध के ऐसे अवसरों पर निर्धन तथा योग्य व्यक्तियों को भली प्रकार भोजन कराना चाहिए तथा उनके जीवन की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी चाहिए। ऐसे दिनों में शास्त्रों का पाठ कराना चाहिए। श्राद्ध-क्रिया करने वाले व्यक्ति को स्वयं भी जप, ध्यान, मौन इत्यादि आध्यात्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। उसे उस समय ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करना चाहिए। उसे प्रमाद में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। सारा दिन उसे भगवान् के भजन-कीर्तन में लगाना चाहिए। समयोपयुक्त वैदिक सूक्तों का पाठ कराना चाहिए। उपनिषद् में दी हुई नचिकेता की कथा सुननी चाहिए। इस प्रकार से श्राद्ध करने वाले यजमान को अमरता प्राप्त होती है।

वैदिक धर्म का पुनरुत्थान कीजिए। सन्मार्ग का अनुसरण कीजिए। श्राद्ध- क्रियाओं को कीजिए। धर्म-मार्ग के प्रति अपने प्रमाद और उदासीनता को दूर हटाइए। उठिए; जागिए! सत्य के मूल को पकड़िए। अपने वर्णाश्रम-धर्म में टिके रहिए। अपने कर्तव्य के पालन से बढ़ कर कोई यज्ञ नहीं। गीता का नित्य पाठ कीजिए। संसार में रहिए; परन्तु उसमें निमग्न मत बनिए। गीता के उपदेशों को आत्मसात् कीजिए। अपने जीवन में तथा प्रभु-साक्षात्कार में भी सफलता प्राप्त करने का यह एक सर्वाधिक निश्चित मार्ग है।

आप अनन्त आत्मा के आनन्द का अनुभव करें! अपने स्वधर्म के नियमित आचरण, हरि-नाम के कीर्तन, दीन-दुःखियों की सेवा, सन्मार्ग के अनुसरण, वेदों के नित्य स्वाध्याय तथा आत्मा पर ध्यान के द्वारा आप ब्रह्म के अजर-अमर पद को प्राप्त करें। आपको अपने कार्यों में भगवान् का मार्ग-दर्शन प्राप्त होता रहे!

२. दिवंगत आत्मा के लिए प्रार्थना और कीर्तन

प्रार्थना और सद्-कामना तथा कीर्तन इत्यादि दिवंगत आत्मा की सहायता करते हैं। संसार के प्रायः सभी धर्मों में मृत व्यक्ति के लिए प्रार्थनाएँ महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं। कैथोलिक गिरजाघरों में मृत व्यक्ति के लिए प्रार्थना की जाती है।

प्रार्थना आकाशवाणी के सिद्धान्त की भाँति कार्य करती है और वह सद्भावनाओं की लहरियों को उसी भाँति प्रसारित करती है जैसे कि आकाशवाणी शब्द की लहरियों को प्रसारित करती है।

भजन अथवा कीर्तन एक प्रबल शक्ति है जो मृत व्यक्ति की आत्मा को स्वर्ग के मार्ग में आगे बढ़ने में तथा स्वर्ग तक जाने के बीच के मार्ग में सहायता देती है।

मृत्यु होने के पश्चात् तुरन्त ही मृत व्यक्ति की जीवात्मा मूर्च्छावस्था में होती है। उसे यह पता नहीं होता कि वह अपने पूर्व के स्थूल भौतिक शरीर से वियुक्त हो गयी है। उसके मित्र और सम्बन्धी उसके लिए जो प्रार्थना, कीर्तन और सद्भावना करते हैं, उनसे उस दिवंगत आत्मा को बहुत ही आश्वासन प्राप्त होता है। वे सब एक शक्तिशाली स्पन्दन का निर्माण करते हैं और उससे वे जीव को उसकी मूर्च्छावस्था से जगाते हैं और उसे पुनः सचेत करते हैं। अब उस मृत व्यक्ति की जीवात्मा को यह अनुभव होने लगता है कि वह अब वास्तव में अपने स्थूल भौतिक शरीर में नहीं है।

तत्पश्चात् जीवात्मा मर्त्यलोक की सीमा को-एक पतली नदी को पार करने के लिए प्रयत्नशील होता है। इस नदी को हिन्दू लोग वैतरणी, पारसी चिन्वत सेतु तथा मुसलमान सीरात कहते हैं।

मरने वालों के लिए उनके सम्बन्धी जन जब रोते-पीटते तथा असह्य खेद प्रकट करते हैं, इससे उन दिवंगत आत्माओं को बहुत ही दुःख पहुँचता है और उन्हें ऊपर के लोकों से नीचे खींच लाता है। यह उसकी स्वर्ग-यात्रा में रोड़े अटकाता है। इससे उन्हें बहुत बड़ा आघात पहुँचता है। जब वे शान्ति में निमग्न हो रहे होते हैं और जब वे स्वर्ग की अलौकिक जाग्रति के लिए तैयारी कर रहे होते हैं, ऐसे समय में उनके प्रेमी और सम्बन्धी जन रोने-बिलखने से उनके इहलौकिक जीवन की स्मृति सजीव बनाते हैं। सगे-सम्बन्धियों के विचार उन जीवात्माओं के मन में सहधर्मी स्पन्दन उत्पन्न करके उनमें असह्य कष्ट और बेचैनी उत्पन्न करते हैं।

अतः दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए उसके सगे-सम्बन्धी तथा प्रेमी जनों को प्रार्थना तथा कीर्तन करने चाहिए। इस भाँति ही वे दिवंगत आत्मा को सच्ची सहायता तथा सान्त्वना दे सकते हैं। यदि दश-बारह व्यक्ति एकत्र हो कर प्रार्थना और कीर्तन करें, तो निश्चय ही अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावकर होगा। सामूहिक भजन-कीर्तन का अद्भुत प्रभाव पड़ता है।

३. मरणासन्न व्यक्ति के पास शास्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है?

मनुष्य किसी निश्चित उद्देश्य को ले कर इस संसार में जन्म धारण करता है। इन्द्रिय-सुख भोगने के लिए ही उसने इस संसार में जन्म नहीं लिया है। मानव-जीवन का ध्येय आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवद्-दर्शन है। हमारे जीवन की विविध प्रकार की प्रवृत्तियों का अन्तिम उद्देश्य इस लक्ष्य को प्राप्त करना ही होना चाहिए, अन्यथा यह जीवन निरर्थक ही होगा। यदि मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता, तो उस मनुष्य के जीवन में और पशु के जीवन में कोई अन्तर नहीं है।

गीता में आप देखेंगे कि 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त समय में जो मुझको स्मरण करते-करते शरीर का त्याग करता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है' (गीता : ८-५) ।

मृत्यु-काल में जब रोग शरीर को कष्ट पहुँचाते रहते हैं, जब चेतना धुँधली पड़ जाती है, उस समय ईश्वर-भाव को बनाये रखना बहुत ही दुष्कर है। कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य को किस लिए साधु बन जाना चाहिए और उसे किस लिए अपना जीवन हिमालय में व्यतीत करना चाहिए? आवश्यकता तो इस बात की है कि मरण के समय मनुष्य भगवान् को स्मरण करे और यह बात घर बैठे भी हो सकती है-यह एक भूल है।

यदि भगवान् की पूर्ण कृपा हो, तभी मरण-काल में मनुष्य को भगवान् का विचार आता है। आपको प्रभु के नाम स्मरण का अभ्यास प्रति दिन, प्रति घण्टा तथा प्रति क्षण करना चाहिए। यदि आप अपने जीवन-भर सतत अभ्यास करके दृढ़ संस्कार बना लेंगे, तभी मृत्यु-काल में भगवान् को स्मरण करना आपके लिए सरल होगा। इसके लिए आपको किसी सन्त-महात्मा की संगति में रह कर इसकी शिक्षा प्राप्त करनी होगी और तत्पश्चात् आपको सुसंयमित जीवन यापन करना होगा। यदि आप संसार में रहते हुए यह सब-कुछ कर सकें, तो आपके आत्म-विकास के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इस भाँति आप संसार में रहते हुए भी संसार से बाहर रह सकेंगे।

सारा दिन सांसारिक प्रवृत्तियों और रात्रि निद्रा में व्यतीत करने से आपको भगवच्चिन्तन के लिए समय नहीं मिलेगा। यदि आप प्रतिदिन दश-पन्दरह मिनट थोड़ा जप करें और उसके अनन्तर शेष समय सांसारिक प्रवृत्तियों में व्यतीत करें, तो इससे आप विशेष आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकेंगे। अतः नाम-स्मरण सदा चालू रखना चाहिए, जिससे मृत्यु-काल आ उपस्थित होने पर ईश्वर का विचार स्वयमेव जग उठे।

एक भक्त भगवान् से कहता है-"प्रभो, अपने पाद-पद्मों की शीतल छाया में मुझे आज ही ले लीजिए, इस समय मेरी इन्द्रियाँ बलवती हैं और मेरी स्मृति ठीक है। मृत्यु-काल निकट आने पर जब बुद्धि क्षुब्ध और विकृत हो जाती है, उस समय शरीर के त्रय-तापों से मेरा मन विचलित हो जायेगा।" मरण के समय शारीरिक दुर्बलता के कारण भगवान् के दृढ़ और सच्चे भक्त भी अपने प्रभु का स्मरण करना भूल जाते हैं।

इसी कारण से रोगी व्यक्ति के मरण की अन्तिम घड़ी आ पहुँचने पर गीता, भागवत, विष्णुसहस्रनाम इत्यादि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ उसकी मृत्यु-शय्या के पास किया जाता है। भले ही रोगी बोल न सकता हो; परन्तु जो कुछ पढ़ा जाता है, उसे वह सुने । धर्म-ग्रन्थों के इस प्रकार के पाठ से वह अपने शरीर की वेदना भूल जायेगा और उसे भगवान् का विचार आयेगा। मनुष्य की सदा ही यह अभिलाषा होती है कि वह अपने चित्त को सदा भगवान् में लगा कर मृत्यु की गोद में सदा के लिए शान्तिपूर्वक सो जाये। जब उसकी स्मरण शक्ति काम नहीं करती, तब धर्म-शास्त्रों की पवित्र वाणी उसे उसके वास्तविक स्वरूप का स्मरण करायेगी।

सामान्य रीति से मृतप्राय व्यक्ति अनेक भयावह विचारों से ग्रस्त हो जाता है। वह अपने मन को भगवान् में नहीं लगा सकता है। उसके मन में असंख्य विचार छाये रहते हैं। उसे ऐसे विचार आते हैं- "यदि मैं मर गया तो मेरी नवयुवती पत्नी तथा बच्चों की देखभाल कौन करेगा? मेरी सम्पत्ति का क्या होगा ? मेरे देनदारों से ब्याज-बट्टे कौन उगाहेगा? मुझे अमुक अमुक काम करना बाकी रह गया है। दूसरा लड़का अभी तक अविवाहित ही है। ज्येष्ठ पुत्र को अभी तक सन्तान-सुख देखने को नहीं मिला है। मेरा अमुक काम अधूरा रह गया है, कितने ही दावे तो न्यायालय में अनिर्णित ही पड़े हैं।" इस भाँति अपने सम्पूर्ण जीवन के पुनरावलोकन तथा भविष्य की चिन्ता में दुःखी होता है।

जब धर्म-ग्रन्थों का पाठ किया जाता है और भगवान् की लीलाओं में उसका अनुराग उत्पन्न होता है, तब यह बहुत सम्भव है कि उस समय वह अपनी सांसारिक आसक्तियों को भूल जाये। उसके पास एकत्रित हुए सम्बन्धियों को रोना-धोना नहीं चाहिए। इससे उसके मन को और भी अधिक दुःख पहुँचता है। उन्हें चाहिए कि वे उसे एकमात्र भगवान् का चिन्तन करने के लिए प्रोत्साहित करें। ऐसा करने से जब रोगी व्यक्ति का मन संसार के माया जाल से धीरे-धीरे हट कर प्रभु के चित्र, लीला तथा उपदेशों में लीन होने लगता है, तब उसके अन्तिम श्वास के विसर्जन के लिए सभी प्रकार का अनुकूल वातावरण प्रादुर्भूत होता है। उसका मन भी भगवच्चिन्तन में लग जाता है।

वह व्यक्ति उस समय अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करता है और भगवान् से सच्चे मन से प्रार्थना करता है। सच्ची प्रार्थना बुरे कर्मों के कुप्रभाव को दूर कर सकती है। पल-मात्र में ही उसमें विवेक तथा वैराग्य जग उठता है। यदि मरण की अन्तिम घड़ी में भी सच्चा विवेक और वैराग्य मनुष्य के अन्दर जाग उठे, तो उसको सन्तोष देने के लिए पर्याप्त है; क्योंकि उसका जीवात्मा इसके लिए लालायित रहता है।

अजामिल एक पुण्यात्मा व्यक्ति था; परन्तु वन में दुष्ट स्त्री के सम्पर्क में आ कर उसने अपने सारे तेज और तपः-शक्ति को नष्ट कर डाला। हाथ में पाश और शूल लिये हुए यम के दूत जब उसे धमकाने लगे, तब उन्हें देख कर उसने अपने छोटे पुत्र नारायण को पुकारा। ज्यों-ही उसने नारायण का नाम उच्चारण किया, विष्णु के पार्षद उसी समय वहाँ विमान ले कर आ उपस्थित हुए और उन्होंने यम-दूतों को मार भगाया। अजामिल को वे अपने साथ वैकुण्ठ-धाम ले गये।

राजा परीक्षित ने जन्मजात योगी तथा वेदव्यास के पुत्र श्री शुकदेव जी से एक सप्ताह तक श्रीमद्भागवत की कथा सुनी। उस राजा ने सात दिन तक उपवास किया, सातवें दिन श्री शुकदेव मुनि ने उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। उन्होंने परम तत्त्व का ध्यान किया और वे उसके साथ तद्रूप हो गये। भयानक तक्षक नाग ने उनके सामने प्रकट हो कर अपने कालकूट विष से उन्हें डॅस लिया। परीक्षित को ऐसा लगा मानो कोई नन्हाँ कीट उनके पाँवों को काट रहा है। वे देह-भावना से ऊपर उठ चुके थे। तक्षक के काटने के पूर्व ही उन्होंने अपने शरीर को योगाग्नि में भस्म कर डाला था।

खट्वांग राजा ने मात्र एक घण्टे में परब्रह्म का साक्षात्कार किया था। यह महापुरुष जीवन-भर उग्र साधना और भगवान् को सतत स्मरण करते रहे थे।

भगवान् के निरन्तर स्मरण द्वारा आप सब अपने इस जीवन में ही भगवान् के दर्शन प्राप्त करें! यह शरीर त्याग करते समय भगवान् आपके सम्मुख प्रकट हो दर्शन दें!

नवम प्रकरण

मृत्यु पर विजय

१. मृत्यु पर विजय

सभी मनुष्य मृत्यु से अत्यन्त भयभीत रहते हैं। कोई भी काल का ग्रास नहीं बनना चाहता है। आत्मा अमर है और वह आत्मा शरीर से भिन्न है; इस बात का जिन्हें ज्ञान हो गया है, वे बुद्धिशाली पुरुष भी मृत्यु से बहुत ही भयभीत रहते हैं। शरीर के प्रति यह मोह अद्‌भुत है। माया अथवा अविद्या आश्चर्यमय है।

यह शरीर सभी प्रकार के विषयों को भोगने का साधन है। यही कारण है कि मनुष्य अपने शरीर से इतना आसक्त है। अविद्या के कारण वह स्वयं को शरीर मान बैठता है। मानव की यह एक भूल-भरी असमीचीन धारणा है कि जो शरीर अशुद्ध, अचेतन, क्षणभंगुर तथा दुःख स्वरूप है, उसे वह शुद्ध, चेतन, अव्यय तथा सुख- स्वरूप आत्मा मानता है। इसके कारण ही वह जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। अविद्या अथवा अज्ञान के कारण मनुष्य ने अपनी विवेक-शक्ति खो दी है। इस अविद्या से अविवेक का जन्म हुआ। इसके कारण अविनाशी और विनाशशील का, सत् और असत् का, आत्मा और अनात्मा का, ऋत और अनृत का तथा जड़ और चेतन का भेद वह नहीं जान सकता है। अविद्या से अहंकार का जन्म हुआ है। जहाँ-कहीं भी अहंकार रहता है, वहीं राग और द्वेष-ये दोनों वृत्तियाँ रहती हैं। वह राग-द्वेष के वश में हो काम करता है। अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए नये-नये शरीर धारण करता है। अतः मानव के दुःख का मूल कारण अविद्या ही है। सम्पूर्ण कर्म तथा जन्म का भी कारण अविद्या ही है। यदि आप अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर अपने को अविद्या से मुक्त कर लें, तब आप मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेंगे तथा अविनाशी सच्चिदानन्द ब्रह्म में विलीन हो जायेंगे।

ज्ञानयोग का साधक साधन-चतुष्टय-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुत्व से अपने को सम्पन्न बनाता है और तब वह साधक श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जा कर श्रुतियों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करता है। वह निर्गुण ब्रह्म पर सतत ध्यान करता है और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करता है। इस भाँति वह ब्रह्म पर विजय प्राप्त करता है।

भक्तियोग का साधक नवविधा भक्ति का विकास करता है। वह मन्त्र जप, कीर्तन और भागवतों की सेवा करता है। वह स्वेच्छा से अपने को पूर्ण रूप से भगवान् के चरणों में समर्पित कर देता है। वह भगवान् से निवेदन करता है-"भगवन्! मैं आपका ही हूँ। यह सर्वस्व आपके ही हैं। आपके इच्छानुसार ही सब-कुछ हो।" वह प्रभु का दर्शन पाता है और इस भाँति वह मृत्यु पर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

राजयोग का साधक यम-नियम का पालन करता है। वह स्थिर आसन में बैठता है, प्राणायाम-क्रिया के द्वारा श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध करता है, इन्द्रियों का निग्रह करता है, प्रत्याहार द्वारा चित्त की वृत्ति का निरोध करता है तथा धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।

हठयोग का साधक आसन, प्राणायाम, बन्ध तथा मुद्रा के अभ्यास द्वारा मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाता है और उस शक्ति को मूलाधार में से स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र से ले जा कर सहस्रार चक्र में शिव के साथ संयोजित करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजय पा लेता है।

कर्मयोगी सतत निःस्वार्थ सेवा के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता है। आत्म-त्याग के द्वारा वह अपने अहंकार को मारता है और उसके द्वारा वह ज्ञान-ज्योति प्राप्त करता है। इस भाँति वह मृत्यु पर विजयी होता है।

२. मृत्यु क्या है तथा उस पर किस तरह विजयी हों ?

मृत्यु तो रूप का परिवर्तन मात्र है। सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से विलग होना ही मृत्यु कहलाती है। प्रिय विश्वनाथ! आप मृत्यु से इतना क्यों भयभीत हो रहे हैं ?

मृत्यु के अनन्तर जन्म उसी प्रकार आता है जैसे निद्रा के अनन्तर जागरण। पिछले जीवन में आपका जो काम अधूरा रह गया था, उसे आप पुनः चालू कर देंगे। अतः मृत्यु से भयभीत न बनिए।

मृत्यु का विचार सदा ही धर्म तथा धार्मिक जीवन की सबसे प्रबल प्रेरक शक्ति रहा है। मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है। अपनी जरावस्था में वह भगवान् को स्मरण करने का प्रयास करता है। यदि वह अपनी बाल्यावस्था से ही ईश्वर का स्मरण करने में लग जाये, तो वृद्धावस्था के आने तक वह बहुत अच्छी आध्यात्मिक फसल काट सकेगा। मनुष्य कभी भी मरना नहीं चाहता है। वह सदा जीवित बना रहना चाहता है। यहीं से दर्शनशास्त्र की विचारधारा का प्रारम्भ होता है। दर्शन इस विषय की पूरी जाँच-पड़ताल तथा छानबीन करता है। वह साहसपूर्वक घोषित करता है- "हे मानव ! तू मृत्यु से भयभीत मत बन। एक अमर धाम है और वह ब्रह्म है। वही तेरा अपना आत्मा है जो तेरी हृदय-गुहा में निवास करता है। अपने अन्तःकरण को शुद्ध बना और इस शुद्ध, अमर, अव्यय आत्मा का ध्यान घर। ऐसा करने से तू अमर पद पा लेगा।"

हे मानव! मृत्यु से जरा भी भयभीत न बनिए। आप अविनाशी हैं। मृत्यु जीवन की विपरीत अवस्था नहीं है। यह तो जीवन का एक चरण मात्र है। जीवन तो निरन्तर अविराम गति से ओत-प्रोत बना रहता है। बीज नष्ट हो जाता है; परन्तु उसमें एक विशाल वृक्ष का जन्म होता है। यह वृक्ष भी विनाश को प्राप्त होता है; परन्तु इसमें से कोयला उत्पन्न होता है। जल लुप्त हो कर अदृश्य वाष्प का रूप धारण करता है जिसमें एक नये जीवन का बीज होता है। पाषाण नष्ट होता है और चूना बनता है। यह चूना नव-जीवन से सम्पन्न होता है। केवल भौतिक कोश का ही विसर्जन होता है। जीवन तो बना ही रहता है।

मित्र! क्या आप बतला सकते हैं कि इस संसार में क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति है जिसे मृत्यु से भय न हो ? क्या ऐसा भी मनुष्य है जिसके जीवन का सन्तुलन घोर संकट के आ जाने पर भी दोलायमान न हो चला हो अथवा जब वह असह्य वेदना से पीड़ित हो, तब भी वह भगवान् का नाम नहीं लेता हो। नास्तिको ! तब आप भगवान् की सत्ता को क्यों अस्वीकार करते हैं? जब आप संकटग्रस्त होते हैं, तब आप स्वयं ही उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं। अपनी विकृत बुद्धि तथा सांसारिक मद के कारण आप नास्तिक बन बैठे हैं। क्या यह एक भयंकर भूल नहीं है? गम्भीरतापूर्वक विचार कीजिए। वाद-विवाद को छोड़िए। उस प्रभु को स्मरण कर अभी-अभी अमरता तथा शान्ति प्राप्त कीजिए।

गरुड्पुराण तथा आत्मपुराण में ऐसा वर्णन किया गया है कि मृत्यु की वेदना बहत्तर सहस्र बिच्छुओं के डंकों की वेदना के समान असह्य होती है। इस प्रकार भयानक शब्दों में वर्णन करने का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि उससे सुनने और पढ़ने वालों के मन में भय उत्पन्न हो और वे मोक्ष के लिए प्रयत्न करने के लिए बाध्य हीं। प्रेतात्म-विद्या में सभी उच्च आत्माओं ने एक मत से यह सूचित किया है कि मृत्यु के समय रंचमात्र भी दुःख नहीं

होता है। वे अपनी मरणावस्था के अनुभवों का स्पष्ट वर्णन करते हैं। वे बतलाते हैं कि अब वे इस स्थूल शरीर के भारी भार से मुक्त हो चुके हैं। स्थूल शरीर को छोड़ने के समय वे पूर्ण शान्त थे। माया उनके शरीर में मरोड़ तथा झटके उत्पन्न कर देखने वालों के मन में अनावश्यक भय का संचार करती है। यह तो माया का स्वभाव तथा प्रकृति ही है। मृत्यु-यातना से भयभीत मत बनिए। आप स्वयं अमर आत्मा हैं।

जप, कीर्तन, दीन-दुःखियों की सेवा तथा ध्यान के द्वारा ईश्वरमय जीवन व्यतीत करने का सतत प्रयास कीजिए। तभी आप काल पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

जब भगवान् यमराज आपके प्राण लेने के लिए आ उपस्थित होंगे, उस समय वे यह बहाना नहीं सुनेंगे कि 'मुझे अपने जीवन में भगवान् का भजन करने का समय नहीं मिला।'

एकमात्र ब्रह्मज्ञान ही हमें अज्ञान तथा मृत्यु के चंगुल से मुक्त कर सकता है। निदिध्यासन के द्वारा हमें इस ज्ञान की अपरोक्षानुभूति होनी चाहिए। केवल विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता अथवा शास्त्रों का पाठ ही हमें अपने जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते। यह तर्क का विषय नहीं है, यह तो प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है।

आत्म-साक्षात्कार आपके अविद्या, अज्ञान को दूर करेगा। यह अविद्या ही मानव के दुःखों का मूल कारण है। आत्म-साक्षात्कार आपके अन्दर आत्मा की एकता का ज्ञान जाग्रत करेगा। यह दुःख, शोक, भ्रम तथा संसार के आवागमन-रूप जन्म-मृत्यु के भयंकर दुःख को दूर करने का साधन है। यह आत्मा की एकता का ज्ञान ही है।

सूक्ष्म विषयों के नियमित अभ्यास के परिणाम स्वरूप इस संसार में जो आगामी जीवन प्राप्त होता है, उसमें सूक्ष्म विषयों के चिन्तन की सुव्यवस्थित शक्ति होती है। इसके विपरीत चपलता, विचार, मन का एक विषय पर से शीघ्र दूसरे विषय पर भागना आदि बातें आगामी जीवन में मन को अशान्त तथा अव्यवस्थित बनाती हैं।

आपके हृदय-मन्दिर में शुद्ध ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो रहा है। सब सूर्यों का सूर्य यह आत्मा स्वयं-प्रकाश है। यह सभी प्राणियों का आत्मा है तथा मन और वाणी से परे है। यदि आप इस आत्मा का साक्षात्कार कर लें, तो आपका इस मर्त्यलोक में पुनरावर्तन नहीं होगा।

माया ने अपने इन्द्रजाल से इस संसार-रूपी नाटक की रचना की है जिसमें जन्म और मरण-ये दो काल्पनिक दृश्य हैं। वास्तव में न तो कोई आता है और न कोई जाता है। एकमात्र आत्मा ही सदा विद्यमान रहता है। आत्म-विचार के द्वारा भय और मोह को नष्ट कीजिए, और सदा शान्ति में विश्राम कीजिए। "मैं उन महान् से भी महान् परम पुरुष को जानता हूँ। वे सूर्य की भाँति प्रकाश-स्वरूप हैं तथा अविद्या-रूप अन्धकार से सर्वथा अतीत हैं। उनको जान कर ही मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन करने में समर्थ होता है। परम पद की प्राप्ति के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग (उपाय) नहीं है" (यजुर्वेद : ३१-१८१) ।

योग के मार्ग में जो प्रयत्न किया जाता है, वह कभी भी निष्फल नहीं जाता है। आपको योग की थोड़ी-सी प्रक्रिया के अभ्यास का भी फल अवश्य प्राप्त होगा। यदि आपने अपने वर्तमान जीवन में योग के प्रथम तीन अंग-यम, नियम और आसन के अभ्यास में सफलता प्राप्त कर ली है, तब आप आगामी जीवन में उसके चतुर्थ अंग-प्राणायाम से अपना योगाभ्यास प्रारम्भ करेंगे। जिस वेदान्ती ने अपने वर्तमान जीवन में विवेक और वैराग्य-इन दो साधनों का अर्जन कर लिया है, वह अपने अगले जीवन में शम-दम आदि षट्सम्पत् से अपना अभ्यास आरम्भ करेगा। अतः यदि आप अपने इस जीवन में कैवल्य अथवा असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त करने में असफल रहते हैं, तो उससे आपको किंचिन्मात्र भी हताश होने की आवश्यकता नहीं है। स्वल्प काल का साधारण अभ्यास भी आपको अधिक बल, अधिक शान्ति, अधिक आनन्द तथा अधिक ज्ञान प्रदान करेगा।

आपकी मृत्यु नहीं हो सकती है, क्योंकि आपका अभी जन्म ही नहीं हुआ। आप तो अमर आत्मा हैं। माया ने जो कृत्रिम नाटक की रचना की है, उससे जन्म और मृत्यु-ये दो असत्य दृश्य हैं। इनका सम्बन्ध केवल भौतिक शरीर से है और यह भौतिक शरीर पंच-तत्त्वों के सम्मिश्रण की मिथ्या उपज है। जन्म और मरण का विचार केवल मूढ़ विश्वास है।

यह भौतिक शरीर तो मिट्टी का एक पुतला है जिसे भगवान् ने अपनी लीला के लिए बना रखा है। वे ही इसके सूत्रधार हैं। जब तक उनकी इच्छा होती है, तब तक वे इस खिलौने को दौड़ाते रहते हैं और अन्त में वे इसे तोड़ कर फेंक देते हैं। तब दो का खेल समाप्त हो जाता है और एकमात्र वे ही रह जाते हैं। जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है।

आत्मज्ञान मृत्यु-सम्बन्धी सभी भयों को दूर करता है। मनुष्य अकारण ही मृत्यु से भयभीत रहते हैं। मृत्यु तो निद्रा के समान है और जन्म प्रातःकाल निद्रा से जागने के समान है। जिस भाँति आप नये वस्त्र धारण करते हैं, उसी भाँति आप मृत्यु के पश्चात् नया शरीर धारण करते हैं। जीवन-प्रवाह में मृत्यु एक स्वाभाविक घटना है और यह आपके विकास के लिए आवश्यक है। यह पार्थिव शरीर जब नये काम और उद्योग के लिए अयोग्य हो जाता है, तब भगवान् रुद्र उसे ले जाते हैं और उसके स्थान पर नया शरीर प्रदान करते हैं। मृत्यु के समय किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। मृत्यु के विषय में अज्ञानी लोगों ने बहुत ही भय और आतंक उत्पन्न कर रखा है।

एकमात्र ब्रह्म ही सत् है। जैसे रज्जु में सर्प का आरोप करते हैं, वैसे ही ब्रह्म में इस संसार और शरीर का अध्यारोप किया गया है। जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता है और सर्प का विचार बना रहता है, तब तक आप भय से मुक्त नहीं हो सकते हैं। ठीक इसी प्रकार जब तक आप ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर लेते, तब तक यह संसार आपके लिए ठोस सत्य बना रहेगा। जब आप प्रकाश की सहायता से रज्जु को देखते हैं, तब सर्प की भ्रान्ति जाती रहती है और भय भी दूर हो जाता है; इसी भाँति जब आप ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं, तब यह जगत् विलीन हो जाता है और आप जन्म-मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं।

कभी-कभी आप ऐसा स्वप्न देखते हैं कि आप मर गये हैं और आपके सम्बन्धी रो रहे हैं। अपनी मृत्यु की उस कल्पित अवस्था में भी आप अपने सम्बन्धियों को विलाप करते हुए देखते तथा सुनते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रत्यक्ष मृत्यु के उपरान्त भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है। भौतिक शरीर के विसर्जन के पश्चात् भी आप विद्यमान रहते हैं। यह अस्तित्व ही आत्मा अथवा 'अहं' है।

यदि आप अपने हृदय में निहित अमर आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं, यदि अविद्या, काम और कर्म-इन तीन ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है, यदि अविद्या, अविवेक, अहंकार, राग-द्वेष, कर्म तथा देह से निर्मित अज्ञान की श्रृंखला टूट जाती है, तो आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जायेंगे और आप अमर धाम में प्रवेश करेंगे।

३. अमरता की खोज

हे मानव! धन-सम्पत्ति, बँगले और बाग से आपको क्या काम है? मित्रों और सम्बन्धियों से आपको क्या काम है? स्त्री और बच्चों से क्या काम है? अधिकार, नाम, यश, पद और गौरव से आपको क्या काम है? आपका मरण अवश्यम्भावी है। इस संसार की सभी बातें अनिश्चित हैं; परन्तु मृत्यु एक निश्चित वस्तु है। अपनी अमर आत्मा की खोज कीजिए जो कि आपकी हृदय गुहा में ही स्थित है।

आध्यात्मिक सम्पत्ति ही वास्तव में अक्षय सम्पत्ति है। दिव्य ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ़ निकालिए। अविनाशी आत्मा का साक्षात्कार कीजिए और स्वतन्त्रता तथा पूर्णता, अजरता और अमरता को प्राप्त कीजिए।

दैववादी सांसारिक जन धर्म और उच्च पारमार्थिक बातों की ओर ध्यान नहीं देते हैं। उन्हें परमात्मा, आवागमन का सिद्धान्त, अमर आत्मा, योग-साधना, साधन- चतुष्टय के विषय की कुछ भी चिन्ता नहीं है। वे दो बातें ही अच्छी तरह जानते हैं-जेब भरना और पेट भरना। वे खाते-पीते हैं, आमोद-प्रमोद करते हैं, सोते हैं, सन्तान उत्पन्न करते हैं और नाना प्रकार के कपड़े पहनते हैं।

कुछ लोग विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त करने के लिए सात समुद्र पार जाते हैं। कुछ लोग ताम्रपत्र को स्वर्ण में परिणत करने के लिए रसायनविद्या का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग शतायुष्मान् बनने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करते हैं। कुछ लोग विपुल धन-राशि के लिए व्यवसाय अथवा रुपये का लेन-देन करते हैं। यदि आप एक पल के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो आप देखेंगे कि ये लोग केवल खाने, पीने और सोने के झगड़े में ही पड़े रहते हैं। इन दो बातों के अतिरिक्त वे और कुछ नहीं करते हैं।

परन्तु जब उनका कोई प्रिय आत्मीय काल-कवलित हो जाता है, जब वे असाध्य रोगों से पीड़ित होते हैं तथा जब वे अपनी धन-सम्पत्ति से हाथ धो बैठते हैं, तब उनकी आँखें कुछ-कुछ खुलती हैं। उन्हें सांसारिक जीवन से क्षणिक वैराग्य उत्पन्न होता है। वे प्रश्न करते हैं- "जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? मृत्यु के उस पार क्या है? मृत्यु से परे भी क्या कोई जीवन है? मृत्यूपरान्त हमें कहाँ जाना होगा?" उनमें विवेक तो होता नहीं है; अतः उनका वैराग्य शीघ्र ही लुप्त हो जाता है।

मनुष्य विषय-भोगों में सुख पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। अत्यधिक विषय-परायणता से इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं और उसके परिणाम स्वरूप निराशा, रोग और व्याधि आ घेरते हैं। जितना ही अधिक वह इन्द्रिय-भोगों को भोगता है, उतनी ही उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। उसे बहुत कटु अनुभव प्राप्त होता है। उसे अब यह ज्ञान हो जाता है कि शरीर और इन्द्रियों की भोग-वासना की तृप्ति में वास्तविक सुख नहीं है। अन्त में वह अन्तस्थित अपनी आत्मा में सुख की खोज करने लगता है।

यदि आप किसी व्यक्ति को पीड़ा पहुँचायेंगे, तो आपको दूसरे जन्म में पीड़ा भोगनी होगी। इस भाँति आप इस जीवन में जो बीज बोयेंगे, उसका फल आपको अगले जन्म में प्राप्त होगा। यदि आप किसी व्यक्ति के नेत्र को आघात पहुँचायेंगे, तो अगले जीवन में आपके नेत्र को आघात पहुँचेगा। यदि आप किसी व्यक्ति का पैर तोड़ेंगे, तो अगले जीवन में आपका पैर टूटेगा। यदि आप किसी निर्धन व्यक्ति को भोजन करायेंगे, तो आपको अगले जीवन में बहुत भोजन प्राप्त होगा। यदि आप धर्मशालाएँ बनायेंगे, तो आपको अगले जीवन में बहुत से घर प्राप्त होंगे। क्रिया और प्रतिक्रिया परस्पर समान परन्तु प्रतिद्वन्द्वी होती हैं। कर्म का ऐसा नियम है। ऐसा ही यह चक्र है और इससे हो कर ही आपको अपना मार्ग तय करना है।

बहुत से व्यक्ति धनवान् हैं; परन्तु वे अपने धन का समुचित उपयोग नहीं करते हैं। उनके पास विपुल सम्पत्ति है, उनके पास कई बँगले हैं; परन्तु फिर भी वे खिन्न हैं। उनका जीवन बहुत ही दुःखी है। वे कितनी ही जीर्ण व्याधियों के कष्ट से पीड़ित होते हैं। उनकी सन्तानें प्रमादी तथा स्वेच्छाचारी होती हैं। वे स्वयं कृपण होते हैं। उनके मित्र और सम्बन्धी भी उन्हें नहीं चाहते हैं। आप इसका क्या कारण बतलायेंगे? वे अपने पिछले जीवन में धन के लिए लालायित थे, अतः उन्हें इस जीवन में धन प्राप्त हुआ; परन्तु वे लोग उसका ठीक उपयोग नहीं कर सकते हैं। वे अपने पिछले जीवन में स्वार्थी तथा क्रूर होते हैं। वे अपने जीवन में आचारवान् नहीं होते। अतः वे इस जीवन में कष्ट भोगते हैं।

सत्कर्म कीजिए। उत्तम तथा दिव्य विचारों को प्रश्रय दीजिए। सच्चारित्र्य का निर्माण कीजिए। एक ही शुद्ध तथा पवित्र कामना-जन्म तथा मृत्यु के चक्र से मुक्त होने की कामना-रखिए।

आपके विचारों से ही आपका चरित्र बनता है। आप जैसा विचार करेंगे, वैसा ही आप बनेंगे। यदि आप सद्विचारों को प्रश्रय देते हैं, तो आप सदाचारी व्यक्ति के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे और यदि दुर्विचारों को प्रश्रय देते हैं, तो आप दुराचारी व्यक्ति के रूप में जन्म लेंगे। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है।

आपके वर्तमान जीवन की इच्छाएँ इस बात की निर्णायक हैं कि आपको भावी जीवन में किस प्रकार के पदार्थ प्राप्त होंगे। यदि आपको धन की अधिक लालसा है, तो आपको अगले जन्म में धन प्राप्त होगा। यदि आपको अधिकार की अधिक कामना है, तो आपको आगामी जीवन में अधिकार प्राप्त होगा। परन्तु ध्यान रहे कि धन और अधिकार आपको शाश्वत आनन्द और अमरत्व प्रदान नहीं कर सकते। आपको अपनी इच्छाओं के चुनाव में बहुत ही सावधान रहना चाहिए। एक ही दृढ़ इच्छा, मोक्ष की इच्छा रखिए। आप जन्म-मृत्यु के चक्र से शीघ्र मुक्त हो जायेंगे।

दशम प्रकरण

कथा-वार्ता

१. कीट की कहानी

युधिष्ठिर ने पूछा :

"हे पितामह जी! मरने की इच्छा से तथा जीने की इच्छा से बहुत से मनुष्य अपने जीवन की इस युद्ध-रूपी महान् यज्ञ में आहुति देते हैं। इसके परिणाम स्वरूप उन लोगों को क्या प्राप्त होता है? यह मुझे बतलाइए। (१)

"हे बुद्धिशाली पुरुष ! युद्ध में जीवन को अर्पित कर देना मनुष्य के लिए बहुत ही खेदपूर्ण है। आप जानते हैं कि मनुष्य का जीवन चाहे जितना समृद्ध हो अथवा निर्धन, चाहे जितना सुखी हो अथवा दुःखी; परन्तु अपने जीवन का त्याग करना उसके लिए बहुत ही कठिन है। मेरे विचार में आप सर्वज्ञ हैं, अतः आप इसका कारण बतलायें।" (२-३)

भीष्म ने कहा :

"हे राजन्! सम्पत्ति अथवा विपत्ति में, सुख अथवा दुःख में जीवन व्यतीत करते हुए सभी प्राणी इस संसार में एक निश्चित रीति से आते हैं। (४)

"हे युधिष्ठिर! आपने मुझसे बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है। उसका जो कारण है, उसे मैं आपको बतलाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनें। (५)

"राजन् ! इस विषय में द्वैपायन ऋषि और एक रेंगते हुए कीट के मध्य जो संवाद हुआ था, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। (६)

"प्राचीन काल में परम विद्वान् ब्राह्मण कृष्ण द्वैपायन जी ब्रह्म में तन्मय हो इस संसार में विचरण कर रहे थे, उस समय उन्होंने राजपथ पर, जिस पर बहुत से रथ आ रहे थे, एक कीट को तीव्र गति से भागते हुए देखा। (७)

"ऋषि प्रत्येक प्राणी की गति तथा भाषा के जानकार थे। वे सर्वज्ञ थे; अतः उन्होंने कीट से इस प्रकार पूछा (८) -

'हे कीट! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम बहुत ही भयभीत तथा बड़ी उतावली में हो। मुझे बतलाओ कि तुम कहाँ भागे जा रहे हो और किससे तुम्हें इतना भय लग रहा है?' (९)

उस कीट ने कहा :

'विद्वन्! मैं उस बड़ी गाड़ी की आवाज सुन कर भयाक्रान्त हूँ। यह गाड़ी बहुत ही भयंकर शब्द करती है। यह निकट ही आ पहुँची है। (१०)

'वह शब्द मुझे कर्णगोचर हो रहा है। क्या वह मुझे मार नहीं डालेगा। मैं उससे दूर भाग जाना चाहता हूँ। मुझे बैलों की आवाज सुनायी पड़ रही है। (११)

'भारी भार खींचते हुए वे बैल गाड़ीवान के कोड़ों की मार से दीर्घ श्वासोच्छ्वास ले रहे हैं। गाड़ीवान की भिन्न-भिन्न आवाजें भी मैं सुन रहा हूँ। (१२)

'हमारे जैसे कीट-योनि में उत्पन्न प्राणी इस प्रकार के शब्द नहीं सहन कर सकते हैं। यही कारण है कि मैं इस अति-भयावह स्थिति से दूर भागा जा रहा हूँ। (१३)

'सभी प्राणी मृत्यु को भयानक समझते हैं। जीवन को प्राप्त करना कठिन है। अतः मारे भय के मैं यहाँ से भागा जा रहा हूँ। मैं इस सुख को छोड़ कर दुःख में नहीं पड़ना चाहता हूँ।" (१४)

भीष्म ने कहा :

"कीट के इस प्रकार कहने पर द्वैपायन व्यास ने पूछा :

'कीट! तुम्हें सुख कहाँ से मिल सकता है? तुम्हारा जन्म तो एक सामान्य मध्यम योनि में हुआ है। मैं समझता हूँ कि मृत्यु तुम्हारे लिए सुखद होगी।' (१५)

'शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा अन्य विविध प्रकार के उत्तम भोगों का तो तुम्हें पता ही नहीं है। अतः हे कीट! मृत्यु तुम्हारे लिए लाभप्रद होगी।' (१६)

कीट ने कहा :

'हे ज्ञानवान् पुरुष ! एक जीवधारी प्राणी किसी भी परिस्थिति में क्यों न पड़ा हो, वह उसी जीवन से आसक्त बन जाता है। इस कीट-योनि में भी मैं अपने को सुखी समझता हूँ। इसी कारण से मैं जीवित रहना चाहता हूँ। (१७)

'इस अवस्था में भी मेरे शरीर के आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के भोग-पदार्थ उपलब्ध हैं। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के भोग-पदार्थ भिन्न प्रकार के होते हैं। (१८)

'पूर्व-जन्म में मैं एक मनुष्य था। हे वीर! उस समय मैं एक धनवान् शूद्र था। मुझे ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा न थी। मैं क्रूर तथा दुराचारी था और बहुत ही अधिक व्याज लेता था। (१९)

'मेरी वाणी कठोर थी। मैं अपने छल-कपट को बुद्धिमानी समझता था। सभी प्राणियों से घृणा करता था। मेरे और दूसरों के मध्य जो समझौते होते थे, उनकी शर्तों का अनुचित लाभ उठा कर मैं सदा दूसरों के स्वत्वों का अपहरण करता था। (२०)

'मैं स्वभाव का अभिमानी, जिह्वा-लोलुप तथा क्रूर तो था ही; अतः भूख लगने पर मैं अपने सेवकों तथा घर पर पधारे हुए अतिथियों को भोजन कराने के पूर्व ही अपने उदर की पूर्ति कर लिया करता था। (२१)

'मैं धन का इतना अधिक लोभी था कि मैंने कभी भी देवताओं और पितरों को श्रद्धापूर्वक नैवेद्य अर्पित नहीं किया, यद्यपि एक गृहस्थ के रूप में मेरे लिए यह अनिवार्य कर्तव्य था। (२२)

'जो लोग भयभीत हो मेरा आश्रय लेने के लिए मेरे पास आते, उन्हें किसी प्रकार का संरक्षण दिये बिना दूर धकेल देता था। जो लोग भय से त्राण पाने की याचना करने के लिए आते, उनकी भी मैंने सहायता नहीं की। (२३)

'दूसरे लोगों के धन, धान्य, अत्यन्त प्रिय स्त्रियाँ, खान-पान के साधन तथा रहने के सुन्दर मकान देख कर मुझे अकारण ही ईर्ष्या होती थी। (२४)

'दूसरों का सुख देख कर मैं द्वेष से भर जाता था। मैं सदा यही चाहता था कि वे निर्धन बने रहें। इस भाँति अपनी इच्छाओं को सफल बनाने की आशा से मैं दूसरों के शील, सम्पत्ति और सुख का विनाश करने पर तुला रहा। (२५)

'अपने पूर्व-जीवन में क्रूरता तथा इसी प्रकार की अन्य भावनाओं से प्रेरित हो मैंने अनेकों ही कृत्य किये। उन कुकृत्यों को स्मरण कर मैं शोक तथा पश्चात्ताप से वैसे ही सन्तप्त हो उठता हूँ जैसे कि किसी को अपने प्रिय पुत्र के मर जाने पर दुःख होता है। (२६)

'मेरे इस प्रकार के कर्मों के कारण सत्कर्मों का फल किस प्रकार मिलता है, इसका मुझे पता नहीं है। ऐसा होने पर भी मैंने एक बार अपनी वृद्ध माता की सेवा की थी। (२७)

'भाग्यवश जन्म और गुण से भाग्यशाली एक ब्राह्मण यात्रा करते-करते मेरे घर पर एक बार अतिथि-रूप में पधारे। मैंने उनका आतिथ्य सत्कार किया। उस सत्कर्म से प्राप्त पुण्यफल-स्वरूप मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई। (२८)

'मुझे ऐसा लगता है कि उस पुण्यकर्म के कारण मैं पुनः सुख प्राप्त कर सकूँगा। आप तो तपोधनी हैं, अतः आप सब-कुछ जानते हैं। कृपया बतलाइए कि मेरे प्रारब्ध में क्या है'।" (१९) (महाभारत-अनुशासन-पर्व)

२. नचिकेता की कथा

मैं समझता हूँ कि कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेता की कथा तो आपको याद ही होगी। नचिकेता के पिता गौतम जी एक यज्ञ कर रहे थे। नचिकेता ने उस अवसर पर अपने पिता से पूछा- "आप मुझे किसको देते हैं?" उसके पिता ने उत्तर दिया- "तुझे मैं मृत्यु को देता हूँ।"

तदनन्तर नचिकेता मृत्युदेव यमराज के घर जा पहुँचे। मृत्युदेव उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। वहाँ पर उन (नचिकेता) की आवभगत करने वाला कोई न था। अतः वे तीन दिन और तीन रात्रि तक किसी प्रकार के अन्न-जल के सत्कार के बिना ही यम-सदन के द्वार पर पड़े रहे। चौथे दिन जब यमराज वापस आये, तो उन्होंने देखा कि नचिकेता अपने पिता के इस वचन कि 'मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ, का प्रतिपालन करते हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।

यमराज ने नचिकेता से कहा- "हे ब्राह्मण देवता! आप मेरे सम्मान्य अतिथि हैं। आपने लगातार तीन रात्रियों से मेरे घर पर बिना भोजनादि किये निवास किया है, अतः उनके बदले में आप मुझसे तीन वर माँग लें।" तब नचिकेता ने यह प्रथम वर माँगा- "मेरे पिता मुझ पर जैसे पहले प्रसन्न रहते थे, वैसे ही पुनः प्रसन्न हो जायें।"

यमराज ने कहा- "आपके पिता आपको पहले की ही भाँति अपने पुत्र के रूप में पहचान लेंगे। वे रात्रि को सुख की नींद सोयेंगे और आपको मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देख कर उनका क्रोध सर्वथा शान्त हो जायेगा।"

द्वितीय वरदान के रूप में नचिकेता ने स्वर्गदायिनी अग्नि-विद्या के विषय में प्रश्न किया। यमराज ने कहा- "उस अग्नि-विद्या का रहस्य आपको विदित हो जायेगा और वह अग्नि आपके ही नाम से प्रसिद्ध होगी।" तीसरे वर के रूप में ऋषिकुमार नचिकेता ने मृत्यु के रहस्य के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। उसने पूछा- "मृत मनुष्य के सम्बन्ध में यह एक बड़ा संशय फैला हुआ है। कुछ लोग तो ऐसा कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता । मैं यही जानना चाहता हूँ। हे मृत्युदेब! अपने रहस्य को मुझे बतलाइए। क्या मनुष्य आपके पंजों से बच सकता है?"

यमराज ने कहा- "नचिकेता! यह प्रश्न न कीजिए। पहले देवताओं को भी इस विद्या में सन्देह हुआ था। वास्तव में यह विषय बहुत ही गहन है और सहज में ही यह समझ में नहीं आने वाला नहीं है। अतएव आप कोई दूसरा वर माँग लें। इस विषय में मुझ पर दबाव न डालें। मैं आपको पुत्र, पौत्र, सुवर्ण, घोड़े, साम्राज्य, दीर्घ जीवन, आपकी सेवा के लिए सुन्दर रमणियाँ तथा रथादि प्रदान करता हूँ।"

नचिकेता ने कहा- "वे सभी भोग्य वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। वे इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देती हैं। बड़ी-से-बड़ी आयु भी अल्प ही है। यह दीर्घ जीवन अनन्त काल की तुलना में कुछ भी नहीं। आप अपने रथ, रमणियाँ, नृत्य तथा गीत अपने पास ही रखें। धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। मैं तो केवल इसी वर की आपसे याचना करता हूँ कि मनुष्य काल का ग्रास बनने से क्योंकर बच सकता है? आप मुझे एकमात्र यही वर दें।"

यमराज ने इससे समझ लिया कि ऋषिकुमार नचिकेता ब्रह्मविद्या के उत्तम अधिकारी हैं। तब उन्होंने नचिकेता को बतलाया कि मनुष्य किस उपाय से काल के हाथ से बच सकता है। उन्होंने कहा- "हे नचिकेता! अब मैं आपको अमरत्व-प्राप्ति का उपाय बतलाता हूँ। आप मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनें। मनुष्य वासनाओं से बंधा हुआ है। ये वासनाएँ इन्द्रियों से उत्पन्न होती हैं और मनुष्य को ये ही जन्म-मरण के चक्र में फँसाये रखती हैं। अतः मनुष्य को इन वासनाओं को नष्ट करना चाहिए और अपने मन तथा इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। यही इस मार्ग का प्राथमिक पग है। शरीर रथ के समान है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथि है, आत्मा रथ का स्वामी है और विषय उन घोड़ों के विचरण के मार्ग हैं। घोड़े विषय-पदार्थों के पीछे भागते-फिरते हैं और रथ को भी अपने साथ घसीट ले जाते हैं। इन घोड़ों को ठीक मार्ग पर चलाना चाहिए। जो मनुष्य विवेकहीन है और जिसका मन सदा असंयमित रहता है, उस व्यक्ति की इन्द्रियाँ असावधान सारथि के उच्छृंखल घोड़ों की भाँति उसके वश में नहीं रहीं। वह व्यक्ति परम पद को प्राप्त नहीं करता, अपितु बह बार-बार संसार-चक्र में भटकता रहता है। परन्तु जो मनुष्य विवेक से सम्पन्न है और जिसका मन नित्य-निरन्तर संयत रहता है, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भाँति उसके वश में रहती हैं। वह उस परम पद को प्राप्त हो जाता है जहाँ से लौट कर पुनः जन्म नहीं होता। वह संसार-मार्ग के पार पहुँच कर विष्णु भगवान् के उस सुप्रसिद्ध परम पद को प्राप्त हो जाता है।

"उस अद्वितीय नित्य आत्मा का ध्यान कीजिए जो कि हृदय-गुहा में स्थित है। उस परम आत्मा में अपने मन को लगाइए। जब सभी ऐन्द्रिय वासनाएँ समूल नष्ट हो जायेंगी तब आपको अमरत्व, आत्म-साक्षात्कार अथवा ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जायेगा। हे नचिकेता! इस भाँति आप काल पर विजय पा सकेंगे। इतना ही मृत्यु-विषयक रहस्य है।

"कामुक तथा बलहीन व्यक्ति आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यह आत्मा न तो प्रवचन से, न तर्कज्ञान से और न पठन-पाठन से ही प्राप्त होता है। यह आत्मा जिसे वरण कर लेता है, केवल उसी के सामने वह अपने

स्वरूप को प्रकट करता है। आत्मा के इस चुनाव का निश्चय साधक के जीवन की पवित्रता तथा निःस्वार्थता के आधार पर होता है।

"उठिए, जागिए, श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जा कर इस अलौकिक आत्मा को जानिए और इसका साक्षात् कीजिए। ज्ञानी जन उस (तत्त्वज्ञान के) मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण एवं दुस्तर धार के सदृश दुर्गम बतलाते हैं।"

यमराज द्वारा उपदिष्ट इस विद्या और योग की सम्पूर्ण विधि को प्राप्त करके नचिकेता जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त तथा सब प्रकार की वासनाओं और विचारों से रहित हो कर परब्रह्म को प्राप्त हो गये। दूसरा भी जो कोई आत्मा के स्वरूप को इसी प्रकार जानने वाला है, वह भी ऐसा ही हो जाता है।

३. मार्कण्डेय की कथा

मार्कण्डेय भगवान् शिवजी के परम भक्त थे। उनके पिता मृकण्डु ने पुत्र-प्राप्त्यर्थ घोर तपस्या की। भगवान् शिवजी उनके सामने प्रकट हुए और बोले-"ऋषि जी! आपको केवल सोलह वर्ष तक जीवित रहने वाला गुणवान् पुत्र चाहिए अथवा चिरकाल तक जीवित रहने वाला दुष्ट तथा मूर्ख पुत्र ?" मृकण्डु ने उत्तर दिया-"मेरे आराध्य देव! मुझे गुणवान् पुत्र ही प्राप्त हो।"

भगवान् शिवजी के वरदान-स्वरूप उनके एक पुत्र हुआ। इस ऋषिकुमार को जब अपने प्रारब्ध का पता चला, तो वह पूरे मन से परम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की आराधना में तत्पर हो गया। अपनी मृत्यु के नियत दिन वह ध्यान और समाधि में तल्लीन था; अत: उसके प्राण लेने के लिए यमराज स्वयं पधारे। अपनी रक्षा के लिए भगवान् शिव से प्रार्थना करते हुए वह बालक शिव-लिंग से लिपट गया। यह देख यमराज ने शिव-लिंग समेत उस बालक को अपने पाश में बाँध लिया। उस लिंग से साक्षात् भगवान् शिव तत्काल ही प्रकट हो गये और उन्होंने उस बालक के रक्षार्थ यमराज को मार डाला। उस दिन से भगवान् शिवजी मृत्युंजय तथा काल-काल के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सभी देवता भगवान् शिवजी के पास गये और उनसे प्रार्थना की-"पूजनीय महादेव! हे करुणा-सागर! उन्हें पुनः जीवन-दान दीजिए।" उन देवों की प्रार्थना पर भगवान् शिव ने यमराज को पुनः जीवित कर दिया। उन्होंने ऋषिकुमार मार्कण्डेय को भी यह वरदान दिया- "तुम एक षोडश वर्षीय कुमार के रूप में सदा अमर बने रहोगे।" अतः वे चिरंजीवी हैं। आज भी दक्षिण भारत में यदि कोई बालक किसी स्त्री या पुरुष को नमस्कार करता है, तो उसे वे आशीर्वाद देते हैं- "मार्कण्डेय के समान चिरंजीवी बनो!"

एकादश प्रकरण

पत्र

१. मेरे पति की आत्मा कहाँ है?

श्री स्वामी शिवानन्द जी!
आनन्द-कुटीर, ऋषिकेश।

परम पूज्य स्वामी जी!

आपके कृपा-पत्र के लिए अनेकानेक धन्यवाद। मेरे शोक के निवारण में यह पत्र बहुत ही आश्वासनप्रद था।

मुझे यह जानने की उत्कट अभिलाषा है कि इस समय मेरे पति की जीवात्मा कहाँ होगी? इस शरीर को त्यागने के पश्चात् से पुनर्जन्म प्राप्त करने तक उनके जीवात्मा की क्या दशा होगी? 'डिवाइन लाइफ' पत्रिका में प्रकाशित 'मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की यात्रा' शीर्षक लेख समझने का मैंने भरसक प्रयास किया; परन्तु इसके कुछ अंश विशेषकर २६१ वें पृष्ठ के द्वितीय अवच्छेद से आगे मैं समझ न सकी। मुझे ऐसा लगता है कि दूसरों के समझाने की अपेक्षा आपके समझाने से मैं अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकूँगी। मैं आपकी बहुत आभारी रहूँगी यदि आप मुझे यह बतलायें कि मृत्यूपरान्त जीवात्मा की क्या गति होती है? दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए हमें कौन-से पुण्य-कर्म करने चाहिए? क्या जीवात्मा मर्त्यलोक के लोगों को देख-सुन सकता है? प्रेतात्म-विद्या के

जानकार यह कहते हैं कि वे तथाकथित माध्यम की सहायता से दिवंगत आत्मा के साथ वार्तालाप कर सकते हैं-क्या इसमें कुछ सत्यता है? उस समय जो उत्तर देता है, क्या वह सचमुच ही मृत व्यक्ति की जीवात्मा है?

आपकी विनीत शिष्या

..

आनन्द-कुटीर फरवरी १२, १९४५
भाग्यशाली दिव्य आत्मा !

वन्दन और आराधन।

आपके कृपा-पत्र के लिए आभार। प्रेतात्म-विद्या, प्रेतात्मा के दर्शन, माध्यम आदि के मोह में न पड़िए। वे आपको विपथगामी बना देंगे। भूतात्मा के साथ व्यवहार रखना तथा उसके साथ वार्तालाप करना-एक सनक है। वास्तविक अध्यात्म-शास्त्र से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। जीवन का ध्येय तो इससे भिन्न ही है। अपनी आत्मा की अविनश्वरता का अनुभव करना ही आपके जीवन का लक्ष्य है। यही आपको सुख और शान्ति प्रदान कर सकता है।

आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है। जैसे मनुष्य एक कमरे में से दूसरे कमरे में जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा एक चेतना-स्तर से दूसरे चेतना-स्तर को प्राप्त होता है। मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की अवधि में जीवात्मा सूक्ष्मतर जगत् में अपने कुछेक कर्मों का हिसाब करता है। आपने जिस लेख के विषय में लिखा है, उसमें मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा के प्रयाण तथा प्रत्यावर्तन का जो वर्णन दिया गया है, उसका तात्पर्य यह समझाना है कि जीव स्थूलता से शनैः-शनैः सूक्ष्मता की दशा में क्योंकर प्रवेश करता है। सूक्ष्मता की अनुक्रमिक मात्रा के भाव को व्यक्त करने के लिए ही उसमें आकाश, वायु, धूम्र, अभ्र, मेघ, वृष्टि आदि का उल्लेख है। निश्चित समय पर जीवात्मा पुनः नया शरीर धारण करता है।

दिवंगत आत्मा को शान्ति पहुँचाने का सर्वोत्तम उपाय है-कीर्तन कीजिए, अधिक जप कीजिए, दूसरों के कष्ट को दूर कीजिए, निःस्वार्थ सेवा कीजिए और दान कीजिए। हार्दिक प्रार्थना कीजिए।

अपने मृत पति की आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास न कीजिए। मृत व्यक्ति की आत्मा से सम्बन्ध रखने से जीवात्मा के उच्चतर आनन्दमय लोकों की ओर प्रगति के मार्ग में बाधा पहुँचती है और वह भूलोक में आसक्त हो जाती है। उस आत्मा को नीचे लाने का प्रयास न कीजिए। इससे उसकी शान्ति भंग होगी। माध्यम को अपने वश में रखने वाली आत्माएँ अज्ञानी तथा कपटी होती हैं। वे असत्य बोलती हैं।

आपकी ही आत्मा
शिवानन्द

२. स्वर्ग कहाँ है ?

५ अगस्त, १९४३

माननीय महात्मन् !

'डिवाइन लाइफ' के अगस्त मास के अंक में 'ऋतु-धर्म' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसका अन्तिम भाग मुझे कुछ अस्पष्ट-सा लगता है। उसमें लिखा है-

"इस स्थूल शरीर का परित्याग कर देने के पश्चात् जीव स्वर्ग की ओर प्रयाण करता है, कर्म के फल समाप्त होने तक वह वहाँ निवास करता है, उसके पश्चात् वर्षा के द्वारा वह इस भूलोक में वापस आता है और अन्न के साथ मिल जाता है। इस भाँति वह पुरुष के वीर्य में और वीर्य से स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है। तत्पश्चात् वह जीव सातवें महीने में भ्रूण (गर्भ-स्थित बालक के शरीर) में प्रवेश करता है।"

यदि आप इस सम्बन्ध में निम्नांकित विषयों पर प्रकाश डालें, तो मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ रहूँगा -

१. जहाँ जीवात्मा जाता है, वह स्वर्ग कहाँ है और वह वहाँ कैसे पहुँचता है? जिस भाँति जीव को नीचे आने के लिए मेघ-बिन्दुओं की आवश्यकता होती है, उसी भाँति उसे ऊपर जाने के लिए भी किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता पड़ती ही होगी।

२. मेघ-बिन्दु तो बादलों के क्षेत्र में ही प्राप्त हो सकते हैं; परन्तु स्वर्ग और बादल-ये दोनों एकदेशीय नहीं हैं। यदि बात ऐसी ही है, तो जीवात्मा स्वर्ग से बादलों तक किस प्रकार आता है?

३. मैं जानता हूँ कि हमारा यह संसार कर्म-भूमि ही नहीं वरंच भोग-भूमि भी है। यदि यह बात सच है, तो यह कहना क्योंकर ठीक हो सकता है कि जीवात्मा अपने कमर्मों का फल स्वर्ग में समाप्त कर डालता है और सम्पूर्ण फलों के समाप्त हो जाने पर वह भूलोक को वापस आता है?

४. ऐसा कहा गया है कि जीव पुरुष के वीर्य के साथ स्त्री के उदर में प्रवेश करता है और फिर यह भी कहा गया है कि जीवात्मा सातवें मास भ्रूण में प्रवेश करता है। ये दोनों बातें कैसे संगत हो सकती हैं? क्या जीव आत्मा से भिन्न है? यदि ऐसी बात है, तो उनमें परस्पर क्या भेद है? और यदि ऐसी बात नहीं है, तो ये दोनों ही बातें क्योंकर सम्भव हो सकती है?

आपका विश्वसनीय
के. बी. आर.

आदरणीय अमर आत्मन् !

नमस्कार और वन्दन ।

आपका पाँच तारीख का पत्र प्राप्त हुआ। जीवात्मा आकाश में यात्रा कर सकता है। इसके लिए मेघ की बूँदें, पृथ्वी आदि स्थूल पदार्थों के आश्रय की अनिवार्य आवश्यकता नहीं रहती है। वह मेघ की बूँदों के द्वारा पार्थिव जगत् में प्रविष्ट होता है, बस बात इतनी ही है। कुल सात लोक हैं। वे सभी एक-दूसरे के मध्य में अवस्थित हैं और वे एक लोक दूसरे लोक की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। स्वर्ग भी उनमें से ही एक लोक है।

आध्यात्मिक साधना तथा पुण्य-कर्म के सम्पादन द्वारा प्रगति करने के लिए हमारा यह जगत् एक साधन है। इसके साथ ही अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणाम- स्वरूप जीवात्मा को सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं; परन्तु दुःख की तुलना में भोग की कोई गणना नहीं है। दुःख ही मनुष्य को वास्तव में बुद्धिमान् तथा अन्तर्मुखी बनाता है। स्वर्ग में केवल भोग-ही-भोग हैं। वहाँ दुःख का नाम नहीं है।

सातवें मास तक जीव अव्यक्त अवस्था में रहता है। 'जीव-भ्रूण (गर्भ-स्थित शिशु) में सातवें मास में प्रवेश करता है' - इसका यह तात्पर्य नहीं कि जीवात्मा भ्रूण में नये रूप में प्रवेश करता है। इसका भाव केवल यह है कि सातवें मास में, जब स्थूल शरीर की रचना पूर्ण हो जाती है, वह व्यक्त होने लगता है।

आध्यात्मिक पथ में आपकी भव्य प्रगति हो ! परमेश्वर आपको सुखी रखे !
स्निग्ध मान, प्रेम और ॐ के साथ

आपका ही आत्मा
शिवानन्द

३. मेरे पुत्र के विषय में क्या ?

श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः ।

आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। इसने मुझे बहुत ही शान्ति दी।

पूज्य स्वामी जी! मेरे निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त नहीं हुए। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप इस विषय पर प्रकाश डालें।

१. गीता के चौदहवें अध्याय के चौदहवें तथा पन्दरहवें श्लोकों में उन लोगों के आगामी जीवन का वर्णन है जिनकी मृत्यु सत्त्व, रज और तमोगुण की प्रधानता होने पर होती है, परन्तु इस अवस्था में तो बच्चा अचेत था।

गीता के आठवें अध्याय के छठे श्लोक में यह बताया गया है कि मरण-समय के विचार ही आगामी जन्म के विषय में निर्णायक होते हैं। एक पाँच वर्ष का बच्चा मरण-समय में जब अचेत अवस्था में पड़ा हो, तो क्या उसमें किसी प्रकार की विचार-शक्ति होने की आशा की जा सकती है?

तो इस बालक को किस प्रकार का दूसरा जन्म प्राप्त होगा?

२. उस बालक के हित के लिए यदि कोई जप, दान आदि सत्कर्म किये जायें, तो क्या उससे उसकी आत्मा को कुछ लाभ पहुँचेगा? मुझे लगता है कि किसी प्रकार की साधना किये बिना ही वह बालक इस संसार से चल बसा।

३. मैं यह मानता हूँ कि प्रार्थनाओं का प्रभाव पड़ता है; परन्तु यह एक शंकास्पद विषय है कि जब मनुष्य को उसके कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है और यह दैवी नियम जब कि अटल है, तो एक व्यक्ति की प्रार्थना से दूसरे की आत्मा को कैसे लाभ पहुँच सकता है?

४. जन्म लेने से पूर्व ही क्या आयु की सीमा निश्चित होती है?

आपका विनीत

उत्तर :

आपके बालक की पाँच वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। इससे उसने अपने पूर्व-जन्म-कृत किसी बहुत ही बलवान् बुरे कर्म का हिसाब चुकता कर दिया। अब वह उस बुरे कर्म से मुक्त हो चुका है। उसे अब उत्तम जन्म प्राप्त होगा और उस स्थिति में वह अधिक साधना कर सकेगा।

मनुष्य का अन्तिम भाव उसके जीवन-भर के विचारों का सार होता है। मृत्यु से पूर्व यदि मनुष्य अचेत हो गया, तो अचेत होने से पूर्व जो उसका अन्तिम विचार था, उस विचार के आधार पर ही उसका अगला जन्म होगा।

प्रार्थना से बहुत ही लाभदायी परिणाम निकलता है। जिस भाँति आप जर्मनी में गये हुए अपने पुत्र की धन और सत्परामर्श के द्वारा सहायता कर सकते हैं, उसी भांति आप प्रार्थना द्वारा भी अपने पुत्र की इस लोक तथा परलोक में सहायता कर सकते हैं। शुभ तथा पवित्र विचार और प्रार्थना का बहुत ही सुखद प्रभाव पड़ता है। उससे उस मनुष्य के अपने तथा उसके सान्निध्य में रहने वाले दूसरे लोगों के जीवन को ढालने में विशेष सहायता मिलती है।

आयु पूर्व-निर्धारित होती है। काल की मर्यादा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है। नन्हीं चींटी से ले कर ब्रह्मा तक इस संसार के सभी प्राणियों को काल अपनी झपट में ले लेता है।

४. प्रश्नोत्तरी

प्रश्न : जीवात्मा स्वर्ग में कितने काल तक निवास करता है?

उत्तर : वह पचास वर्ष अथवा पाँच सौ वर्ष तक रह सकता है। यह इस लोक में किये हुए उसके पुण्य-कर्मों के फल पर निर्भर करता है।

प्रश्न: क्या स्वर्ग में तथा इस लोक में वर्ष की गणना समान ही है।

उत्तर : नहीं, भूलोक के दश वर्ष स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के दश दिन के समान हैं।

प्रश्न : मृत्यु होने से पूर्व क्या दशा होती है?

उत्तर : जीवात्मा सभी इन्द्रियों का आकुंचन कर उन्हें अपने अन्दर खींच लेता है। जिस प्रकार दीपक में रखे हुए तेल के समाप्त होने पर उसकी ज्योति शनैः -शनैः क्षीण पड़ती जाती है, उसी प्रकार स्थूल इन्द्रियाँ भी धीमी होती जाती हैं।

प्रश्न : जीवात्मा शरीर से किस प्रकार बाहर निकलता है?

उत्तर : सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर में अभ्र की भाँति सूक्ष्म रूप से बाहर निकलता है।

प्रश्न : जीवात्मा किस द्वार से शरीर का त्याग करता है?

उत्तर : जब प्राण ऊर्ध्व दिक् की ओर और अपान अधोदिक् की ओर चलते हैं, तब तक जीवन चालू रहता है। परन्तु जिस क्षण प्राण अथवा अपान इन दोनों में से कोई एक मन्द पड़ जाता है, उसके साथ ही जीवन-शक्ति बाहर चली जाती है। यदि अपान बन्द हो जाता है तो जीवात्मा मस्तक, नासिका, कान अथवा मुख

के द्वार से शरीर से बाहर निकल जाता है। यदि प्राण बन्द हो जाता है, तो जीवात्मा गुदा-द्वार से बाहर निकल जाता है।

प्रश्न : जन्म और मृत्यु से ऊपर उठने में प्रेतात्म-विद्या क्या कुछ सहायता कर सकती है?

उत्तर : बिलकुल नहीं। अमर आत्मा का ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान ही आपको जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर सकता है और अमरत्व तथा शाश्वत सुख प्रदान कर सकता है।

प्रश्न : क्या दिवंगत आत्मा तत्काल ही जन्म ले सकता है?

उत्तर : ऐसा सम्भव है; परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत ही कम पाये जाते हैं। यदि जीवात्मा की पुनः जन्म लेने की इच्छा तीव्र हो, तो वह तुरन्त ही जन्म ले सकता है। जीवात्मा को स्वर्ग अथवा नरक में अपने कर्मों के फल भोगने होते हैं। यदि जीवात्मा मरने के पश्चात् तत्काल ही दूसरा जन्म ले लेता है, तो उसे अपने पूर्व-जीवन की बहुत-सी बातें स्मरण रहती हैं।

प्रश्न : नया शरीर धारण करने के लिए जीवात्मा को कितने काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है?

उत्तर : इस विषय में कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती है।

प्रश्न : क्या दिवंगत आत्मा को मूर्त रूप धारण करने की शक्ति होती है?

उत्तर : जिनमें मानसिक शक्ति अधिक होती है, वे उच्च आत्माएँ ही मूर्त रूप धारण कर सकती हैं। वे मनुष्य का रूप धारण करती है, प्रेतात्माओं को बुलाने वाली कुर्सी पर बैठती हैं और वहाँ पर उपस्थित लोगों से हाथ मिलाती हैं। उनका स्पर्श उतना ही प्रभावक तथा गर्म होता है जितना कि एक जीवित व्यक्ति के शरीर का स्पर्श। थोड़ी देर में इन प्रेतात्माओं का शरीर अदृश्य हो जाता है। प्रेतात्माओं के चित्र भी लिये गये हैं।

प्रश्न : प्राणमय शरीर क्या है?

उत्तर : जिस भाँति फुटबाल के अन्दर रबर की एक थैली होती है, उसी भाँति स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर होता है, उसे प्राणमय शरीर कहते हैं। यह प्राणमय शरीर स्थूल शरीर का ठीक प्रतिरूप है। प्राणमय शरीर पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा अन्तःकरण-चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से बना होता है। अतः इस सूक्ष्म शरीर को ही कोई-कोई छाया-शरीर (double) के नाम से पुकारते हैं। मृत्यु के पश्चात् यह सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर को त्याग कर स्वर्ग को जाता है। आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेने पर इस सूक्ष्म शरीर की मृत्यु होती है और उसकी मृत्यु होने पर ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से मुक्त बनता है।

प्रश्न : जन्मान्तर (Metempsychosis) तथा पुनरागमन (Re-incarnation) में भेद क्या है?

उत्तर : मानवात्मा का पशु के शरीर में जन्म लेना जन्मान्तर (Metempsychosis) कहलाता है। एक ही मानव आत्मा का पुनः मानव शरीर में ही जन्म लेना पुनरागमन (Re-incarnation) कहलाता है।

प्रश्न : हमें अपने भूतकाल के जीवन की स्मृति क्यों नहीं रहती ?

उत्तर : हमारी इस वर्तमान सीमित अवस्था में यदि हमें भूतकाल की स्मृति हो, तो उससे हमारे वर्तमान जीवन में बहुत-सी उलझनें उठ खड़ी होंगी। अतः चतुर एवं दयालु परमात्मा ने हमारे मानसिक विकास की इस प्रकार व्यवस्था की है कि जिसमें हमारे भूतकाल के जीवन की स्मृति जब तक हमारे लिए भली प्रकार और हितप्रद न हो, तब तक हम उसे स्मरण न कर सकें। जीवन-परिवर्तन की ऐसी घटनाओं का एक चक्र-सा बन जाता है। जब हम इस चक्र के अन्तिम छोर पर पहुँच जाते हैं, तब हम इसे स्पष्ट रूप से देखते हैं। उस समय हम इन सभी जीवनों को पुष्पमाला की भाँति एक ही व्यक्तित्व-सूत्र में गुंथे हुए पाते हैं।

परिशिष्ट १

पुनर्जन्म

१. स्वर्ग में निवास

जब पुण्यात्मा व्यक्ति शरीर त्याग करते हैं, तो वे स्वर्ग को प्रयाण कर वहाँ निवास करते हैं। सामान्यतया ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वर्ग में उनके निवास की अवधि अस्सी से दो सौ चालीस वर्ष तक की होती है। स्वर्ग में उनके निवास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् वे इस भूलोक में पुनः जन्म लेते हैं।

पुण्यात्मा जन मृत्यु के अनन्तर अपने पुण्यों, अपने सत्कर्मों, अपनी सेवाओं तथा अपने त्यागों के पुरस्कार-स्वरूप स्वर्ग-सुख का उपभोग करते हैं। जब उनके पुण्य-फल समाप्त हो जाते हैं, तो वे भूलोक में वापस आ जाते हैं।

भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं :

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।। (९-२१)

"वे उस विपुल स्वर्ग-सुख का भोग करने पर पुण्य क्षीण हो जाने पर मर्त्यलोक में पुनः प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार स्वर्ग की कामना से वेद-प्रतिपाद्य कर्म का अनुष्ठान करने से संसार में बारम्बार गमनागमन करना होता है।"

किन्तु पुण्यात्मा व्यक्ति जब स्वर्ग से पार्थिव जगत् में वापस आता है, तो वह कुलीन तथा पुण्यात्मा परिवार में जन्म ग्रहण करता है। पुण्य-कर्म का यही लाभ है। व्यक्ति के पुण्य-कर्मों का दोहरा प्रतिफल या पुरस्कार मिलता है। स्वर्ग में निवास करने के पश्चात् भूलोक में वापस आने पर उसे अपने सत्कर्मों तथा आन्तर उद्विकास के लिए अच्छा वातावरण, परिस्थितियाँ तथा सुयोग प्रदान करने वाला अच्छा जन्म प्राप्त होता है।

२. ज्ञानी की मरणोत्तर दशा

ज्ञानी, जिसने अपनी आत्म-सत्ता का परम ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव कर लिया है, उसके लिए न तो जन्म है और न लोकान्तरण । उसके लिए मुक्ति भी नहीं है; क्योंकि वह पहले ही मुक्त हो चुका है। वह सच्चिदानन्द आत्मा की अनुभूति में सुस्थित है।

ज्ञानी को इस विश्व तथा अपने स्वयं के शरीर की धारावाहिक सत्ता मात्र भ्रान्ति प्रतीत होती है। इसके आभास को वह दूर नहीं कर सकता है; पर वह अब उसको और धोखा नहीं दे सकती है। वह शरीर की मृत्यु के पश्चात् ऊर्ध्वगमन नहीं करता, किन्तु वह जहाँ है और वह जो है और सदा था-सभी प्राणियों तथा पदार्थों का प्रथमजात मूल-तत्त्व; आद्य, शाश्वत, शुद्ध, मुक्त ब्रह्म-बना रहता है।

शरीर के रहते समय तथा शरीरपात होने के पश्चात् भी ज्ञानी अपने स्वरूप में विश्राम लेता है जो कि परम पूर्ण, परम शुद्ध, सत्, चित् और आनन्द है। निम्नांकित दृढ़ कथन में एक ज्ञानी की अपनी गम्भीरतम दृढ़ धारणा तथा अनुभूति है-"मैं असीम, अविनाशी, स्वयं-प्रकाश तथा स्वयम्भू हूँ। मैं अनादि, अनन्त, अक्षय, अजन्मा तथा अमर हूँ। मेरी कभी भी उत्पत्ति नहीं हुई है। मैं नित्य मुक्त, पूर्ण, स्वाधीन हूँ; एकमात्र में ही हूँ; मैं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हूँ, मैं सर्वव्यापक तथा सबमें अन्तर्विष्ट हूँ; मैं परम शान्ति तथा आत्यन्तिक मोक्ष हूँ।"

ज्ञानी सदा जीवित रहता है। उसने अनन्त जीवन प्राप्त कर लिया है। लालसाएँ उसे उत्पीड़ित नहीं करतीं, पाप उसे कलंकित नहीं करते, जन्म तथा मृत्यु उसे स्पर्श नहीं करते। वह सभी लालसाओं तथा आशाओं से मुक्त होता है। वह सदा अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप में विश्राम लेता है। वह सभी में एक ही असीम आत्मा के तथा एक असीम आत्मा में सबके दर्शन करता है-असीम आत्मा जो कि उसकी अपनी हो सत्ता है। वह चिदानन्दमय असीम आत्मा के रूप में सदा बना रहता है।

३. पशु-योनि में अधोगमन

हिन्दू-शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार देव, पशु, पक्षी, वनस्पति अथवा पाषाण बन सकता है। उपनिषदें भी इस कथन का समर्थन करती हैं। कपिल भी इस विषय पर सहमत हैं। किन्तु, बौद्ध तथा कुछ पाश्चात्य दार्शनिक शिक्षा देते हैं- 'प्राणी जब एक बार मानव-जन्म ले लेता है, तो फिर उसकी पुनः अधोगति नहीं होती । अशुभ कर्मों के कारण पशु-योनि में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है। उसे मानव-योनि में ही अनेक प्रकार से दण्ड दिया जा सकता है।"

जब मनुष्य देव-रूप धारण करता है, तो उसके सभी मानवीय संस्कार, स्वभाव तथा प्रवृत्तियाँ प्रसुप्तावस्था में रहती हैं। जब मनुष्य श्वान का स्वरूप धारण करता है, तो केवल पाशवी प्रवृत्तियाँ, स्वभाव तथा संस्कार प्रकट होते हैं। मानवीय प्रवृत्तियाँ दमित रहती हैं। कुछ कुत्तों के साथ राजा के राजप्रासादों तथा अभिजातवर्गीय लोगों के प्रासादों में राजसी व्यवहार किया जाता है। वे मोटर गाड़ियों में चलते हैं, स्वादिष्ट भोजन करते हैं और गद्दों पर सोते हैं। ये सब अध:पतित आत्माएँ हैं।

४. स्थूल-शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी लिंग-शरीर जीवित रहता है

मृत्यु के पश्चात् पंचतत्त्वों से निर्मित यह स्थूल शरीर साँप के निर्मोक या केंचुल की भाँति त्याग दिया जाता है। लिंग-शरीर-जिसमें उन्नीस तत्त्व अर्थात् पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच-प्राण, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार होते हैं-स्वर्ग को जाता, भूलोक को वापस आता तथा पुनर्जन्म ग्रहण करता है।

लिंग-शरीर में ही अतीत के सब कर्मों के संस्कार रहते हैं। यह शरीर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने और तत्परिणाम स्वरूप मोक्ष-लाभ करने तक बना रहता है। तब इसका विघटन हो जाता है और इसके घटक तन्मात्राओं अथवा अव्यक्त के महासागर में मिल जाते हैं।

५. आगामी जन्म का स्वरूप

व्यक्ति के मरण-काल में उसके मन में जो अन्तिम सबल विचार अभिभूत रहता है, वही उसके आगामी जन्म के स्वरूप को निर्धारित करता है। यदि मृत्यु के समय उसके मन में चाय का विचार आता है और यदि उसने सत्कर्म किये हैं, तो वह अपने आगामी जीवन में चाय बागान का प्रबन्धक बनता है, और यदि उसने कोई पुण्यप्रद कार्य नहीं किया, तो वह चाय बागान में भारिक रूप में जन्म लेता है।

मरते समय एक मद्यप का विचार मद्य के सम्बन्ध में होता है। व्यभिचारी व्यक्ति जब मरणासन्न होता है, तो उसका विचार स्त्री-विषयक होता है। मैंने एक ऐसे मरते हुए व्यक्ति को देखा, जिसे नस्य-सेवन की आदत थी। जब वह अचेतावस्था में था, तो अपना हाथ बार-बार अपनी नासिका की ओर ले जाता और काल्पनिक रूप से सूँघता था। यह स्पष्ट है कि उसका विचार नस्य के विषय में था। एक औषधालय का चिकित्साधिकारी अपशब्द प्रयोग करने का व्यसनी था, वह जब मरणावस्था में था, उसने सभी प्रकार के अपशब्द तथा अश्लील शब्दों का प्रयोग किया। मैं इससे पूर्व अन्यत्र बतला चुका हूँ कि राजा जड़भरत ने करुणावश एक मृग की बहुत देख-रेख की। धीरे-धीरे उनमें राग उत्पन्न हुआ। जब वे मरणावस्था में थे, तो उनके मन में एकमात्र उस मृग का विचार ही अभिभूत था; अतः उन्हें मृग-रूप में जन्म ग्रहण करना पड़ा।

प्रत्येक हिन्दू-परिवार में मरते हुए व्यक्ति के कानों में 'हरि ॐ', 'राम', 'नारायण' आदि भगवान् का नाम फूंका जाता है। इसका मूल कारण यह है कि मरने वाला व्यक्ति भगवान् के नाम और रूप को स्मरण करे और उसके द्वारा आनन्द-धाम पहुँच जाये। यदि व्यक्ति अनेक वर्षों तक धार्मिक जीवन-यापन करता है और सुदीर्घ काल तक जप तथा भगवान् का ध्यान करता है, तभी वह मरण-काल में स्वभाववश भगवान् और उनके नाम को स्मरण कर सकेगा।

६. स्वर्ग तथा नरक के विषय में वेदान्तिक दृष्टिकोण

वेदान्त के अनुसार स्वर्ग तथा नरक केवल मन की सृष्टि हैं। धर्मात्मा लोगों को सद्गुण, परोपकारिता, प्रेम तथा सेवा के और अधिक कार्य करने की ओर अभिप्रेरित करने के लिए स्वर्ग के आनन्दों का उल्लेख किया जाता है। दुष्ट लोगों को उनके दुष्ट, अनैतिक, अनिष्टकर तथा हानिकारक कामों से रोकने के लिए ही नरक की यातनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

मानव-मन शुद्धता, साधुता, प्रेम, सेवा आदि से अपने चतुर्दिक् अपने स्वर्ग का निर्माण करता है। वह अपवित्रता, भूल, बुराई, अज्ञान आदि द्वारा अपने लिए कष्ट और शोक उत्पन्न करता है जिन्हें नरक की संज्ञा दी गयी है। कवि मिल्टन ने अपने गीत में सच ही कहा है कि मन का अपना स्थान है और वह अपने अन्दर ही स्वर्ग तथा नरक की सृष्टि कर सकता है।

मनुष्य अपने सत्स्वरूप में, अपने आत्म-रूप में नित्य, अजन्मा, अनन्त तथा प्रकाश, आनन्द और शान्ति-स्वरूप है। अज्ञान ही उसके दुःख, परिसीमन, वैयक्तिकता, भूल तथा जन्म-मृत्यु का मूल कारण है। आत्म-साक्षात्कार व्यक्ति को असीम शान्ति, स्वतन्त्रता तथा आनन्द के साम्राज्य में मुक्त कर देता है।

पौराणिक साहित्य इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि करता है कि एक नरक नामक स्वावलम्बी लोक है जो स्वयं में अवस्थित है। कल्पना कीजिए कि एक दुष्ट तथा चिरकाल से मद्य पीने वाला व्यक्ति है। वह प्रत्येक प्रकार के दुर्गुणों के प्रति असंवेदनशील है। यमराज के दूत मृत्यु के अनन्तर उसे नरक नामक लोक में ले जाते हैं और उसे तरसाने वाली यातनाओं तथा उन झुलसाने वाले मरुस्थलों में चलने के सन्ताप को भोगने के लिए छोड़ देते हैं जहाँ उसकी मद्य पीने की तड़फाने वाली पिपासा शान्त नहीं होती। इस भाँति व्यक्ति को कष्ट के रूप में अपनी

भूलों का बदला चुकाना तथा अपनी आत्मा को शुद्ध करना होता है। इसी भाँति एक स्वर्ग नामक स्वावलम्बी लोक है जहाँ धर्मात्मा व्यक्ति को ले जाया जाता है।

७. ऐन, जो पूर्व-जन्म में सिपाही थी

जब धरती के अपने जीवन से बहुत मोह रहता है और इस जीवन की कामनाएँ और स्नेह-सम्बन्धी धरती की घटनाओं से जुड़े रह जाते हैं, तब अधिकांश व्यक्ति अपनी मृत्यु के तुरन्त बाद धरती पर ही जन्म लेते हैं। उनकी आत्माएँ दूसरे लोकों में नहीं जातीं। उनमें से कुछ लोग (यद्यपि ऐसा बहुत कम होता है) अपने अनन्तरित गत जन्म की घटनाएँ स्मरण रखते हैं। 'फेट' पत्रिका में इस प्रकार की दो घटनाएँ वर्ष १९५४ में प्रकाशित हुई थीं। इनका विवरण निम्नांकित है :

चार वर्षीय ऐन, अपने पिता से बोली-डैडी, मैं इस धरती पर कई बार आयी हूँ।"

उसके पिता हँसने लगे। इस पर ऐन नाराज हो कर पैर पटकते हुए बोली- "हाँ-हाँ, आयी हूँ, आयी हूँ, आयी हूँ, एक बार मैं आदमी बन कर कनाडा में जन्मी थी। तब मेरा नाम लिशस फेबर था। मैं तब एक सिपाही थी तथा मोरचे लगाये थे।"

कई महीनों की खोजबीन के बाद यह पता चला कि कनाडा में सचमुच एक युद्ध हुआ था, जिसमें एक लेफ्टीनेन्ट ने अकेले ही मोरचे सँभाले थे। उस लेफ्टीनेन्ट का नाम था एलॉयसियस ला फेने। इसी नाम को ऐन ने अपने ढंग से उच्चारित किया था-लिशस फेबर ।

८. पूर्व-जन्म की माँ से भेंट

बरेली में जन्मे विश्वनाथ ने तीन वर्ष की आयु से ही पीलीभीत नामक कस्बे में बिताये गये अपने गत-जीवन का विवरण देना प्रारम्भ कर दिया था। उसके माता-पिता ने इसका अर्थ यह लगाया कि बालक जल्दी ही मर जायेगा। इसलिए अपने पुत्र की इस असाधारण कहानी को उन्होंने भरसक छिपाये रखा।

बालक विश्वनाथ ने अपने पीलीभीत के उस स्कूल का भी नाम बताया जिसमें वह पढ़ता था। यह भी बताया कि उसके पड़ोसी का नाम लाला सुन्दरलाल था। सुन्दरलाल की तलवार और उनके घर के हरे फाटक का विवरण भी उसने दिया।

इन विवरणों की जाँच करने के लिए बालक को पीलीभीत ले जाया गया जहाँ इस जन्म में वह पहले कभी नहीं गया था। वहाँ उसने पूर्व-जन्म के मकान (जो अब टूटी-फूटी हालत में था) के विभिन्न भागों के बारे में सही-सही जानकारी दी। उसने मकान के एक ऐसे जीने के बारे में भी बताया जो बाहर से दिखायी नहीं पड़ता था। उसको एक 'सामूहिक फोटो' (Group photo) दिखलाया गया। उसने उसमें अपने पूर्व-जन्म के चाचा की ही नहीं, वरन् एक बालक के रूप में बैठे हुए अपनी भी फोटो पहचान ली। उसने जो कुछ बताया, बिलकुल सही निकला। पता चला कि पूर्व-जन्म में उसका नाम लक्ष्मीनारायण था तथा ३२ वर्ष की आयु में यक्ष्मारोग से पीड़ित हो कर उसका देहान्त हो गया था।

लक्ष्मीनारायण की माँ उन दिनों जीवित थीं। उन्होंने विश्वनाथ से तरह-तरह के प्रश्न पूछे। उसने बिना किसी हिचक के हर प्रश्न का सही-सही उत्तर दिया।

९. बर्मी भाषा बोलने वाले सोल्जर कैस्टर

जार्ज कैस्टर ने लन्दन के 'सण्डे एक्सप्रेस' (१९३५) में अपने भूतकाल के कितने ही अनुभवों का विवरण दिया था। वह सैनिक थे और उनका जन्म सन् १८८९ में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वह स्वप्न में शुद्ध बर्मी भाषा बोलते थे। सन् १९०७ में वह सेना में भर्ती हो गये और सन् १९०९ में जब उनकी २० वर्ष की वय थी, तब उनका स्थानान्तरण बर्मा देश के मेमियो नगर को हो गया। उन्हें वहाँ ऐसा लगता कि 'मैंने इस देश को देखा था, इसमें रहा था, बर्मी भाषा बोलता था और ईरावदी नदी को जानता था।' उन्होंने लान्स कार्पोरल कैरिगोन को बतलाया कि ईरावदी के दूसरे तट पर एक विशाल देवालय है। उसकी दीवाल में चोटी से ले कर नीचे तक एक मोटी दरार है और उसके पास ही एक घण्टा पड़ा हुआ है। उनकी बतलायी हुई वे सभी बातें अक्षरशः सत्य निकलीं।

१०. जमापुखुर ग्राम का युवक

कलकत्ता के जमापुखुर ग्राम का एक अठारह वर्ष का बालक अपनी मरण-शय्या पर पड़ा था। उसके माँ-बाप ने उसको स्वस्थ बनाने के लिए एक साधु पुरुष के चरणों की शरण ली और साथ ही अन्य उपाय भी करते रहे। उस लड़के की चाची उन साधु को दोष देने लगी कि उनमें विश्वास रखने के कारण ही वह लड़का मर रहा है। इसे सुनते ही लड़का बोल उठा :

"साधु पुरुष को दोष नहीं देना चाहिए। आप सब उनमें अपना विश्वास नहीं रख सके । यदि मेरे भूतकाल के कर्मों को देखा जाये, तो जो-कुछ मेरे शिर पर बीत रही है, वह कुछ भी नहीं है। मुझे तो इससे सहस्रों गुणा अधिक कष्ट भोगना था। मैं अपने गत जीवन में एक रेलवे आफिस में काम करता था। मैंने एक मनुष्य को मार कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ओह; मैंने उसे कितनी पीड़ा पहुँचायी! वह कर्म कहाँ जायेगा ?

"यह बात आज से पचास वर्ष पहले हुई थी। उस समय शुके स्ट्रीट थाना एक प्रसिद्ध कर्मचारी के अधिकार में था। एक आँख खराब होने के कारण लोग उसे 'काना सार्जेण्ट' कहते थे। उसने मुझे पकड़ लिया। फाँसी से तो मैं बच गया; परन्तु मुझे कठोर कारावास का दण्ड मिला।"

अपनी माँ को सम्बोधित करते हुए उस बालक ने कहा- "माँ! अब मैं जाता हूँ। क्या आप जानती हैं कि ऐसा किस लिए? (अपने पिता जी की ओर लक्ष्य करके) साथ वाले कमरे में जो मनुष्य सो रहा है, वह पिछले जन्म में मेरा पुत्र था। उसने मुझे दुःखी बनाने का भरसक प्रयत्न किया। भूतकाल में इसने जो कर्म किये, उनके परिणाम का इसे पता चल जाये-इसलिए मैं इसके पुत्र के रूप में इस जन्म में आया हूँ। अभी इसे पता लगेगा कि पुत्र अपने पिता को कैसे-कैसे दुःख और क्लेश देता है। कर्म कभी भी टाला नहीं जा सकता है। उसको सहन करने से ही छुटकारा मिलता है।"

(इस बात की खोज करने से ऐसा पता चला कि शुके स्ट्रीट थाने का अधिकारी सारे शहर में 'काना सार्जेण्ट' के नाम से प्रसिद्ध था। उसने पचास वर्ष पूर्व अपने पद से अवकाश ग्रहण किया था।)

११ . हिल-दक्षिण अमरीका का पर्यवेक्षक

श्री हिल 'पीपुल' पत्र के सम्पादक को पत्र लिखते हैं "मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि दक्षिणी अमरीका के कुछ प्रदेश मेरे परिचित हैं। मुझे बार-बार ऐसे स्वप्न आते हैं कि मैं एक पर्यवेक्षक हूँ और मैं उष्णकटिबन्धीय वनों में एकाकी पर्यटन करता हूँ । उस समय काले लोगों का एक दल अकस्मात् मेरे सामने आ पहुँचा, उनके साथ उनकी ही भाषा में बातचीत की; परन्तु किसी कारण से वे मुझ पर क्रोधित हो उठे और उनके नेता ने मुझे मार डाला। अन्ततः मैं रॉयल मेल लाइनर्स में जहाज का एक कर्मचारी (steward) बना और दक्षिण अमरीका पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मैं वहाँ की कितनी ही अनजानी गलियों और इमारतों के नामों का ठीक-ठीक अनुमान पहले से ही लगा लेता था और जब मैं रियो-डि-जनेरो, संटोज़ तथा ब्यूनिस आयर्स के मार्ग से गया, तो मुझे ऐसा लगा है कि मैं अवश्य ही पहले कभी इस मार्ग से गया है। आपनी इन समुद्री यात्राओं में एक बार मैंने डैनिश लेखक को संटोज़ के बन्दरगाह से आपने जहाज पर बिठाया। एक दिन उसने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा और कहा :

'स्टिवर्ड! एक उल्लेखनीय घटना पहले कभी हुई थी। आप उस घटना से भले ही अनजान हों; परन्तु आपका उसके साथ सम्बन्ध मालूम पड़ता है।'

"ऐसा कह कर उन्होंने मुझे मनुष्य की एक खोपड़ी दिखलायी। अमेजन की घाटी में शेर का शिकार करने वाले लोगों से वह उन्हें प्राप्त हुई थी। उन्होंने उस मस्तक को एक विशेष प्रक्रिया द्वारा उसके सामान्य आकार से आधा छोटा बना कर अपने पास सुरक्षित रख छोड़ा था। उसे देख मैं स्तम्भित रह गया और मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने ही शिर का ठीक प्रतिरूप देख रहा हूँ।"

१२. बजीतपुर के डाकबाबू का लड़का

(दिनांक १५-७-३६ के एडवांस पत्र से)

फरीदपुर के निकट बजीतपुर के डाकबाबू का तीन वर्षीय पुत्र एक दिन रोने लग पड़ा और अपने घर जाने का आग्रह करने लगा। एक प्रश्न के उत्तर में उसने बतलाया-

"चिटगाँव के फरीदपुर का मैं निवासी हूँ। लक्षम रेलवे स्टेशन से एक सड़क हमारे गाँव जाती है। वहाँ मेरे तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं। मेहर की काली बाड़ी मेरे निवास-स्थल से अधिक दूर नहीं है। काली बाड़ी में ही सर्वानन्द जी ने मोक्ष प्राप्त किया था । वहाँ पर काली माता की कोई प्रतिमा नहीं है। एक विशाल वट वृक्ष है और मूल में ही पूजा की जाती है। वहाँ पर एक ऊंचा ताड का भी वृक्ष है।"

उस बालक के पिता ने कभी चिटगाँव, लक्षम अथवा काली बाड़ी नहीं देखी है। यह बालक कितने ही बार ऐसे गीत गाता है, जिसे कि उसने अपने इस जीवन में कभी सुना भी नहीं।

१३. अपने माता-पिता को भूल जाने वाली हंगरी देश की बालिका

बुडापेस्ट नगर में सन् १९३३ में हंगरी देश के एक इंजीनियर की पन्दरह वर्ष की एत्री मरण-शय्या पर पड़ी हुई थी। प्रकट में तो वह बालिका मर गयी; परन्तु कुछ काल के पश्चात् वह पुनः चैतन्य हो उठी, वह अपनी

मातृभाषा हंगेरियन पूर्णतः भूल गायी और केवल स्पेनिश भाषा में ही बातचीत करने लगी। वह अपने माता-पिता को भी पहचान नहीं सकती है। उनके विषय में वह कहती- "ये भले मानस मेरे साथ बहुत ही सज्जनता का व्यवहार करते हैं। वे मेरे माता-पिता होने का दिखावा करते हैं; परन्तु वे मेरे माता-पिता हैं नहीं।" एक स्पेनिश दुभाषिये से उसने कहा- "मेरा नाम सीनोर लूसिड अत्तरज़र्ड सैल्वियो है। मैं मैड्रिड के एक श्रमिक की पत्नी हूँ और मेरे चौदह बच्चे हैं। चालीस वर्ष की अवस्था में मैं कुछ बीमार पड़ी। कुछ दिन पूर्व में मर गयी अथवा मुझे ऐसा प्रतीत-सा हुआ कि मैं मर रही हूँ। अब मैं इस अनजाने देश में आ कर स्वस्थ हो गयी हूँ।"

वह बालिका अब स्पेनिश गीत गाती है, स्पेन देश के विशेष प्रकार के भोजन बनाती है और मैड्रिड नगर का बहुत ही स्पष्ट वर्णन करती है, जिसे कि उसने कभी देखा नहीं।

१४. दिल्ली के जंगबहादुर की पुत्री

दिल्ली के व्यापारी लाला जंगबहादुर की आठ वर्ष की पुत्री ने जबसे बोलना आरम्भ किया, तभी से वह कहती है कि पिछले जन्म में उसका विवाह मथुरा के एक सज्ञन के साथ हुआ था। उनका पता भी उसने बतलाया। जब उसके पूर्व-जीवन के पति को इस बात की सूचना दी गयी, तो उन्होंने अपने भाई को भेजा। इस बालिका ने उन्हें पहचान लिया। तदनन्तर जब उसका पति उससे मिलने आया, तो उन्हें भी उसने तुरन्त पहचान लिया और उन्हें कितनी ही बातें ऐसी बतलायीं जिन्हें वह सज्जन तथा उनकी पहली पत्नी ही जानते थे। उसने उन्हें यह भी बतलाया कि उसने उनके घर के अन्दर एक स्थान में सौ रुपये गाड़ रखे हैं।

१५. कानपुर के देवीप्रसाद का पुत्र (अमृत बाजार पत्रिका, दि.१-५-३८)

कानपुर के प्रेमनगर में रहने वाले देवीप्रसाद भटनागर का एक पाँच वर्ष का पुत्र कहता है कि पूर्व-जन्म में उसका नाम शिवदयाल मुख्तार था और सन् १९३७ में कानपुर के उपद्रव के समय उसकी हत्या की गयी। उसके दो मुसलमान मित्रों ने छलपूर्वक उसे घर में ले जा कर मार डाला। एक दिन वह बालक अपने पहले के घर जाने का आग्रह करने लगा, जहाँ उसकी पत्नी बीमार पड़ी थी। उस बालक को वहाँ ले जाया गया और उसने तुरन्त ही अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को तथा अन्य वस्तुओं को पहचान लिया।

१६. डेढ़ वर्ष की आयु में गीता-पाठ

(अमृत बाजार पत्रिका के प्रयागराज के संवाददाता की सूचना)

झाँसी का एक तीन वर्ष का बालक भगवद्गीता तथा रामायण का मौखिक पाठ करता है और उसका उच्चारण शुद्ध होता है। जब वह बालक पाँच मास का था, तभी से वह कुछ कहने का प्रयास करता; किन्तु बोल न सकता था। डेढ़ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर वह अपने श्रोताओं को गीता सुनाने लगा।

१७. पाँच वर्ष की बालिका तथा पिआनो

(पीपुल, दि. १०-६-३७)

ब्लैकपूल की एक पंचवर्षीय बालिका गुड़ियों के साथ खेलने के स्थान पर पिआनो बजाती है। उसने पिआनो बजाने की शिक्षा कभी नहीं ली; फिर भी वह उसे बड़ी कुशलता से बजा लेती है। जो कोई भी मधुर राग वह सुनती है, उस पर अच्छी तरह से पिआनो बजा सकती है। इसके साथ ही वह अपनी भी दो-एक रचनाएँ बजाती है।

१८. कलकत्ता के बैरिस्टर की पुत्री

कलकत्ता के हाई कोर्ट के बैरिस्टर की लड़की जब वह केवल तीन वर्ष की थी, तभी वह घर का फर्श बहुत ही सुन्दर ढंग से साफ करती थी। पूछने पर उसने बतलाया-

"बेलदंग में मैं अपने श्वसुर के घर की सफाई किया करती थी। मैं पूजा करती तथा ठाकुर जी का भोग लगाती थी। मेरे श्वसुर के घर में एक डोल मंच था। डोल-यात्रा के दिन हम ठाकुर जी को एक हिंडोले में पधराते थे और उसको खूब अबीर मलते थे।"

यह बालिका बड़े आचार से रहती है और अपने माता-पिता के साथ खान-पान तथा उठने-बैठने का व्यवहार नहीं रखती; क्योंकि वे लोग पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में आ गये हैं; अतः उस बालिका के विचार से वे लोग अस्पृश्य हैं। उसका भोजन अलग पकाया जाता है।

इन बातों की सत्यता की जाँच आज (सन् १९४३ में) भी सरलता से की जा सकती है।

१९. जीव के पुनर्जन्म की एक विचित्र घटना

(अमृत बाजार पत्रिका, अगस्त १९४३)

मुरादाबाद, अगस्त २३- बदायूँ जिले के बिसौली ग्राम का प्रमोद नाम का एक बालक १५ अगस्त को जब से यहाँ आया, तब से यहाँ पर एक सनसनी-सी फैल गयी है। इस बालक ने अपने पूर्व-जन्म की घटनाएँ बतलायीं और वे सर्वांशतः सत्य निकलीं। यहाँ पर उसके इस दो दिवसीय निवास-काल में सहस्रों व्यक्तियों ने, जिनमें इस नगर के कितने ही गणमान्य व्यक्ति भी सम्मिलित थे, उससे भेंट की और अन्त में यह निश्चित हुआ कि यह पुनर्जन्म की एक असन्दिग्ध घटना है। साढ़े पाँच वर्ष का यह बालक कहता था कि वह श्री बी. मोहनलाल का भाई परमानन्द है जिसकी मृत्यु ९ मई, १९४३ को सहारनपुर में जीर्ण उदर-शूल के कारण हुई थी। श्री बी. मोहनलाल मैसर्स मोहन ब्रदर्स की प्रसिद्ध केटरिंग फर्म के मालिक हैं। इस फर्म की शाखाएँ सहारनपुर तथा मुरादाबाद में भी हैं।

परमानन्द की मृत्यु के ठीक नौ महीने छह दिन के पश्चात् १५ मार्च, १९४४ को बिसौली ग्राम में स्थानीय इण्टर कालेज के प्राध्यापक बाबू बाँकेलाल शर्मा, शास्त्री, एम. ए. के पुत्र-रूप में उनका जन्म हुआ। बालक ने जब से बोलना आरम्भ किया, तभी से मोअन, मुरादाबाद तथा सारनपुर अर्थात् सहारनपुर स्पष्ट रूप से कहने लगा और बाद में वह 'मोहन ब्रदर्स' शब्द भी स्पष्ट रूप से कहने लगा। जब कभी वह अपने सम्बन्धियों को बिस्कुट, मक्खन आदि खरीदते देखता, तो वह कहता कि 'मेरी मुरादाबाद में बिस्कुट की बहुत बड़ी फैक्टरी है।' जब कभी वह कोई बड़ी दुकान देखता है, तो कहता है कि 'मुरादाबाद की मेरी दुकान सभी दुकानों से बड़ी है।' कभी-कभी वह अपने माता-पिता से उसे मुरादाबाद ले चलने के लिए आग्रह करता। यह एक विचित्र संयोग है कि पण्डितों ने उसकी जन्म कुण्डली में उसका नाम परमानन्द ही रखा; परन्तु उसके बड़े भाई का नाम वर्मोद था। इससे उसका

नाम भी प्रमोद रखा गया; परन्तु बालक तो सदा अपनी इस बात पर अड़ा रहा कि उसका नाम परमानन्द है और मुरादाबाद में उसके भाई, पुत्र, पुत्री और एक पत्नी हैं।

इस वर्ष के प्रारम्भ में ही ऐसी बात हुई कि बिसौली ग्राम के लाला रघुनन्दन लाल ने मुरादाबाद में रहने वाले अपने एक सम्बन्धी से इस बालक के तथा मोहन ब्रदर्स के साथ अपने सम्बन्ध होने के उसके दावे के विषय में चर्चा की। तदुपरान्त उस सम्बन्धी ने फर्म के मालिक श्री मोहनलाल से वे सब बातें बतलायी। अपने कुछेक सम्बन्धियों के साथ श्री मोहनलाल जी बिसौली पधारे और उस बालक के पिता से भेंट की। बालक अपने एक सम्बन्धी के साथ दूर ग्राम में गया हुआ था; अतः उससे वे न मिल सके। श्री मोहनलाल ने प्राध्यापक बाँकेलाल से उस समय बालक को मुरादाबाद लाने के लिए प्रार्थना की। श्री बाँकेलाल ने इसे स्वीकार कर लिया और तदनुसार यह निश्चय हुआ कि आगामी स्वतन्त्रतादिवसोत्सव पर प्राध्यापक जी उस बालक को मुरादाबाद लायेंगे।

पन्दरह अगस्त को जब उस बालक को मुरादाबाद ले गये, तो गाड़ी से उतरते ही उसने अपने भाई को तुरन्त पहचान लिया और उसके गले से लिपट गया। स्टेशन से श्री मोहन लाल जी के घर जाते समय उस बालक ने मार्ग में टाउनहाल को पहचान लिया और बोला कि 'अब मेरी दुकान निकट ही है।' उस बालक की परीक्षा के लिए पहले से ही व्यवस्था की गयी थी, तदनुसार मोहन ब्रदर्स की दुकान आ जाने पर ताँगा रोका नहीं गया; परन्तु उस बालक ने तुरन्त ही ताँगा रुकवा दिया। बालक दुकान के सामने वाले घर की ओर बढ़ा और जहाँ पर स्वर्गीय परमानन्द अपनी पूजा की सामग्री तथा तिजोरी रखते थे, उस कमरे में चला गया। कमरे में प्रवेश करते ही उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। जब उस बालक ने पूर्व-जन्म की अपनी पत्नी तथा परिवार के अन्य लोगों को पहचान लिया और उनके सम्बन्ध में अपने जीवन की कितनी ही घटनाओं को स्मरण दिलाया, तब वहाँ का वातावरण बहुत ही करुण हो उठा। सभी ने यह स्वीकार किया कि वे सभी घटनाएँ सच्ची हैं। परमानन्द की मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठ पुत्र की आयु केवल तेरह वर्ष की थी। अब वह सतरह वर्ष का हो चला था। वह बालक पूर्व-जन्म के अपने इस पुत्र को पहचान न सका। जब उस बालक ने यह स्मरण दिलाया कि सभी भाई इकट्ठे बैठ कर लेमन इत्यादि पिया करते थे, तो उसके सभी भाई तथा अन्य उपस्थित जन रो पड़े।

इसके पश्चात् उस बालक ने अपनी दुकान की गद्दी को जाना चाहा। दुकान में जाने के अनन्तर वह सोडा मशीन के पास गया और सोडा तैयार करने की विधि बतलायी। यह वस्तु उसने अपने इस जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी। उसने बतलाया कि पानी का कनेक्शन बन्द कर रखा है और वास्तव में ही उसकी स्मृति की जाँच के लिए ऐसा किया गया था।

तत्पश्चात् उस बालक ने विक्टोरिया होटल जाने की इच्छा प्रकट की। इस होटल के मालिक स्वर्गीय परमानन्द के चचेरे भाई श्री कर्मचन्द जी थे। वह होटल में गया और जब वह उस मकान के ऊपरी खण्ड पर पहुँचा, तो उसने तुरन्त ही कहा कि 'छत पर बने हुए वे कमरे पहले वहाँ नहीं थे।'

मुरादाबाद के प्रमुख नागरिक श्री साहु नन्दलाल शरण उस बालक को अपनी मोटर में बैठा कर मेस्टन पार्क ले गये और जहाँ पर एक समय उसकी दुकान की सिविल लाइन की शाखा थी, उस स्थान को बतलाने के लिए कहा। वह बालक उस जन-समुदाय को श्री साहु नन्दलाल शरण की गुजराती बिल्डिंग के पास ले गया और जहाँ पर पहले मोहन ब्रदर्स की शाखा थी, उस दुकान को उसने बतलाया। मेस्टन पार्क के मार्ग में उस बालक ने इलाहाबाद बैंक, वाटर वर्क्स तथा जिला जेल आदि पहचान लिये।

यह बात यहाँ ध्यान देने की है कि वह बालक अपने पूर्व-जन्म से सम्बन्धित स्थानों को देखने की इच्छा से अथवा अपनी स्मृति की परीक्षा के लिए नगर के जिन विभिन्न स्थानों को गया, वहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में लोग

उपस्थित थे। यह एक दर्शनीय दृश्य था। इससे सभी लोगों के हृदय गद्गद हो उठे । उस बालक ने अन्य अनेक स्थानों को तथा उन लोगों को जो कि उसके जीवन काल में उसकी दुकान पर आते-जाते थे, पहचान लिया।

आर्य समाज भवन में १६ अगस्त को एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें बालक के पिता प्रोफेसर श्री बाँकेलाल ने बालक की पूर्व-स्मृति उसकी बाल्यावस्था में किस प्रकार विकसित हुई, इस विषय के बारे में समझाया।

जो लोग ईश्वर अथवा पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते, उन लोगों पर इस घटना का बहुत ही गम्भीर प्रभाव पड़ा। एक सज्जन ने कहा- "जिन लोगों को इस विषय पर श्रद्धा है, उन्हें किसी भी व्याख्या की आवश्यकता नहीं और जो लोग विश्वास नहीं रखते, उनके लिए कोई भी व्याख्या सम्भव नहीं ।"

उस बालक को मुरादाबाद से वापस ले जाने में बड़ी कठिनाई हुई। वह अपने पूर्व-जन्म के सम्बन्धियों को तथा दुकान को छोड़ना नहीं चाहता था; अतः सतरह अगस्त को बड़े प्रातःकाल ही जब वह सो रहा था, तब उसे ले जाया गया।

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि न तो बालक और न उसके पिता ही इससे पूर्व कभी मुरादाबाद गये थे। उस बालक ने जिस ढंग और जिस रूप से विवरण प्रस्तुत किये, वे सभी सम्पूर्ण रीति से ठीक निकले, उनमें कुछ भी त्रुटि न थी।

लगभग बारह वर्ष पूर्व इसी प्रकार की अथवा इससे भी विशेष कुतूहलपूर्ण घटना दिल्ली में हुई, जिसमें शान्ति देवी नाम की नौ वर्षीया बालिका को मथुरा ले जाया गया। वहाँ उसने अपने पूर्व-जन्म के पति, घर और पूर्व-जन्म से सम्बन्धित बहुत-सी वस्तुएँ पहचान लीं।

२०. जीवात्मा के परिवर्तन की एक विचित्र घटना

(अमृत बाजार पत्रिका)

जीवन में कितनी ही विचित्र घटनाएँ होती हैं, वे सभी मान्य हैं अथवा नहीं-इस विषय में हमें असमंजस-सा होता है और यदि संयोगवश वे घटनाएँ कहीं अलौकिक हुई, तो यह असमंजस और भी बढ़ जाता है। यद्यपि एक सुसंस्कृत एवं सुसभ्य मानव के रूप में हम ऐसी बात मानने को तैयार नहीं होते, तथापि प्रत्येक मानव-मस्तिष्क में जिज्ञासा की वृत्ति होती है और जब तक यह ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हो जाती, तब तक हम उस विषय की और अधिक गहराई में प्रवेश करते रहते हैं और उसके परिणाम-स्वरूप उस विषय में अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करते हैं।

गंगानगर (राजस्थान) के सेठ सोहनलाल मेमोरियल इंस्टीट्यूट के मनोविज्ञान विभाग के निदेशक श्री एच. एन. बनर्जी ने मानव-जीवात्मा के देहान्तरण के विषय में एक विचित्र उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुजफ्फरनगर जिले के रसूलपुर ग्राम के यशवीर नामक एक तीन वर्षीय बालक के विषय की यह घटना है। यह बालक एक रात्रि में मर गया; परन्तु उसके माता-पिता ने दूसरे दिन तक उसके शव को न गाड़ने का निश्चय किया। कुछ काल पश्चात् उस बालक के शरीर में जीवन के कुछ-कुछ लक्षण प्रकट होने लगे और दो एक दिनों में तो वह पूर्ण स्वस्थ हो चला। परन्तु जब वह बालक स्वस्थ हुआ, तो वह पहले से सर्वथा भिन्न व्यवहार करने लगा। उसने घर में भोजन करने से इनकार कर दिया। वह कहता कि 'मैं तो ब्राह्मण का बालक हूँ। यहाँ से बाईस मील दूर विदेही ग्राम के निवासी श्री शंकरलाल त्यागी मेरे पिता लगते हैं।' उस बालक को लगभग अठारह मास तक एक ब्राह्मण-स्त्री के

हाथ का पकाया हुआ भोजन दिया गया। इतने में एक दिन विदेही ग्राम के पण्डित रविदत्त जी, जो कि पाठशाला में एक अध्यापक हैं, रसूलपुर आये। बालक यशवीर ने उन अध्यापक को तुरन्त ही पहचान लिया और उनके साथ वह विदेही ग्राम की तथा श्री शंकरलाल त्यागी के घर के विषय में कितनी ही बातें करने लगा। इससे सबको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उस बालक को विदेही ग्राम में ले गये। उसने उस ग्राम वालों को पहचान लिया। वहाँ पर जाँच करने से ऐसा पता लगा कि शंकरलाल त्यागी का पचीस वर्ष का एक पुत्र था। वह विवाहित था और उसके तीन पुत्र थे। वह जब मरा, तभी से यशवीर के शरीर में परिवर्तन घटित हुआ। यह घटना चार वर्ष पहले की है। यशवीर अब भी रसूलपुर ग्राम में रहता है; परन्तु उसकी और उसके माता-पिता की परस्पर बनती नहीं है और इससे वे दोनों ही दुःखी रहते हैं।

वाणिज्य एवं व्यवसाय विभाग के एक कर्मचारी श्री जे. पी. भारद्वाज जी ने श्री बनर्जी का ध्यान इस विचित्र घटना की ओर आकर्षित किया। श्री बनर्जी ने दोनों ग्रामों के लगभग एक सौ व्यक्तियों को बुलवा कर इस घटना की जाँच की और ऐसा मालूम हुआ कि घटना बिलकुल सत्य है।

२१. पुनर्जन्म की एक नवीनतम सुप्रसिद्ध घटना-शान्ति देवी

बीस वर्ष पूर्व दिल्ली के एक पुनर्जन्म-सम्बन्धी अत्यन्त मर्मस्पर्शी समाचार के प्रमुख भारतीय तथा विदेशी समाचार-पत्रों में प्रकाशन की खूब धूमधाम रही। मर्मस्पर्शी इसे इसलिए कहते हैं कि इसमें आश्चर्यजनक रूप से पूर्व जन्म की सच्ची तथा विश्वसनीय बातें प्राप्त हुई थीं तथा इसका समाचार देने वाली एक स्थानीय समिति थी जिसमें प्रगतिशील विवेकी तथा योग्य व्यक्तियों का समावेश था।

शान्ति देवी का जन्म १२ अक्तूबर सन् १९२५ को हुआ था। इस बालिका के स्मृति-पटल पर सन् १९०२ से ले कर सन् १९२५ तक की सम्पूर्ण अवधि की अपने विगत जीवन-सम्बन्धी सभी घटनाओं का सुस्पष्ट तथा जीवन्त चित्र अंकित था। जब से इस नन्हीं बालिका ने बोलना आरम्भ किया, तब से ही वह प्रायः प्रतिदिन अपने पूर्व-जन्म में घटित हुई बातें स्मरण करके बतलाती रहती थी। मथुरा के पण्डित केदारनाथ चौबे को वह अपना पति बतलाती थी और उनके साथ-सम्बन्धी प्रसंग आश्चर्यकर रूप से वर्णन करती थी। इन बातों में विश्वास न करने वाले उसके माता-पिता उसके विगत जीवन के इस सचित्र विवरण को शिशु-प्रलाप समझ कर न केवल उपेक्षा ही करते थे, वरन् वे इस आशा में थे कि आयु के बढ़ने के साथ ही उसके स्मृति-पटल से ये चित्र स्वतः ही मिट जायेंगे; परन्तु उनकी आशा एवं आकांक्षा के प्रतिकूल वह बालिका अपने विगत जीवन की स्मृति में अधिकाधिक दृढ़ रही तथा अपने माता-पिता से यह आग्रह करती रही कि वे उसे मथुरा ले जायें जहाँ उसका पिछला जन्म हुआ था। उसकी यह इच्छा थी कि 'मैं अपने इस जन्म के माता-पिता को अपना पुराना घर तथा उसकी कुछ ऐसी विशेष वस्तुएँ दिखाऊँ जो कि उस घर से सुपरिचित तथा दीर्घ काल तक रहने वाला व्यक्ति ही दिखला सकता हो।'

यह बालिका अन्ततः अपने माता-पिता को समझाने में सफल हुई। उस लड़की के दादा को बुलवाया गया। शान्ति देवी ने उन्हें अपने पूर्व-जन्म के पति का पता बतलाया। उस पर खोज की गयी। उसके पति पण्डित केदारनाथ के साथ पत्र-व्यवहार किया गया और बड़ा आश्चर्य यह कि मथुरा के पण्डित केदारनाथ जी का उत्तर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पत्र में अन्य बातों के साथ जाँच-समिति को यह परामर्श दिया कि 'वे दिल्ली में मेसर्स भानमल गुलजारीमल के यहाँ काम करने वाले मेरे एक सम्बन्धी पण्डित कानजीमल से मिलें और बालिका शान्ति देवी से उनकी भेंट करायें।' इस पर पण्डित कानजीमल जी जब उस बालिका से मिले, तो उसने उन्हें केवल पहचान ही नहीं लिया कि वह उसके पति के चचेरे भाई हैं, वरन् अपने पूर्व-जीवन में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित घटनाओं को स्पर्श करने वाले उनके सभी प्रश्नों का बहुत ही सन्तोषजनक उत्तर दिया।

इस प्रकार जब शान्ति देवी ने अपने विगत जन्म की घटनाएँ तथा अनुभव की बातें बतलायीं, तब उसके माता-पिता, जाँच-समिति तथा कानजीमल में इस बात की गम्भीरता से छानबीन करने की नवीन सक्रिय अभिरुचि जग उठी। उन्होंने केदारनाथ चौबे को मथुरा से दिल्ली बुलवाया। तद्नुसार जब पण्डित केदारनाथ चौबे अपने दश वर्षीय पुत्र तथा नव-परिणीता पत्नी के साथ शान्ति देवी से मिलने दिल्ली आये, तब शान्ति देवी ने तुरन्त ही अपने पति को पहचान लिया। अपने पुत्र को देख कर वह इतनी प्रभावित हुई कि उसके नेत्रों से आँसू उमड़ पड़े। शान्ति देवी तथा उसके तथाकथित पति पण्डित केदारनाथ चौबे में परस्पर बड़ी देर तक वार्ता होती रही। शान्ति देवी ने जो सत्य घटनाएँ प्रस्तुत कीं, उनसे चौबे जी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने स्वीकार किया कि 'मेरी पत्नी का अभी कुछ ही वर्ष पूर्व मथुरा में देहान्त हुआ था, उसकी आत्मा इस बालिका में है और इसने जो-जो बातें प्रस्तुत की हैं, वे सभी सच्ची हैं।'

शान्ति देवी ने इससे पूर्व भी अनेक बार अपने माता-पिता से मथुरा जाने की याचना की थी; परन्तु जब से उसकी भेंट श्री चौबे जी से हुई, तब से उसकी माँग ने और अधिक जोर पकड़ा। अब उसके माता-पिता भी उसकी इस बार-बार की प्रार्थना को स्वीकार करने को तैयार थे। शान्ति देवी ने अपने मथुरा वाले घर का रंग तो बतलाया ही, साथ ही उसने उस घर को जाने वाली सड़कों तथा गलियों के नाम भी बतलाये। इसके अतिरिक्त विश्राम घाट तथा द्वारिकाधीश के मन्दिर का वर्णन भी किया। इतना ही नहीं, उसने कुछ बातें ऐसी भी बतलार्थी जिनका कि पण्डित केदारनाथ जी की पहली धर्मपत्नी को ही पता था। उसने यह भी बतलाया कि उसने मथुरा में अपने घर की ऊपरी मंजिल के कमरे में सौ रुपये गाड़ रखे हैं जिन्हें कि उसने द्वारकाधीश के मन्दिर में चढ़ाने का संकल्प कर रखा था।

शान्ति देवी के मथुरा जाने की प्रार्थना और अभिलाषा को स्वीकार कर उसके माता-पिता तथा घटना की सत्यता की जाँच करने वाली समिति के सदस्यों ने शान्ति देवी के साथ दिल्ली से प्रस्थान किया। अभी जब गाड़ी मथुरा स्टेशन के पास पहुँची ही थी कि शान्ति देवी उल्लास में आ कर 'मथुरा आ गया, मथुरा आ गया' पुकारने लगी और जब वह गाड़ी से उतरी, तो उसने भीड़ में खड़े हुए एक वृद्ध सज्जन को पहचान लिया। यह सज्जन मथुरा की विशेष वेशभूषा धारण किये हुए थे और शान्ति देवी इससे पूर्व उनसे कभी भी नहीं मिली थी। वह श्री देशबन्धु गुप्त जी की गोद में थी। वहाँ से वह नीचे उतरी और सहज भाव से उन वयोवृद्ध सज्जन के चरण स्पर्श कर कहने लगी कि 'यह मेरे पतिदेव के ज्येष्ठ भ्राता हैं।' बात बिलकुल ठीक थी। यह बात भी शान्ति देवी के उन अनेकानेक कौतूहलजनक कार्यों में से एक थी जिनके कारण वह अपने दर्शकों की प्रशंसा तथा सम्मान का पात्र बनी।

स्टेशन से अपने घर आने का मार्ग तो वह बतलाती ही रही, साथ ही उसने कई रोचक बातें भी बतलायीं। उदाहरणतः उसने बतलाया कि उस विशेष सड़क पर उन दिनों अलकतरा (तारकोल) नहीं पड़ा था। जब उसने अपने घर में प्रवेश किया, तो उसकी जाँच करने के लिए उसके साथ एक सज्जन भी थे। उन सज्जन ने उसके परीक्षार्थ जो भी प्रश्न किये, उन सबके उसने बहुत ही सन्तोषजनक उत्तर दिये। जब उसे मथुरा की धर्मशाला ले गये, तो वहाँ उसने अपने पूर्व जन्म के भाई को पहचान लिया। उसकी पूर्व-कथित सभी बातें जिन्हें कि पहले लोग शिशु-प्रलाप मात्र समझ कर उपेक्षा करते थे, अब पग-पग पर सच निकलीं- वह भी ऐसी अकाट्य सत्य कि जिनमें सन्देह का कोई स्थान न था। उसके पूर्व-जीवन-काल में उसके घर के प्रांगण में एक कुआँ था। वहाँ प्रवेश करने पर जब शान्ति देवी ने उस कुएँ को वहाँ न देखा, तो उसे कुछ निराशा-सी हुई। उसके पति पण्डित केदारनाथ जी उसके इस भाव को जान गये और उन्होंने दीवाल-हीन कुएँ को ढकने वाले पत्थर को हटा दिया और उसे वह कुआँ दिखलाया।

शान्ति देवी ने घर की ऊपरी मंजिल पर जा कर, जिस कोने में रुपये गाड़ रखे थे, उसे स्वयं खोदा; परन्तु रुपये वहाँ न मिले। इससे वह उद्विग्न-सी हो गयी। पण्डित केदारनाथ ने यह स्वीकार किया कि प्रथम पत्नी (वर्तमान शान्ति देवी) के स्वर्गवास के अनन्तर उन्होंने उस धन को वहाँ से निकाल लिया था। तदनन्तर शान्ति देवी को

उसके पूर्व-जीवन के माता-पिता के पास ले गये। उसने उन्हें तुरन्त ही पहचान लिया। इस पर बालिका तथा उसके माता-पिता-तीनों ही सिसक-सिसक कर रोने लगे। बड़ी कठिनाई से बालिका को उनसे अलग किया जा सका। माता-पिता के पास से उस बालिका को विश्राम घाट ले गये। वहाँ भी उसने अपने पूर्व जीवन के संस्मरण- सम्बन्धी कितनी ही बातें बतला कर जाँच करने वाली समिति के सदस्यों तथा अन्य लोगों को आश्चर्य में डाल दिया।

इस प्रकार की घटनाएँ भारत में असाधारण नहीं हैं। अभी सात वर्ष पूर्व एक ऐसी ही दूसरी बालिका का उदाहरण देखने में आया था। उस बालिका ने भी अपने पूर्व-जन्म के माता-पिता को पहचान लिया था। इसकी सत्यता की जाँच करने पर उसकी बतलायी हुई सभी बातें ठीक निकलीं। उस बालिका के पूर्व-जन्म के माता-पिता धनाढ्य हैं; अतः वे उस बालिका के भरण-पोषण का प्रबन्ध करते हैं तथा उसे उच्च शिक्षा भी दिला रहे हैं, क्योंकि बालिका के वर्तमान माता-पिता निर्धन हैं। पुनर्जन्म के विषय में खोजबीन की गयी हैं, उनके परिणाम को जानने का कष्ट न कर इस सिद्धान्त को ही अयथार्थ मान बैठना हास्यास्पद ही है।

२२. मृदुला अपने विगत जीवन का विवरण देती है

एक बालिका, जिसकी आयु लगभग दो वर्ष होगी, 'माँ, माँ' चिल्लाती हुई अपनी माता की गोद से कूद पड़ी और अपनी इष्ट वस्तु की ओर दौड़ने लगी। उसी समय एक सम्भ्रान्त महिला मृदुला के घर के सामने अपनी मोटर कार से बाहर निकल रही थी। बालिका मोटर की ओर भाग कर गयी और तुतलाते हुए कहने लगी- "ओहो, यह मोटर कार तो मेरी है और यह मेरी माँ है।" बालिका की ओर ध्यान न दे कर वह महिला आगे चली गयी। मृदुला की माँ को भय लगा कि कहीं वह सड़क पर खो न जाये, अत: वह भाग कर बाहर आयी।

किन्तु मृदुला मोटर कार के पास से जाने को तैयार न थी। वह इधर-उधर देख रही थी मानो कि वह किसी वस्तु की खोज में हो। उसका मुख उत्तेजना और आनन्द से पुलकित हो रहा था, किन्तु उसकी माता को इससे क्या? वह तो हैरान थी; अतः बालिका को बलात् अपने घर उठा ले गयी। उस रात्रि मृदुला अपने-आपे में न थी। वह अपनी माँ से अनेक प्रकार की बातें करती रही जैसे कि वृद्ध व्यक्ति अपने अतीत जीवन के दिनों की याद कर रहा हो।

मृदुला कहती-"माँ! मेरा एक दूसरा घर है। हमारे छह हाथी और एक मोटर कार भी है। वहाँ मेरी छोटी बहनें, पिता तथा कई सहेलियाँ भी हैं। क्या आप मुझे अपनी पहली माँ के पास ले चलने की कृपा करेंगी? मैंने वापस आने के लिए वायदा किया था। मैं घर जाने के लिए कितनी उत्सुक हूँ!" वह इसी प्रकार असंगत बातें बड़बड़ाती रहती थी। असंगत इसलिए कहा कि दूसरों को उसकी बातें असंगत-सी ही लगती थीं। हाँ, उसके लिए वे निश्चय ही असंगत नहीं थीं। उसकी माँ बहुत व्यग्र हो रही थी और उसे आश्चर्य हो रहा था कि बालिका का दिमाग ठीक तो है।

दिन, सप्ताह और महीने बीत गये। छह मास से अधिक व्यतीत हो चले, किन्तु मृदुला अपनी पुरानी (अपने बड़े मकान, कार और सहेलियों के सम्बन्ध की) बातें दोहराती रही। बेचारी माँ ने बहुतेरा प्रयत्न किया, किन्तु वह बालिका को शान्त न कर सकी। अन्त में करुणामय भगवान् उनकी सहायता को आये। एक बड़ा यज्ञ हो रहा था, जिसमें समाज के बहुत से व्यक्ति सम्मिलित हुए। मृदुला की माँ भी अपनी बच्ची के साथ वहाँ गयी । यज्ञ समाप्त हो चला था। दो बच्चे मृदुला से कुछ दूरी पर बैठे हुए थे। वह उन्हें देख रही थी। वह उनके पास दौड़ी हुई गयी और अपने गले में पहनी हुई पुष्पमाला को गले से निकाल कर उनके गले में पहना दिया।

उन बच्चों की माँ पास ही खड़ी थी। उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मृदुला की इस भावना की मन-ही-मन बड़ी प्रशंसा की और उससे कहा- "तुम बहुत भली लड़की मालूम पड़ती हो। क्या तुम इन बालकों को जानती हो?" मृदुला ने तुरन्त उत्तर दिया- "मैं इन बच्चों को तो नहीं जानती, पर तुम्हें अच्छी तरह जानती हूँ।" फिर उसने भाव-विह्वल हो कर पूछा- "क्या तुम मुझे पहचान नहीं रही हो ? मैं तुम्हारी बड़ी बहन मुन्नू हूँ। हमारे पिता जी और माता जी कहाँ हैं? हमारे हाथी कैसे हैं?" मृदुला ने इसी भाँति उत्तेजित हो कर उसे कई बातें ऐसी बतलायीं जो उस परिवार का बहुत घनिष्ठ व्यक्ति ही जान सकता था।

उन दोनों बच्चों की माँ आश्चर्यचकित रह गयी। उसने मृदुला को अपनी छाती से लगा लिया और परिवार के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये। वह मृदुला को उसकी माँ के पास ले गयी और उससे सारी बातें कह सुनायीं। उसने मृदुला को अपने घर ले जाने की अनुमति माँगी। मृदुला की माँ ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया और वे सभी उस नवयुवती की कार में सवार हो कर उसके घर गये।

कार एक घर के सामने पहुँच कर रुक गयीं। मृदुला यह कहती हुई बाहर निकल पड़ी कि यही मेरा घर है। ज्यों ही उसने एक वृद्ध व्यक्ति को द्वार पर खड़े हुए देखा, वह कहने लगी-"ओहो, वह मेरे पिता जी हैं। ओहो, वह मेरे पिता जी हैं।" उसे अन्दर तेजी से जाते हुए और एक कमरे से दूसरे कमरे के पास जा कर यह बतलाते हुए देख कर कि कुछ वर्ष पूर्व उसमें कौन रहता था, सभी हैरान रह गये। फिर वह अपने कमरे के पास गयी और कहने लगी- "मैं यहाँ रहती थी।" उसने कुछ पुस्तकें खोज निकालीं और बताया कि उसने वे एम. ए. पाठ्यक्रम में पढ़ी थीं। उसने आलमारी ढूँढ़ निकाली और बताया कि उसमें उसके कपड़े रहते थे। उसने चारपाई भी बतलायी जहाँ वह बीमार पड़ी थी। उसने इस बात पर खेद प्रकट किया कि वह एम. ए. की परीक्षा में बैठ न सकी।

मृदुला के घर की वृद्ध महिला से अपनी बाल-सहज उत्सुकता से पूछा- "माँ, क्या आपको मालूम है कि अपना शरीर छोड़ते समय मुझे कैसा अनुभव हुआ था?" उसने अपने हाथ और पैर की ओर इशारा करते हुए बतलाया - "सभी नसों में तनाव था और मुझे असह्य वेदना हो रही थी। तब में एक पक्षी की तरह ऊपर उड़ी। मुझे पता नहीं कि मैं किधर गयी। मैं इधर-उधर विचरण करती रही और अपनी इस यात्रा में मैंने कई प्रकाशपूर्ण और आनन्दमय पदार्थ देखे। वहाँ पर सभी प्रसन्न थे। तब मुझे एकाएक आपकी याद आयी। आप मेरे साथ नहीं थीं । इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। इसके बाद मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।" वृद्ध दम्पति अपनी पहली पुत्री को जो छह या सात वर्ष पूर्व मर चुकी थी, बहुत प्यार करते थे। वे अवाक् से रह गये। जब उन्हें पुरानी बातें पुनः याद आयीं, तो उनके नेत्रों से अश्रु छलक पड़े।

मृदुला के शब्द उनके हृदय में गहरी छाप छोड़ गये। उन्हें सभी कुछ स्वप्न-सा लग रहा था जो दुर्ग्राह्य था; किन्तु था नितान्त सत्य। इस छोटी अपरिचित बालिका ने उनके सामने जो बातें प्रकट कीं, वह पूर्ण सत्य थीं। मृदुला रुकी नहीं, वह बराबर कहती गयी-"मैं वही मेधा हूँ जिसका आपने प्यार का नाम मुन्नू रख रखा था। मेरी सहेलियाँ कैसी हैं? डी. ए. वी. कालेज के शुक्ला जी कैसे हैं? इस घर में प्रायः सभी चीजें वैसी ही हैं जैसा कि मैंने पहले उन्हें छोड़ा था, किन्तु आपने मेरे कमरे में क्यों परिवर्तन कर दिया? यह पंखा पहले तो यहाँ नहीं था। यह बैठक में रहता था। माँ, मुझसे बातें कीजिए। जब मैं यहाँ से जा रही थी, तो आपने मुझसे वचन लिया था कि मैं वापस आऊँगी और अब मैं वापस आ गयी हूँ।" बेचारी महिला अब अपने को रोक न सकी। उसने बालिका को गले से लगा लिया। उसके कपोलों पर अश्रु झर-झर बह रहे थे।

जिह्वा में कैंसर हो जाने से मेधा बीस वर्ष की आयु में सन् १९४५ में देहरादून में मरी थी। उस समय वह एम. ए. की परीक्षा की तैयारी कर रही थी, किन्तु अन्तिम वर्ष की परीक्षा में बैठ न सकी थी। उसकी अपने परिवार में प्रगाढ़ आसक्ति थी। अतः अपने कर्मों का भोग भोगने के लिए जब उसने नया जन्म लिया, तब वे संस्कार उसकी पूर्व-स्मृति में असाधारण रूप से अवशिष्ट रह गये। पहले वह देहरादून के धनाढ्य वैश्य परिवार में पैदा हुई थी।

बाद में उसने वहाँ से हजारों मील दूर दक्षिण नासिक में एक ब्राह्मण परिवार में ३१ जुलाई, सन् १९४९ को जन्म ग्रहण किया। उसके जन्म के कुछ ही दिनों बाद उसका ब्राह्मण पिता स्वर्गवासी हुआ। माँ वहाँ से देहरादून चली आयी और एक स्कूल में अध्यापिका बन गयी। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, बालिका जब सवा दो वर्ष की थी, तब विगत जीवन की स्मृति उसमें सहसा जाग पड़ी।

मृदुला अपने पूर्व-जीवन में बीस वर्ष तक जीवित रही थी। इससे स्वभावतः ही वह अपनी वर्तमान माँ की अपेक्षा अपने पहले के परिवार के लोगों को अधिक प्रेम करती है। वह अपने घर में रहने की अपेक्षा अपने पूर्व-जीवन के परिवार वालों के साथ रहने को अधिक उत्सुक थी। उस बेचारी महिला की भावनाओं का जरा अनुमान तो कीजिए, जिसने पति के मर जाने पर अपनी इस बच्ची का इतनी सावधानी से पालन-पोषण किया हो और उसे अपने प्राणों के समान प्यार करती हो । मृदुला के पहले पिता उसे अपने पास रखने में प्रसन्न हैं और उसे सभी आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं।

गीता कहती है- "जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा अपने पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को प्राप्त होता है (अध्याय २, श्लोक २२) । मृदुला के विषय में यह बात पूर्णतः प्रमाणित हो चुकी है। यह पूर्व-जीवन की स्मृति प्राप्त करने का एक बहुत ही विरल अपवाद है। मनुष्य का यह सौभाग्य ही है कि उसे पूर्व-जीवन की स्मृति नहीं रहती, क्योंकि इससे वह रागजन्य अनेक कष्टों से बच जाता है।

मृदुला श्री स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम ऋषिकेश में कई बार आ चुकी है। पूर्व-स्मृति जाग्रत होने के बाद ही जब वह प्रथम बार अपनी माँ के साथ आयी थी, तो उसकी आयु ५ वर्ष थी। उस समय उसे अपने विगत जीवन की स्मृति स्पष्ट थी । बाद में वह श्री स्वामी जी के आश्रम में अपनी दोनों माताओं के साथ आयी। अब वह दश वर्ष की हो चुकी है और अपने नवीन बचपन के संस्कारों के कारण अब उसकी वह पूर्व-स्मृति काफी जाती रही है। वह बुद्धिमान्, स्वस्थ और सर्वथा सामान्य बालिका है।

श्री स्वामी जी इस बालिका के अनुभवों को ध्यानपूर्वक सुनते रहे हैं। बाद में उन्होंने बतलाया कि इसमें कोई नवीनता नहीं है। भूतकाल में भी कई उदाहरण पाये गये हैं, किन्तु वे बहुत ही कम हैं और बहुत दिनों के बाद घटित हुए हैं। शान्ति देवी का ही उदाहरण लीजिए। बीस वर्ष पूर्व जब वह छोटी बच्ची ही थी, तभी उसने अपने पूर्व-जीवन के सम्बन्धियों को पहचान लिया। ये बातें जीवात्मा की अमरता को प्रमाणित करती हैं जो मानसिक शुभाशुभ कर्मों के परिणाम-स्वरूप विभिन्न रूप ग्रहण करती हैं। स्वामी जी ने कर्म के बन्धन से अपने को मुक्त बनाने तथा अपना पूर्व दिव्य स्वरूप पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता बतलायी। स्वामी जी हमें वह मार्ग बतलाते हैं जिस पर चल कर हम अपना दिव्य स्वरूप पुनः प्राप्त कर सकते हैं। वह हमें निष्काम तथा पूर्ण समर्पण के भाव से कर्म करने तथा 'मैं कौन हूँ' का अनुसन्धान करने का उपदेश देते हैं। स्वामी जी के सूत्र-रूप में उपदेश हैं- "भले बनो, भला करो। तोड़ो, जोड़ो (मन को भौतिक पदार्थों से अलग करो और उसे भगवान् में संलग्न करो)।" आइए, हम सब उनसे प्रार्थना करें कि वह हम पर अपनी कृपा बनाये रखें और हमें सम्बल दें जिससे कि हम ईश्वर की ओर अग्रसर हो सकें।

२३. मृत्यु के अनन्तर तुरन्त जी उठना

मृत्यु के दो-तीन घण्टे के बाद मरे हुए व्यक्ति के पुनः जीवित हो उठने की घटनाएँ समाचार-पत्रों में प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। ये प्रायः ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको पहचानने में यमदूत भूल कर जाते हैं। दो व्यक्ति एक ही नाम के हों, एक ही सा उनका आकार हो और एक ही ग्राम में रहते हों, तो यमदूत भूल से एक व्यक्ति के बदले

दूसरे व्यक्तिको यमराज के पास उठा ले जाते हैं; किन्तु बाद में भूल का पता चलने पर उसे तुरन्त वापस कर देते हैं और उसी समय दूसरे व्यक्ति को यमराज की सभा में ले जाते हैं।

यहाँ आन्ध्र प्रदेश के श्री सी. रेड्डी का समाचार उन्हीं के शब्दों में दिया जा रहा है। वह लिखते हैं-"शास्त्रों के आधार पर लोगों की यह सामान्य मान्यता है कि मनुष्य जब अपने इस मर्त्य शरीर को त्याग देता है, तब यमराज के दूत उस मृत व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर को उसके कर्म, प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ के अनुसार निर्धारित किये हुए लोकों को ले जाने के लिए आते हैं। मैं अपना व्यक्तिगत अनुभव जो प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, उसको समझने अथवा उसकी सत्यता को मानने के लिए लोगों को हिन्दू शास्त्रों के इन उपदेशों पर विश्वास करना होगा। पाठक इन उपदेशों में विश्वास करें या न करें; किन्तु शीघ्र अथवा कुछ समय के बाद जब उनकी प्राण-क्रिया बन्द हो जायेगी, तब उन्हें भी ऐसा ही अनुभव होगा।

"मैं दक्षिण भारत के एक राजघराने में पैदा हुआ था। भारत के स्वतन्त्र होने और काँग्रेस के हाथ में शासन-सूत्र आने पर मेरे समान राजे-महाराजे इस देश के एक सामान्य नागरिक मात्र रह गये। उनके सभी अधिकार और विशेषाधिकार छिन गये। उन्हें थोड़ी-सी पेन्शन मिलती है। मेरा जीवन सदा ही धार्मिक रहा है, अतः ७३ वर्ष की आयु में मैं एकान्तप्रिय बन गया हूँ और मैंने ऋषिकेश के श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों की शरण ले ली है। मेरे अनुभव की सत्यता निम्नांकित है :

"सन् १९४८ में मैं मलेरिया से बहुत बीमार पड़ गया, जिसके परिणाम-स्वरूप मैं बहुत दुर्बल हो गया। डाक्टर जो मेरी चिकित्सा कर रहे थे, मेरे सम्बन्धी थे। उन्होंने मुझे इन्सुलिन का कोई इंजेक्शन दिया, जिससे मैं बेहोश हो गया। तुरन्त ही मुझे पास के एक उपचार-गृह में पहुँचाया गया। यहाँ मेरे शरीर में ताप लाने के लिए डाक्टर इंजेक्शन पर इंजेक्शन देते रहे, किन्तु उन्होंने मन में यह निश्चय कर लिया कि अब मैं मर चुका हूँ। यही नहीं, इस आशय का तार भी उन्होंने मेरी पुत्री को भिजवा दिया। यद्यपि डाक्टर को मेरे मरने की आशा न थी, फिर भी उसका निर्णय पूर्णतः गलत न था। जब मेरी श्वास की गति बन्द हो गयी, तो दो बड़े आकार वाले यमदूत मेरे सूक्ष्म शरीर या जीव को पकड़ कर बड़ी तेजी से यमलोक को ले गये। उस समय दिन के ११ बजे होंगे। हम बीस मिनट में ही अपने निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचे। मैंने यमराज को स्वर्ण के एक सिंहासन पर बैठे हुए देखा। मैंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। मैं कुछ बोला नहीं, क्योंकि मार्ग में यमदूतों ने मुझे आदेश दे रखा था कि जब तक यमराज मुझसे कोई प्रश्न न करें, मैं बिलकुल मौन रहूँ। उन्होंने अपने सामने नीचे जमीन पर बैठे हुए व्यक्ति को मेरे जीवन की लेखा-पुस्तिका देखने के लिए धीमे स्वर में आदेश दिया और उसने उसके पृष्ठ उलट-पलट कर देखने आरम्भ कर दिये। उनकी बातचीत मैं समझ न सका। अन्त में धर्मराज ने उन्हीं यमदूतों को मुझे पुनः मर्त्यलोक में ले जाने का आदेश दिया। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि यमदूत भूल से मुझे वहाँ लिवा ले गये थे, जब कि उसी समय मेरे नाम और विवरण से मिलते-जुलते किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु होनी थी।"

२४. मृत पत्नी का बालिका के रूप में पुनरागमन

कितने ही व्यक्तियों को किसी विशेष स्थान के विषय में ऐसा विचित्र अनुभव होता है कि इस बात का उन्हें पूर्ण विश्वास होते हुए भी कि उन्होंने अमुक स्थान को पहले कभी नहीं देखा है, जब वे उस स्थान पर जा पहुँचते हैं तो उनके मन में ऐसा लगता है कि 'मैं पहले भी यहाँ आया था।' कितनी ही बार यह संस्कार इतना अधिक दृढ़ होता है कि वह मनुष्य विश्वासपूर्वक यह कह सकता है कि अगले मोड़ पर खिड़कियों वाली दुकान होगी जिसमें सामान इस प्रकार सजाया गया होगा कि वह स्पष्ट रीति से दिख सके अथवा कि विशेष आकृति का अमुक घर होगा। अब जब वह व्यक्ति उस मोड़ की दुकान की ओर जाता है, तो अपने संस्कार की पुष्टि होते देख कर उसे कुछ आश्चर्य-सा होता है।

महायुद्ध के समय की एक घटना मुझे याद आती है। ईश्वर में आस्था न रखने वाली एक सैनिक टुकड़ी ने मानस-शास्त्र पर भाषण देने के लिए एक प्राध्यापक को आमन्त्रित किया था। उसने इस असामान्य घटना का विवेचन किया। इस सम्बन्ध में इससे अच्छा उत्तर जो वह दे सका, वह था 'सम्बन्धित विचारों का समन्वय।' उदाहरण-स्वरूप आपने एक स्थान पर अनजाने में एक चित्र और उसके पास ही एक आभूषण देखा हो, दूसरे स्थान में एक मेज पर एक पात्र रखा देखा हो और एक अन्य स्थान में एक अँगीठी के पास आलमारी में रखी हुई ट्राफी में मिले पीतल के चमकीले प्याले देखे हों। अब अकस्मात्, बिना किसी कारण के इन सभी वस्तुओं को एक-साथ देख कर उनकी स्मृति हो उठे, तो उससे ऐसा विचार पैदा होता है कि मैं उनसे पहले से परिचित था।

निस्सन्देह इस घटना के सम्बन्ध में इस प्रकार का विवेचन बहुत ही सुन्दर है, किन्तु यह इतना अपूर्ण और असन्तोषजनक है कि 'पूर्व-जन्म' की स्मृति के उदाहरण पर मैं बल देना नहीं चाहता जो कि 'पुनर्जन्म' की प्राचीन मान्यता पर विश्वास करने वाले लोगों के दावे को पुष्ट करती है।

यह एक हिन्दू बालिका की विचित्र और करुण कहानी है। यह बालिका जब आठ वर्ष की थी, तब उसके माता-पिता उसे मथुरा की तीर्थयात्रा पर ले गये। मथुरा उसकी जन्मभूमि से कई मील दूर है और वह सम्भवतः वहाँ इससे पहले कभी नहीं गयी।

वह बालिका जब मथुरा आ पहुँची, तो उच्च स्वर में कहने लगी कि 'इस नगर को मैं पहचानती हूँ। अपने पूर्व-जन्म में मैं अपने पति के साथ यहाँ रहती थी। अब मुझे शीघ्र ही अपने पति और पुत्र के पास वापस जाना है।' इतना ही नहीं, वह अपने माता-पिता को बड़ी ही तेजी और असन्दिग्ध रूप से इस नगर की एक दूसरी गली में ले गयी। इससे उसके माता-पिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। बालिका ने एक घर में प्रवेश किया जहाँ एक विधुर अपने पुत्र के साथ रहता था। इस बालिका का जन्म होने से तीन वर्ष पूर्व उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था।

उस विधुर के घर तथा आस-पड़ोस की गली के वातावरण से बह बालिका खूब परिचित थी। उसने अपने पति के साथ पत्नी-रूप में व्यतीत किये हुए अपने विगत जीवन का सारा विवरण दिया, जिससे उसके पति और पुत्र को यह मानना पड़ा कि यह आठ वर्ष की बालिका पूर्व-जन्म में उसकी पत्नी और माता थी और उसने फिर से जन्म लिया है।

उसकी यह माँग थी कि 'मुझे अपने पति और पुत्र के साथ रहने दो', परन्तु उसके माता-पिता ने इसे स्वीकार नहीं किया और उसे अपने घर वापस ले गये। वहाँ वह बालिका बहुत बीमार पड़ गयी और बेहोशी की दशा में मथुरा में रहने वाले अपने दोनों स्नेहियों को-पति और पुत्र को-बारम्बार याद करती रही। यह एक आश्चर्यजनक घटना है; किन्तु यूरोप के कितने ही विद्वानों ने इसकी सत्यता प्रमाणित की है।

२५. वायलेट फूल का गुच्छा ले कर घूमने वाली मृत पुत्री

यह वार्ता मैंने मिस मार्गेरी लारेंस से सुनी थी। मिस लारेंस बहुत सुन्दर और बुद्धिमान् हैं। इस वार्ता को उनके ही शब्दों में प्रस्तुत करना उत्तम होगा। इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ।

मिस लारेंस ने बतलाया- "अपने बाल्यकाल में ही मैंने अपना जीवन एक चित्रकार के रूप में प्रारम्भ किया। उस समय मैंने अपना स्टूडियो लन्दन की एक प्रसिद्ध गली के एक विशाल मकान की दूसरी मंजिल पर

बना रखा था। इस मकान का मालिक एक वृद्ध पुरुष था और उसकी दुकान इसी मकान की निचली मंजिल में थी।

"दूसरी मंजिल पर ठीक उसकी दुकान के ऊपर उसका कार्यालय था। ऊपरी मंजिल के दूसरे सब कमरे किराये पर दिये हुए थे जिनमें मेरे अतिरिक्त एक कारीगर, एक मोम के खिलौने बनाने वाला तथा हथकरघे पर काम करने वाला एक व्यक्ति अलग-अलग कमरों में रहते थे।

"नवम्बर महीने में एक दिन वर्षा हो रही थी। उस दिन सायंकाल के ६ बजने से ५ मिनट पूर्व ही मैं अपना स्टूडियो छोड़ कर नीचे आयी, किन्तु उसी समय एक आवश्यक वस्तु की याद आने पर मैं तुरन्त पीछे लौट पड़ी। जब मैं सड़क पार करने के अवसर की प्रतीक्षा में सड़क के एक ओर खड़ी थी, तब मैंने वहाँ भूरे रंग की पोशाक पहने हुए एक कोमलांगी नवयुवती को देखा। उसकी पीठ पर उसके सुन्दर लम्बे केश बिखरे हुए थे। उसने मेरे पास से ही, भीड़ से बचते हुए बड़ी मुश्किल से सड़क पार की। सामने जा कर वह हमारे मकान के दरवाजे में अदृश्य हो गयी।

"यह दृश्य देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। लन्दन में मस्तक पर 'बाल' किये हुए लड़कियाँ होती हैं, किन्तु इस लड़की के अयाल के समान बाल पीठ पर छाये हुए थे। दूसरी बात यह थी कि दुकान के दरवाजे में प्रवेश करने पर वह मेरी ओर देख कर मुस्करायी और मैंने देखा कि उसने जो परमा वायलेट फूल का गुच्छा हाथ में ले रखा था, वह ताजा था। भला नवम्बर माह में उसे वह कहाँ से मिला ?

"बड़ी कठिनाई से जब मैं सड़क पार कर दुकान के पास पहुँची, तब दुकान की नौकरानी दुकान बन्द कर रही थी। मैंने उससे पूछा- 'वह सुन्दर लड़की कौन थी जिसके लम्बे-लम्बे केश थे और हाथ में वायलेट फूलों का गुच्छा था? वह लड़की इस ओर आयी और सीधे अमुक के आफिस में चली गयी।'

"उस लड़की का चेहरा फीका पड़ गया। उसने मेरी ओर देख कर धीमे स्वर में कहा-'अरे वह लड़की! उसको आपने देखा? कितनी ही बार हमें वायलेट की सुगन्ध आती है, किन्तु दुकान में कोई भी व्यक्ति उस लड़की को देख नहीं सका।

'वह तो अमुक महाशय की इकलौती पुत्री है। कई वर्ष पूर्व वह मर चुकी है। मरने के समय उसकी आयु सोलह वर्ष थी। लोग कहते हैं कि उस लड़की के लम्बे सुन्दर बाल उसकी कमर के नीचे तक पहुँचते थे। दूसरे फूलों की अपेक्षा वायलेट का फूल उसे अधिक प्रिय था।'

"कुछ समय के पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि उसके पिता ने अपनी पुत्री के शव का दाह-संस्कार किया था और उसकी राख को अपने ऑफिस में एक सुन्दर पात्र में रख रखा था। इससे मैंने अनुमान लगाया कि उस मनुष्य ने अपनी प्रिय पुत्री की आत्मा को आने का एक मौका दे रखा था।"

मिस लारेंस का कहना है कि 'मैंने उसे घर में आते हुए देखा था और यह बात भी निश्चित है कि इससे पहले मैंने उसके पिता के विषय में कुछ भी नहीं सुना था और इसी भाँति उस लड़की से भी मैं पहले से न तो परिचित थी और न उसके विषय में कुछ सुना ही था, यह बात भी निश्चित है।'

२६. वे विचित्र पद-चिह्न

हिमालय के असाधारण हिम-मानव की दन्तकथा के विषय में एक रोचक लेख मिला है। कमाण्डर रूपर्ट गोल्ड द्वारा प्रस्तुत यह प्रामाणिक विवरण अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इस सम्बन्ध की जो अनेक घटनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनसे इतना तो प्रमाणित हो ही जाता है कि 'मीगो' अथवा 'येति' (हिम-मानव) में किसी-न-किसी का अस्तित्व अवश्य है और यह येति अपने जंगली निवास-स्थान के आस-पास दक्षिण इंग्लैण्ड में भटक रहा है।

डेवानशायर में एक बार यह सनसनीपूर्ण समाचार फैला हुआ था कि जैसे पहले कभी देखने में नहीं आये वैसे क्रम-बद्ध पद-चिह्न देखने को मिले हैं। यह शीतकाल की हिम ऋतु थी जिससे वे पद-चिह्न स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ते थे। उन पद-चिह्नों का आकार अण्डे की तरह गोल था या यों कहिए कि घोड़े की नाल की तरह था, किन्तु अगला भाग कुछ अधिक नुकीला था। ये पद-चिह्न एक सीधी रेखा में एक के बाद एक पड़े हुए थे। प्रत्येक पग में ८ इंच का अन्तर था। अपने परिचित पशुओं में कौन ऐसा है जो अपना पद-चिह्न एक के बाद एक सीधी रेखा में छोड़ता जाये।

यह पद-चिह्न सभी असामान्य स्थानों में दिखायी दिये थे। वे केवल भूमि पर ही नहीं पड़े थे, वरन् छतों पर, पतली दीवालों के ऊपर, उद्यानों में और घर के बाहर सहन में सर्वत्र पड़े थे। ऐसा लगता है कि पद-चिह्न छोड़ने वाले प्राणी के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट बाधक न थी।

एक उदाहरण तो ऐसा देखने में आया जहाँ वे पद घास की एक टाल को पार कर ठीक सीध में दूसरी ओर चले गये थे। उस टाल के किनारे कोई भी पद-चिह्न नहीं था। इससे ऐसा अनुमान होता है कि उस विचित्र प्राणी ने उस टाल को सीधे पार किया था। एक स्थान पर ये पग सीधे घनी झाड़ियों और वन-कुंजों के ऊपर हो कर गये थे, किन्तु जैसा कि सामान्यतया होना चाहिए, उसके सर्वथा विपरीत न तो कहीं पर पौधों की टहनियाँ और न वृक्षों की शाखाएँ ही टूटी थीं।

दक्षिण डेवोन प्रदेश के टोपशम, लिम्पस्टोन, एक्समाउथ, टेमाउथ तथा सालिश नगरों में ये पद-चिह्न क्रमबद्ध रूप में दिखायी पड़े थे। वहाँ से वे एक निश्चित मार्ग की ओर चले गये थे और पिघली हुई बर्फ में अदृश्य हो गये थे। उसके बाद फिर वे दिखायी नहीं पड़े; किन्तु उन पद-चिह्नों का अभी तक कोई भी सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हो सका।

पशुओं के पग पहचानने में निष्णात व्यक्तियों को बुलाया गया, उन पगों की भली-भाँति छानबीन की गयी, किन्तु उस प्रकार सीधा पग रखने वाला कोई भी ऐसा जीवित प्राणी नहीं मिला जिसके पग उससे मिलते-जुलते हों।

-जे. डी. एविंग

२७. श्रद्धा का वर्णन

ईश्वरीय प्रकृति के सम्बन्ध में गोथे की जैसी मान्यता है, मैं उसमें विश्वास रखता हूँ; किन्तु मुझे किसी भी प्रचलित मत अथवा सम्प्रदाय में विश्वास नहीं है। 'नास्तिक' अथवा 'अविश्वासी' भाव वाले शब्द से भी मैं अपरिचित-सा हूँ। यहूदी सम्प्रदाय में जो सर्वोच्च सिद्धान्त हैं, उनके कारण मैं उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हूँ; किन्तु इस सम्प्रदाय की अपरिहार्य कठोरताओं के कारण मैं इससे अलग हो गया हूँ। ईसाई धर्म की दया के आदर्श के विचार

से मैं उससे सम्बन्धित हूँ; किन्तु इसमें जो ईश्वर और मेरे बीच एक माध्यम की शिक्षा है, उसके कारण मैं इससे दूर हट गया हूँ। जगत् को शाश्वत मानने में मैं भारत से सम्बद्ध हूँ; किन्तु उसके निर्वाण के सिद्धान्त के कारण मैं उससे अलग हो गया हूँ। यह बात मैं नहीं समझ सका कि धर्म या सम्प्रदाय को ले कर मनुष्य कैसे परस्पर लड़ते या मार-काट करते हैं; क्योंकि सभी धर्मों का उद्देश्य आध्यात्मिक ही है।

सामान्य जनों के लिए प्रचार आवश्यक है और राज्य तथा राष्ट्र के अर्थशास्त्र की दृष्टि से ऐसी गौण संस्थाएँ होनी चाहिए। जिस प्रकार हम किसी के प्रेम-सम्बन्ध में पड़ने के लिए किसी व्यक्ति पर दबाव डालने का प्रयत्न नहीं करते, उसी प्रकार धार्मिक मान्यता अथवा आत्म-सम्बन्धी विषयों में किसी पर प्रभाव डालने से हमें दूर ही रहना चाहिए।

मैं भगवान् की प्रत्येक प्रतिमा के सामने उन सभी मनुष्यों को सम्मान देने के लिए प्रणाम करता हूँ जो उनके चरणों के आगे झुक कर प्रणाम करते हैं; किन्तु ईश्वर की प्रार्थना के लिए अमुक मन्दिर होना ही चाहिए, ऐसा मैं नहीं जानता। सभी मन्दिरों में सबसे अधिक सुन्दर अथेन्स का पार्थनोन मन्दिर है, किन्तु इसके ऊपर कोई छत नहीं है। इससे यह प्रकट होता है कि यहाँ पर पहले ईश्वर को कैद में रखा गया था, किन्तु अब वह बन्धन-मुक्त हो चुका है।

आचार एक अलग वस्तु है। ईश्वर अथवा किसी सम्प्रदाय से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। सौन्दर्य तथा आरोग्य-ये दोनों महान् लौकिक भेंट हैं। मेरी समझ में ये दोनों किसी अदृश्य शक्ति के ही कार्य हैं। जब कभी मैं अपनी कल्पना को मूर्त रूप देना चाहता हूँ, तो ग्रीक के ईश्वर का आकार और नाम सदा-सर्वदा प्रतिभासित होता है।

किसी भी साम्प्रदायिक विधि के अनुसार परमेश्वर से मिलने की अपेक्षा परमेश्वर के कार्यों में उसके प्रत्यक्ष दर्शन करने में मैं विश्वास रखता हूँ। गोथे ने बतलाया कि 'दृश्य पदार्थों के पृष्ठभाग में किसी वस्तु की खोज न कीजिए। वे स्वयं अपने में एक सिद्धान्त हैं।' मृत्यु के अनन्तर अस्तित्व है अथवा नहीं, इस प्रश्न का उत्तर मैं गोथे के शब्दों में ही देना चाहता हूँ जिन्हें गोथे ने वृद्धावस्था में निर्मित अपने विचारों को प्रकट करने के लिए दर्जनों बार प्रयोग किया-"इसके अनन्तर अपने जीवन के अस्तित्व की मान्यता का आधार मेरी कर्मठता है, क्योंकि यदि मैं अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अविराम गति से कार्य करता रहा तो जब मेरा यह वर्तमान शरीर मेरे मन को धारण करने में असमर्थ हो जायेगा तो मेरे अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रकृति मुझे दूसरा रूप देने के लिए बाध्य होगी।"

न्याय के सुसंगत सिद्धान्त के अनुसार मैं जिस प्रकार स्फटिक मणि में ईश्वर के दर्शन कर सकता हूँ, उसी प्रकार हरी दूर्वा में उसके दर्शन कर सकता हूँ। मैं जिस प्रकार कुत्ते के प्रेमिल नेत्रों में ईश्वर की झाँकी पाता हूँ, उसी प्रकार उसके दर्शन एक नारी के सुन्दर हृदय में भी करता हूँ। मैं तितली के झीने-झीने परों में ईश्वर का दर्शन करता हूँ, तो उसी प्रकार ऊषाकालीन मृतमुखी तुहिन में भी उसके दर्शन पाता हूँ। चम्पक कली के अवगुण्ठन में ईश्वर मुझे दर्शन देता है, उसी प्रकार उस कली के खिलने से पूर्व उसे चुन लेने वाले बालक के हाथों में भी वह मुझे अपना दर्शन देता है। प्राचीन काल के अन्यायों को मिटाने के लिए आज जो क्रान्ति जगी है, उसमें मैं ईश्वर के दर्शन करता हूँ। प्रेम-सम्बन्ध में स्पर्धा करने वाले प्रतिपक्षी से अपने वैर का बदला चुकाने की प्रतिज्ञा करने वाले युवक के प्रज्वलित नेत्रों में मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं, उसके साथ ही युद्ध के बाद उसके नेत्रों से गोली निकालने वाले डाक्टर के अविचलित हाथ में भी मुझे उसके दर्शन मिलते हैं। जब अपने दिव्य सर्जन के होठों पर अलौकिक हास्य की रचना कर रहा हो और जब वह मनुष्य की आकृति में हास्यजनक चित्र अंकित कर रहा हो, उस समय लियोनार्ड के कलाकार हाथों में मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं। खिलवाड़ करता हुआ बिल्ली का बच्चा जब अपने साथी को दर्पण में खोज रहा हो, उसमें मुझे उस ईश्वर के दर्शन होते हैं और साथ ही जब वह अपने हिंसक नेत्रों से

देखते हुए पीतरंगी पक्षी का पीछा कर रहा हो, उसमें मुझे उसके दर्शन मिलते हैं। स्वप्न में दी हुई उसकी प्रेरणाओं में मैं उसके दर्शन करता हूँ और प्रेरणाओं को पूरा करने में मुझे जो कठोर श्रम उठाना पड़ता है, उसमें भी मैं उसके दर्शन करता हूँ।

-इमिल लुडविग, प्रसिद्ध जर्मन कथाकार

२८. मृत्यु के सम्बन्ध में पाश्चात्य दार्शनिकों के विचार

मैं व्यक्तिगत रूप से विश्वास करता हूँ कि शरीर की मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है। यद्यपि मैं अपने इस विश्वास के औचित्य को भली-भाँति तथा पूर्णतः सिद्ध नहीं कर सकता, फिर भी यह विश्वास वैज्ञानिक प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है अर्थात् यह विश्वास तथ्य तथा अनुभव पर आधारित है। मैं बलपूर्वक यह कहता हूँ कि मृत्यु के अनन्तर अस्तित्व के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं और उनमें से कितने ही उदाहरण सर्वथा ठीक हैं। इस बात की उपेक्षा वैसे ही नहीं की जा सकती जैसे कि अन्य वैज्ञानिक अनुभवों की।

-सर ओलिवर लॉज

मनोविज्ञान के स्तर पर विचार करने से भी मृत्यु के अनन्तर जीवन के सातत्य के सिद्धान्त की स्वीकृति में ही आकर्षण का केन्द्र है न कि उसके निषेध में। हमारीमृत्यु ही हमारे पारगामी जीवन का जन्म है।

- डब्ल्यू ट्रूडर जोन्स

जीवन का यह प्रतीयमान अन्त (मृत्यु) वास्तविक अन्त नहीं है, क्योंकि यह तो व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को स्पर्श भी नहीं कर सकता। यह तो मनुष्य की छाया गेली मात्र को, उसके प्रतिरूप को ही नष्ट करता है।

-गेली

आत्मा अजन्मा और अमर-दोनों ही होना चाहिए। इसे मानने से मानव का आत्मा पशु-योनि में प्रवेश करता है और वह पशु-योनि से पुनः मानव-योनि में वापस आता है, क्योंकि वह पहले मानव-योनि में रह चुका है।

-अफलातून

हम अपने विगत जीवन के बाद, जिसे कि हम भूल चुके हैं, इस जीवन-रूपी भट्ठी में डाले गये हैं, जहाँ पर हमारा नव-निर्माण तथा नवीनीकरण किया जाना है, हम पर दुःखों, विरोधों, वासनाओं, शंकाओं, रोगों तथा मृत्यु का पानी चढ़ाया जाना है। इन सब यातनाओं को हम इसलिए सहन करते हैं कि जिससे हमारा कल्याण हो, हमारी शुद्धि हो अथवा यों कहिए कि जिससे हम पूर्ण बनें। युग-युग से, जाति-जाति से हम एक धीमी प्रगति कर रहे हैं। यह प्रगति धीमी होते हुए भी निश्चित रूप से प्रगति है। यह एक ऐसी प्रगति है जिसके सम्बन्ध में भले ही नास्तिक लोग इनकार करें, फिर भी इसके प्रमाण स्पष्ट हैं। हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर हमारे जीवन की सभी अपूर्णताएँ तथा हमारी परिस्थिति की विशेषताएँ हमें निरुत्साही तथा भयभीत बनाती हैं और दूसरी ओर हमें बहुत-सी उत्कृष्ट क्षमताएँ भी प्रदान की गयी हैं जिनसे कि हम अपनी पूर्णता की खोज कर सकें, मोक्ष प्राप्ति के योग्य बन सकें और भय तथा मृत्यु से मुक्त बन सकें। वहाँ पर ही एक दिव्य सहज ज्ञान, जो प्रकाश और क्षमता में सदा विकास कर रहा है, हमें यह समझने में सहायता देता है कि इस सम्पूर्ण विश्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसका पूर्णतः नाश होता हो । हम अपने शाश्वत विकास के अनुकूल नयी परिस्थितियों में पुनः जन्म लेने के लिए अपने पार्थिव जीवन के चारों ओर फैले हुए पदार्थों से कुछ काल के लिए छिप जाते हैं।

-जार्ज सैण्ड

यदि हम जीवात्मा के पुनरागमन के सिद्धान्त पर विश्व के राष्ट्रों में इसके विस्तृत प्रसार तथा ऐतिहासिक युगों से इसके प्रचलन की दृष्टि से विचार करें, तो उसे निश्चित रूप से एक स्वाभाविक अथवा मानव-मन का एक सहज विश्वास मानना पड़ेगा।

-प्रोफेसर फ्रांसिस ब्राउन

यद्यपि पाश्चात्य मानव-मन के लिए पुनर्जन्म का सिद्धान्त अपरिचित-सा लगता है, फिर भी मानव जाति का अधिकांश भाग इस सिद्धान्त को व्यापक रूप से स्वीकार कर चुका है और वह भी इतिहास के आदि युग से ही। धर्मशास्त्र में पुनर्जन्म के दिये गये प्रमाणों की अपेक्षा निम्नांकित सात युक्तियाँ अधिक सुसंगत और न्यायोचित लगती हैं:

१. अमरता-सम्बन्धी विश्वव्यापक विचार पुनर्जन्म की माँग करता है।

२. सादृश्यता इसे अधिक सम्भाव्य बनाती है।

३. यह सिद्धान्त बहुत-सी बातों में विज्ञान से मिलता-जुलता है।

४. आत्मा के स्वरूप को इसकी आवश्यकता है।

५. 'मूलगत पाप' और 'भविष्यकालीन दण्ड' सम्बन्धी नीतिशास्त्र के प्रश्नों का यह समुचित उत्तर देता है।

६. अनेक अलौकिक अनुभवों और असामान्य स्मृतियों के रहस्य को यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है।

७. इस पार्थिव जीवन में जो अन्याय और कष्ट महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं, उनका समाधान यही सिद्धान्त करता है।

ईसाई मत का यह उपदेश है कि 'जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।' यह उपदेश 'पुनर्जन्म और कर्म' की पौर्वात्य शिक्षा से पूर्णतया मिलता है।

महान् सफलताओं के लिए कोई राज-मार्ग नहीं है, फिर भी संसार में अद्‌भुत प्रतिभाशाली और अप्रतिम बुद्धि के बालक पाये जाते हैं। यह तथ्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सत्यता का साक्षी है। प्रत्येक मानव पहले अनेक जीवन जी चुका है और उसे भूतकाल के अनुभव प्राप्त हैं जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है।

-आर्थर ई. मैसे

परिशिष्ट २

कुछ पराभौतिक अनुभव

मैं एक पादरी की पुत्री थी। दो वर्ष की आयु में मैं सण्डे स्कूल भेजी गयी। जब मैं पाँच साल की हुई तो स्कूल भेजी गयी। सात वर्ष की उम्र में पिताजी के पुस्तकालय से ले-ले कर मैंने बाइबिल और कुछ दार्शनिक पुस्तकें पढ़ीं। उस समय तक मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मुझे आजीवन अविवाहित रहना है और जन्म-मृत्यु के रहस्यों पर चिन्तन-मनन करना है। बाइबिल में मैंने पाल के ये शब्द पढ़े- 'अनवरत रूप से प्रार्थना करो।' मैंने

ऐसा ही किया। मेरी प्रार्थना के उत्तर में रात के समय देवदूत आये और मेरा कमरा प्रकाश से भर गया। मेरे लिए यह घटना एक ऐसे अदृश्य परन्तु अधिक वास्तविक संसार का प्रमाण थी जहाँ हमें मृत्यु के बाद जाना होता है।

जब मैं बड़ी हुई, तब एक बार प्रार्थना करते समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरा शरीर ऊपर उठ रहा है। हवा में मेरा शरीर कुछ क्षणों तक टिका रहा। मुझे लगा कि प्रचण्ड वेग वाली कोई शक्ति मेरे शरीर से हो कर गुजर रही है। मेरा समूचा अस्तित्व वर्णनातीत प्रहर्ष से भर उठा। मुझे भय लगने लगा कि उस शक्ति का वेग मुझे कुचल कर रख देगा। मैंने प्रार्थना की कि मुझे और अधिक दिव्य शक्ति नहीं चाहिए। फिर वह आध्यात्मिक झंझा थोड़ी कम हुई और मेरा शरीर धरती पर आ गया। बाद में मुझे आध्यात्मिक स्तर पर भी इसी प्रकार की अनुभूति हुई। ध्यान की स्थिति में मैंने अनुभव किया कि मैं ऊपर उठ कर चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश के सागर में आ गयी हूँ। उस स्थान से न कुछ दिखायी पड़ता है, न कुछ सुनायी पड़ता है। ऐसा लग रहा था मानो मैं शरीर-हीन हो कर शुद्ध निर्विकार सत्ता बन गयी हूँ अथवा ईश्वर की असीम शक्ति, ऐश्वर्य, प्रेम और परमानन्द के साथ एक हो गयी हूँ। इसी प्रकार के अन्य अनुभव भी मुझे प्राप्त होते रहे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे स्वभाव में शुभ परिवर्तन आ रहा है; वह शुद्ध होता जा रहा है। इसे मैंने इस प्रकार समझा मानो मुझे दीक्षा दी गयी हो। मुझे ऐसा भी लगने लगा कि पवित्रता की सुगन्ध के साथ मैं घुल-मिल गयी हूँ और मेरा दैनिक जीवन उसकी सुवास से महक उठा है।

कुछ समय के बाद एक दिन मुझे यह प्रार्थना करने की शक्ति प्राप्त हुई कि मुझे वही अनुभव प्राप्त हों जो पॉल को आकाश-मण्डल में ऊपर उठाये जाते समय हुए थे।

एक रात एक देवदूत (द्युतिमान आत्मा) मेरे पास आया और मुझे मेरे शरीर से निकाल कर शून्य (space) में ले गया। पहले तो मैंने सोचा कि मैंने शरीर त्याग कर दिया है; परन्तु देवदूत ने मुझे बतलाया कि मेरी प्रार्थना के फल-स्वरूप ही ऐसा हुआ है और आकाश-मण्डल का भ्रमण कर लेने के बाद मुझे अपने शरीर में फिर पहुँचा दिया जायेगा। और हुआ भी ऐसा ही। मैंने देखा कि मेरा शरीर बिस्तर पर पड़ा है। सचमुच उस भारी खोल जैसी वस्तु में प्रवेश करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता नहीं हुई। मेरा देवदूत मित्र अक्सर मेरे पास आता था और मुझे सूक्ष्म तथा उच्चतर लोकों में ले जाया करता था। एक दिन मुझे यह पता चला कि मैं स्वयं अपने सूक्ष्म शरीर को अपने स्थूल शरीर से अलग कर सकती हूँ और इन लोकों की यात्रा कर सकती हूँ। फिर मैं नित्य रात्रि में ऐसा ही करने लगी।

जब मैं प्रथम बार सूक्ष्म लोक में पहुँची थी, तब मुझे वह कुछ-कुछ भौतिक संसार के समान ही प्रतीत हुआ था, यद्यपि वह लोक अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील था। 'मेरे पिता के घर में अनेक हवेलियाँ हैं' - ईश्वर के इन वचनों का साकार रूप मुझे वहाँ दिखायी पड़ा। वहाँ पर कई हवेलियाँ थीं। प्रत्येक देह-मुक्त आत्मा के लिए एक अलग हवेली थी। कुछ हवेलियाँ साधारण कोटि की थीं। कुछ सुन्दर तथा कुछ भव्य थीं। आत्माओं के आध्यात्मिक स्तर के अनुरूप ही उनके आवास थे। वहाँ के कुछ आवास तो इतने भव्य हैं कि उनके सामने धरती के भव्यतम आवास भी फीके पड़ जाते हैं।

सूक्ष्म संसार में निम्नतर और उच्चतर - दो प्रकार के लोक होते हैं; परन्तु आत्माएँ सर्वत्र सुखी जीवन व्यतीत करती हैं। वहाँ न जर्जरता है, न रोग है, न वार्धक्य है। वहाँ शाश्वत यौवन और सौन्दर्य का राज्य है। मुझे ऐसा बताया गया कि वहाँ किसी भी आत्मा को कार्य करने के लिए विवश नहीं किया जाता, परन्तु वे अपनी इच्छा से कुछ-न-कुछ काम करके आनन्दित होती हैं। कभी-कभी तो वे वही कार्य करती हैं जो उन्होंने धरती के जीवन में किया था। धरती पर व्यतीत किये गये जीवन के समान ही चित्रकारों, मूर्तिकारों, संगीतज्ञों, कवियों, लेखकों, वैज्ञानिकों की आत्माएँ अपना-अपना कार्य करती हैं और इस प्रकार अपना विकास कर रही हैं। अपनी-अपनी रुचियों के अनुसार वे कई प्रकार की संस्थाओं की सदस्य भी हैं। वहाँ विज्ञान, कला तथा संगीत के विद्यालय भी हैं

जिनमें कई आत्माएँ अध्यापन का कार्य करती हैं। मैं वहाँ के कुछ विश्वविद्यालयों में भी गयी हूँ और वहाँ अत्यन्त रुचिकर भाषणों को भी सुना है। वहाँ अनेक धर्मों को मानने वाली आत्माएँ हैं। गिरजे तथा हर धर्म के शाखा-भवन आदि भी हैं। वहाँ हमारे ईश्वर की उसी प्रकार पूजा की जाती है जैसे धरती पर की जाती है। वह वहाँ के विभिन्न प्रकार के समुदायों को सम्बोधित करते हैं। इस कारण मात्र उनकी सत्ता पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता। मात्र उनकी उपस्थिति ही सबके लिए परमानन्द का स्रोत है। इसलिए उनके ये शब्द- 'जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम भी हो' -आश्चर्यकर सत्य हैं।

सामान्य आत्माएँ अपनी-अपनी भाषाएँ बोलती हैं। एक ऐसी भाषा भी प्रयोग में लायी जाती है जिसे सभी शिक्षित आत्माएँ समझती हैं तथा जिसे सीखने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

मुझे यह बात अवश्य कहनी चाहिए कि प्रत्येक देहमुक्त आत्मा जब सूक्ष्म संसार में प्रवेश करती है, तो उसे एक निश्चित अवधि तक आत्म-विश्लेषण तथा धरती पर व्यतीत किये गये अपने कर्मों का सिंहावलोकन करना होता है। यह बात पापमोचन-स्थान (Purgatory) की हमारी विचारधारा के अनुरूप है; क्योंकि उसके अच्छे-बुरे कर्मों का उन पर्यवेक्षकों द्वारा अभिलेखन कर लिया जाता है जो अदृश्य रूप से धरती के जीवन में प्रत्येक क्षण उसके साथ रहते हैं। इसलिए ईश्वर का यह वचन सत्य सिद्ध हुआ है कि 'मनुष्यों को अपने प्रत्येक व्यर्थ शब्द का हिसाब देना पड़ेगा। उनके शब्द उनकी निन्दा या प्रशंसा के कारण बनेंगे।' ईश्वर का यह वचन भी नितान्त सत्य है कि 'छिपायी हुई कोई बात छिपती नहीं; न बतायी कोई बात नहीं रहती। अतः जो-कुछ तुमने एकान्त अँधेरे में बोला है, वह प्रकाश में सुनायी पड़ जायेगा और जो-कुछ तुमने एकान्त स्थलों में कान में फुसफुसा कर कहा है, उसका उद्घोष घर की छतों पर होगा।' कुछ आत्माओं को अपने बुरे वचनों और कमाँ के अभिलेखों को दोबारा पढ़ने और उनका सामना करने का दुःख उठाना होता है, जब कि कुछ को अपने अच्छे कर्मों का मधुर फल प्राप्त करते हुए प्रसन्नता होती है।

उच्चतर लोकों में मैं कई अत्यधिक उन्नत आत्माओं से मिली। उनमें से कुछ आत्माओं ने बताया कि 'महान् अवतरण' की अवधि में जब ईश्वर ने धरती पर विचरण किया था, तब मैं और वे साथ-साथ रहे थे। मैं अपने उस जन्म की घटनाओं का स्मरण नहीं कर सकी। हाँ, अन्य जन्मों के दृश्य मैंने देखे हैं। उनमें से कुछ दृश्य असाधारण हैं, परन्तु कुछ साधारण ही हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था जब मैंने शरीर को एक पुरुष के शरीर में पाया था। तब मैं जान पायी कि मैं अपने में स्त्रैणता के गुणों की अपेक्षा पौरुषत्व के गुणों की उपस्थिति का अनुभव क्यों अधिक करती हूँ।

अपने गत जन्मों के दृश्यों का अवलोकन करने के पश्चात् मुझे यह बात स्पष्ट हो गयी कि हमारा वर्तमान अस्तित्व हमारे वास्तविक अस्तित्व का एक खण्ड मात्र है। हमारी चेतना हमारी समग्र चेतना का एक अंश है। समग्र चेतना का उदय तब तक नहीं होता, जब तक हम अपने समस्त जन्मों के चक्र को पूरा नहीं कर लेते। अपने प्रत्येक जन्म में हमें कुछ गुणों का विकास करना होता है तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में कर्म करने होते हैं। इसीलिए गत जन्मों की स्मृतियों का लोप होना आवश्यक हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होगा, तो वे स्मृतियाँ हमारे लिए भार बन जायेंगी। प्रत्येक जन्म में हमें इस बात का भी अवसर मिलता है कि जीवन की ओर ले जाने वाले कठिन मार्ग तथा नरक में पहुँचाने वाले चौड़े मार्ग में से हम किसी एक को चुन लें।

अपनी अन्तर्दृष्टि से मैं उन घटनाओं को भी देख सकी हूँ, जो बाद में सचमुच घटित हुईं। मैं एक ही उदाहरण दूँगी। कोपेनहेगेन विश्वविद्यालय से बी. ए. की डिग्री प्राप्त करने से पूर्व ही एक बार ध्यान की अवस्था में मैंने देखा कि मैं विश्वविद्यालय के भाषण-कक्ष में बैठी हुई हूँ तथा श्रोताओं के एक बड़े समूह के समक्ष भाषण दे रही हूँ। जब यह दृश्य लुप्त हो गया, तब मैंने सोचा कि इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि किसी-न-किसी दिन मैं उस भाषण कक्ष में प्राध्यापक की हैसियत से बैठूँगी । यद्यपि मेरा यह निष्कर्ष असत्य सिद्ध हुआ, तथापि यह दृश्य

एक दूसरे रूप में सही निकला। कुछ समय बीत जाने के बाद मेरे प्राध्यापक ने मुझे मध्ययुगीय रहस्यवाद पर धारावाहिक रूप से भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया। वे भाषण मैंने उसी कक्ष में दिये जिसे मैंने अपनी ध्यानावस्था में देखा था।

एक बार मैंने सोचा कि मैं अपनी इच्छा-शक्ति का प्रयोग करके दिक्काल की सीमाओं को तोड़ते हुए, अपनी चेतना को अपने भूतकाल तथा भविष्य में प्रक्षेपित करूँ तथा विगत और भावी घटनाओं का अवलोकन करूँ। मेरे प्रयोग सफल रहे तथा हर प्रयोग में मुझे घटनाओं की सत्यता के प्रमाण भी मिल गये।

मैंने सूक्ष्म शरीर की विशेषताओं तथा भौतिक शरीर के साथ इसके सम्बन्धों का निरीक्षण किया। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि किसी भी स्थिति में हमारी चेतना भौतिक मस्तिष्क पर निर्भर नहीं है। दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि हमारा भौतिक शरीर लगातार सूक्ष्म शरीर पर निर्भर रहता है। यदि सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर का साथ छोड़ दे, तो भौतिक शरीर अपनी एक पेशी भी नहीं हिला सकता ।

मैं अपने सूक्ष्म शरीर में कोपेनहेगेन की सड़कों पर घूमती रही हूँ तथा लोगों को कुछ पराभौतिक अनुभव प्रभावित करने की असफल चेष्टा करती रही हूँ। मैं उन जगहों पर भी गयी हूँ जहाँ मैं पहले कभी नहीं गयी थी। अपने भौतिक शरीर में मैं दोबारा उन स्थानों पर जा कर वहाँ अपनी उपस्थिति के बारे में लोगों की प्रतिक्रिया का पता लगाना चाहती थी। मैं उन स्थानों पर गयी और मुझे वहाँ अपनी उपस्थिति के प्रमाण मिले। दो स्थानों पर लोगों ने मुझसे मेरे अद्‌भुत प्रकटन के बारे में बताया। ये वे लोग थे जिन्हें मैंने उन स्थानों पर अपने सूक्ष्म शरीर से देखा था। जब मैंने उन्हें बताया कि अपने सूक्ष्म शरीर से मैंने उन्हें अमुक-अमुक कार्य करते देखा था, तब उन्हें विश्वास करना पड़ा कि मैं सचमुच उनके पास गयी थी।

एक बार मैं अपने देवदूत मित्र के साथ एक अन्तर्भूमिक (subterranean) शहर को गयी। धरती के नीचे जा कर एक सुन्दर चमकीले शहर के बीच अपने को पाना मेरे लिए निराला अनुभव था। मेरा मित्र मुझे संगमरमर के स्तम्भों वाले ग्रीस की शैली में बने एक मन्दिर में ले गया। वहाँ मुझे उस नगर का नेता मिला और उसने मुझे वहाँ होने वाले कार्यों के बारे में बहुत कुछ बताया।

एक दिन मुझे पता चला कि गहन एकाग्रता की सहायता से मैं भूत द्रव्यों को अभौतिक बना कर उन्हें पुनः भौतिक बना सकती हूँ। यह सचमुच बहुत रोचक तथा आश्चर्यजनक था। मैंने इस दिशा में अन्य प्रयोग नहीं किये; क्योंकि मेरी रुचि आन्तरिक संसार के उन रहस्यात्मक लोकों में अधिक है जिनकी भव्य और मनोहर सुन्दरता तथा आलंकारिकता का वर्णन करना कठिन है। मानव-भाषा असाधारण अनुभवों को व्यक्त करने में सदैव असमर्थ रहती है।

कई लोग मुझसे मेरी साधना के बारे में पूछते हैं। मेरी समझ में किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक अभ्यास से अधिक महत्त्वपूर्ण साधना की यह उत्कट अभिलाषा होती है कि वह ब्रह्म से एकाकार हो जाये। यही अभिलाषा ऊपरी लोकों से दैवी अनुग्रह के अन्तरागम (influx) के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

शाश्वत तत्त्व को प्राप्त करने हेतु पूर्ण समर्पण-भाव से मन-आत्मा के द्वार खोल कर रखना ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है। मैंने सुना है कि साधक यह नहीं समझ पाते की दीर्घ काल तक साधना करते रहने पर भी वे क्यों असफल रहते हैं। मेरे मतानुसार उनमें ब्रह्म के साथ एकत्व स्थापित करने की तीव्र उत्कण्ठा की कमी रहती है। मैं इस बात को बहुत महत्त्व देती हूँ कि सोने से पूर्व प्रार्थना तथा ध्यान अवश्य करने चाहिए ताकि निद्रावस्था में अवचेतन स्थिति में प्रवेश करने से पहले ही मन सांसारिक विचारों से मुक्त हो सके। हमेशा सोने से पहले मैं अपनी चेतना को गहन बनाने तथा विकसित करने का प्रयत्न करती हूँ ताकि मैं उस महत्-तत्त्व के सम्पर्क में आ सकूँ जो सदैव उच्चतर लोकों से सम्बन्ध रखता है। सोने से पूर्व चेतना को गहन बनाना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधना है। मैं

प्रातःकाल भी ध्यान करती हूँ ताकि अपने दैनिक कार्यों के लिए आवश्यक शक्ति अर्जित कर सकूँ। जब मैं दिन में विश्राम कर रही होती हूँ, तब मैं अपने 'स्व' को भूल कर अपनी चेतना को दिव्य तत्त्व के सम्पर्क में ले आती हूँ। जिस समय मन की गहराइयों में उच्चतर ऊर्जा का प्रवाह रहस्यमय ढंग से हो रहा होता है, उस समय हमें भयभीत नहीं होना चाहिए और तब दिव्य आत्मा हमें अभिषिक्त करेगी।

-के. एम., कोपेनहेगेन (डेनमार्क)